38

36

॥ ओ३म् ॥

स्वामी ब्रह्ममुनि ग्रन्थमाला पुष्प ७२

सामवेद

आध्यात्मिक मुनिभाष्य

उत्तरार्चिक

32

रचयिता या हिन्दी भाष्यकार

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

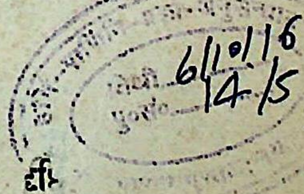
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)

पुस्तक मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान)

न्यू देहली १



प्रथम बार १००० | दीपावली २०२९ वि० नवम्बर १९७२ | मूल्य लागत मात्र रु० १३)

प्रकाशक :

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)

मुद्रक :
शिरीशचन्द्र शिवहरे, एम० ए०
फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर



सम्मतियां

श्री० डा. मङ्गलदेवजी शास्त्री, एम. ए., डी. फिल भूतपूर्व प्राचार्य उपकुलपति, वाराणसेय, संस्कृत महाविद्यालय की सम्मति—

आदरणीय श्री० स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक द्वारा निर्मित सामवेद-आध्यात्मिक मुनिभाष्य को मैंने यत्र तत्र ध्यान से देखा, देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्री० स्वामीजी वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् हैं, उन्होंने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिख कर वैदिक साहित्य के भण्डार को बढ़ाया है, उनका सामवेद का आध्यात्मिक भाष्य भी वैसा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मैं उसका स्वागत करता हूं।

मङ्गलदेव शास्त्री

२४/६ शक्ति नगर, देहली ७,
३०-९-७० (१९७० ई०)



श्री० आचार्य प्रियव्रतजी की सम्मति—

श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी का सामवेद भाष्य ऋषि शैली पर आध्यात्मिक दृष्टि से सफल भाष्य है, सामवेद उपासना काण्ड है, सायण तथा अन्य भाष्यकार इस दृष्टि को निभा न सके। स्वामीजी ने सप्रमाण निभाया। दुरुह मन्त्रों का स्पष्ट व्याख्यान किया। स्वामीजी की प्रतिभा और विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

प्राक्कथन

पूर्वाचिक भाष्य में प्राक्कथन से भिन्न इस उत्तरार्चिक के प्राक्कथनप्रसङ्ग में विशेष वक्तव्य यह है कि स्वामी दयानन्द ने सामवेद को उपासना का वेद बतलाया है, अतएव सामवेद आध्यात्मिक वेद होने से "यूयमृषिमवथ सामविप्रम्" [ऋ० ५।५४।१४] ऋषियो या श्रोताओ! तुम सामवेद के ऋषि को अपना स्वामी मानो या उसकी रक्षा करो तृप्ति करो। "ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति" [निरु० १३।७] ऋग्वेदमन्त्रों से शंसन करते हैं। यजुर्वेद के मन्त्रों से यजन-यज्ञ करते हैं साम मन्त्रों से स्तवन स्तुति करते हैं। अतएव सामवेद में देवतानाम पद अग्नि, इन्द्र, सूर्य, सोम आदि केवल परमात्मा के ही हैं इससे मन्त्रों का पुनरुक्ति दोष नहीं आता तथा पूर्वाचिक के मन्त्रों का भी उत्तरार्चिक में पुनरुक्ति दोष नहीं। आध्यात्मिक प्रसङ्ग दोषभागी नहीं पूर्वाचिक का मन्त्र उत्तरार्चिक में आ जाने से ऋषि एवं देवता से समवेत होजाता है। अन्य भाष्यकारों ने सामवेद के मन्त्रों में अग्नि आदि देवतानामों से जगत् के जड पदार्थों की जो कल्पना की वह सामवेद के लक्ष्य से बाहिरी है।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥ (साम० पूर्वाचिक अ० १।१०।७)

यहां सामवेद में अध्यात्मपरक अर्थ है—(इन्द्र) परमात्मन्! तू (नः) हम मनुष्यों में से (धानावन्तम्) धारणाओं वाले "डुधाञ् धारणपोषणयोः" [जुहो०] एकाग्रमन वाले योगी को (करम्भिणम्) प्राण का आरम्भ नियन्त्रण करने वाले प्राणायामाभ्यासी को "प्राणो वाव कः" [जै० उ० ४।११।२।४]

(अपूपवन्तम्) प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमी जन को "इन्द्रियमपूपः" [ऐ० २।२४] (उक्थिनम्) स्तुतिवचनों† वाले को (प्रातःजुषस्व) प्रातःकाल या सर्वप्रथम अवसर पर प्रेमपात्र बना— बनाता है।

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः॥
(साम० पूर्वार्चिक अ० ६।४।२)

अन्य वेद में इस मन्त्र का अर्थ ऋतुपरक हो सकता है परन्तु यहां सामवेद में तो आध्यात्मिक ही अर्थ है—(वसन्तः-इत्-नु रन्त्यः) हे प्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मन्! मेरा प्राण "प्राण एव वसन्तः" [जै० २।५१] हां शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो प्राणायामादि द्वारा (ग्रीष्मः-इत्-नु रन्त्यः) मेरी वाक्—वाणी "वाग्ग्रीष्मः" [जै० २।५०] हां शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो स्तुति द्वारा (वर्षाणि-अनु) साथ ही मेरी आँख "चक्षुर्वर्षाः" [जै० २।५१] हां शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे दर्शन की उत्सुकता द्वारा तेरे रचे जगत् में तेरी कला को देख देख कर औरतेरे पाठ पढ़ पढ़ कर (शरदः) मेरा श्रोत्र—कान "श्रोत्रं शरदः" [जै० २।५१] हां शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे सम्बन्ध में श्रवण द्वारा (हेमन्तः) मेरा मन "मनो हेमन्तः" [जै० २।५१] शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे मनन चिन्तन द्वारा (शिशिरः-इत्-नु रन्त्यः) मेरा प्रतिष्ठान नाभि के नीचे का अङ्ग "शिशिरं प्रतिष्ठानम्" [मै० ४।९।१८] हां शीघ्र शीघ्र—बार बार तेरे में रमण करने योग्य हो आसन सदाचरण द्वारा।

† "वागुक्थम्" [ष० १।१५]

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
य पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजान्विन्द्र ते हरी ।।

४२४ (साम० पूर्वार्चिक अ० ४।८।६)

अन्य वेद में इस मन्त्र का अर्थ विद्युद्विज्ञान—वैद्युत यान परक हो सकता है परन्तु यहां सामवेद में तो अध्यात्मपरक ही अर्थ है—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (सः) वह तेरा उपासक आत्मा (घ) हां (तं वृषणं गोविदं रथम्) उस सुखवर्षक स्तुतिवाणियों से प्राप्त होने वाले रथ—रमणस्थान मोक्षस्थान रथ पर (अधितिष्ठाति) बैठना चाहता है "लिङर्थे लेट्" [अष्टा० ३।४।७] अब इस शरीर रथ पर नहीं (यः) जो उपासक (हारियोजनं पात्रम्) तेरे दयाप्रसाद रूप दुःखापहरण और सुखाहरण करने वाले जिसमें निरन्तर तेरे द्वारा युक्त किए हुए हैं ऐसे नितान्त पालक रक्षक को (पूर्णं चिकेतति) पूर्णरूप से जानता है कि बस कल्याणस्थान यही है, अतः (ते हरी) तेरे दया और प्रसाद को (नु योज) मुझ उपासक में शीघ्र युक्त कर ।

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजासमदः सुमधु मधुनाभियोधीः ।।

४२५ (साम० उत्तरा० अ० १३ ख० ५ तृच २।३)

(विश्वे-ऊमाः) परमात्मन् ! तेरे द्वारा सब रक्षण पाए हुए मुमुक्षु (क्रतुं त्वे वृञ्जन्ति) कर्म को तेरे अन्दर त्याग देते हैं—निष्काम बन जाते हैं (यत्-एते द्विः-त्रिः-अपि भवन्ति) चाहे वे एकाश्रमी ब्रह्मचारी हों या द्वितीयाश्रमी गृहस्थ हों या तृतीयाश्रमी वानप्रस्थ भी हों, क्योंकि तू (स्वादोः-स्वादीयः) स्वादु—स्वादवाले पदार्थ से भी अतिस्वादु—अत्यन्त स्वादवाला है (स्वादुना संसृज)

अपने स्वादुस्वरूप से संयुक्त करा (अदः-मधु) उस अपने मधु-स्वरूप को (मधुना सु-अभि योधीः) मुझ उपासक आत्मा† के साथ भली प्रकार सङ्गत कर मिलादे‡ ॥

सामवेद में युगल देवतानाम मित्रावरुण आदि परमात्मा के ही वाचक हैं ऐसे ही बहुवचन प्रयुक्त देवतानाम भी परमात्मा का नाम जानना चाहिये अन्य भाष्यकारों ने बहुवचन के परमात्मा से भिन्न अर्थ किए हैं जैसे 'सोमः' का अर्थ तो परमात्मा और 'सोमाः' बहुवचन का भक्तजन परन्तु यह वैदिक शैली के विरुद्ध है वह बहुवचनप्रयोग पूजनार्थ या आदरार्थ माना है जैसे—

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥

1625 (ऋ० १।९२।१)

एतास्ता उषसः केतुमकृषत प्रज्ञानमेकस्या एव पूजनार्थे बहुवचनं स्यात् ॥
(निरु० १२।७)

निरुक्त के इस वचन को प्रमाण सायणाचार्य और स्वामी दयानन्द ने भी स्वीकार किया तथा इस मन्त्र से भिन्न स्थलों पर भी बहुवचन आदरार्थ दर्शाया है । "पूयमानो यूयं पात" [साम० उत्तरा० अ० १२।३।८।३ पूजार्थ बहुवचनम्, सायणः] तथा "तन्न इन्द्रो·····यूयं पात स्वस्तिभिः [ऋ० ७।३५।२५ आर्याभिविनय प्रथम प्रकाश बहुवचन आदरार्थ] दयानन्द ।

---

† "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० स० २'३।२।९]

‡ "युध्यति गतिकर्मा" [निघ० २।१४] अथवा "यू मिश्रणे" [अदादि०]

कुछ महानुभाव कहते हैं ऋग्वेद के मन्त्र सामवेद में हैं तब ऋग्वेद पूर्ववर्ती है, अन्य कह सकता है सामवेद के मन्त्र ऋग्वेद में है इस कथन को कौन रोक सकता है जबकि ऋग्वेद के अन्दर सामवेद का नाम प्रशंसित किया है—"उद्गातेव शकुने साम गायसि" [ऋ० २.४३।२] तथा "यूयमृषिमवथ सामविप्रम्" [ऋ० ५।५४।१४] अतः वेद में पौर्वापर्य नहीं देखना चाहिये।

ऋग्वेद के उक्त कथन से साम मन्त्र यज्ञ में उद्गता द्वारा गाकर पढ़ने योग्य हैं अन्य ऋत्विक् द्वारा आहुति प्रदान अवैदिक है अतः साम पारायण गाने में या अर्थ जानने में करना चाहिए आहुति में नहीं।

उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति।
ऋ० २.४३.२

—

ओ३म्

सामवेद

अध्यात्मिक मुनिभाष्य

उत्तरार्चिक

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—काश्यपोऽसितो देवलो वा (द्रष्टा-सूक्ष्मदर्शी से सम्बद्ध कामादि वन्धन से रहित या इष्टदेव परमात्मा को अपने अन्दर लेने वाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

१ २ ३ १२ ३१ २
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
३ २ ३१ २र
अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

(नरः) हे मुमुक्षु जनो! "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] तुम (अस्मै) इस—इष्ट देव—(देवान्-अभि-इयक्षते) देवों—दिव्य सुखों को जीवनमें सङ्गत कराना चाहते हुए—हितैषी (इन्दवे)

रसीले (पवमानाय) शान्त धारा में प्राप्त होते हुए परमात्मा के लिए (उपगायत) उपगान करो—आत्मभाव से स्तवन—उपासना करो।

समस्त सुखों के मूल तथा उनको जीवन में समाविष्ट कराने वाले रसीले शान्तधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा की उपयुक्त स्तुति उपासना मुमुक्षु जनों को करना चाहिये ॥ १ ॥

६५२ अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
देवं देवाय देवयु ॥२॥ ऋ० ९. ११.२

(ते) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तेरे (मधुना) आनन्द रस के साथ "अन्तो वै रसानां मधु" [जै० १।१२४] (अथर्वाणः) अचल—स्थिर मननशील योगी जन (देवयुः-देवं पयः) तुझ देव को चाहने वाले दिव्य प्राण—अमरतत्त्व आत्म-भाव को "प्राणः पयः" [श. ६।५।४।१५] (देवाय) तुझ परमात्म-देव की प्राप्ति के लिये (अभिशिश्रयुः) मिला देते— नितान्त अर्पित कर देते हैं। तभी तेरा साक्षात् करते हैं।

स्थिर मन वाले योगी ध्यानी उपासक अपने दिव्य आत्मभाव को जो परमात्मदेव को चाहता है परमात्मदेव की प्राप्ति के लिए समस्त आनन्दों के आनन्द अन्तिम आनन्द में ध्यान द्वारा मिला देते हैं तो अपने आत्मा में उसका साक्षात्कार करते हैं ॥२॥

६५३ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥ ऋ० ९. ११.३

(सः-राजन्) वह तू हे पवमान सोम-धारारूप में प्राप्त

होते हुए शान्तस्वरूप सर्वत्र राजमान परमात्मन्! (नः) हम उपासकों के (गवे शम्) ज्ञानेन्द्रियमात्र के लिए कल्याणकारी होता है—असंयम में प्रवृत्त न होने से (जनाय शम्) जननेन्द्रिय के लिए कल्याणरूप होता है—व्यभिचार में प्रवृत्त न होने से (अर्वते शम्) प्रेरण धर्मवान् मन के लिए "अर्वा-ईरणवान्" [निरु० १०।३१] कल्याणरूप हों (ओषधिभ्यः शम्) ऊर्जा—जीवनरस रक्त प्राणों के लिये कल्याणरूप हो "ऊर्वाओषधयः" [मै. ३।६।७]।

उपासक द्वारा परमात्मा की आराधना करने पर उसके ज्ञानेन्द्रियों में शान्ति—असंयमरहितता, जननेन्द्रिय में शान्ति—व्यभिचार की अप्रवृत्ति, मन में शान्ति—चाञ्चल्यरहितता, और रस रक्त प्राणों में शान्ति—रोगदोष उद्वेगरहितता हो जाती है ॥३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कश्यपो मारीचः (वासना अज्ञान को मार देने वाले से सम्बद्ध परमात्मद्रष्टा† उपासक)

देवता छन्दसो—पूर्ववत्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
(६५) दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। (साम ११६-१२२२)
१ २ ३ १२ २२
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥१॥ ऋ. ९. ६४. २८

'सोमाः बहुवचनमादरार्थं देवतापदम्' (दविद्युतत्या) देदीप्यमान-(रुचा) कान्ति-(परिष्टोभन्त्या) सर्वविध गुणगीति "स्तोभति अर्चतिकर्मा" [निघ. ३।१] (कृपा) स्तुतिरूप अध्यात्मशक्ति से

---

† "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं पश्यतीति सौक्ष्म्यात्" [तै.आ १।८]

(सोमाः) आनन्दधारा में प्राप्त शान्तस्वरूप परमात्मा (गवाशिरः) ज्ञानेन्द्रियों में आश्रित होता हुआ-(शुक्राः) आत्मा में प्रकाशित होता है।

सर्वविध गुणगीतिवाली स्तुतिरूप शक्ति के द्वारा परमात्मा उपासक के अन्दर देदीप्यमान—कान्ति से ज्ञानेन्द्रियों में सङ्गत होता हुआ शुभ्ररूप में साक्षात् होता है ॥१॥

३ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३क २र
हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
१ २ ३ १ २
सीदन्तो वनुषो यथा ॥२॥

(वाजी) अमृत अन्नभोग वाला सोम शान्त परमात्मा "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै. २।१९३] तद्वान् (हेतृभिः-हितः) स्तुति-प्रेरक उपासकों द्वारा धारित उपासित हुआ (वाजं हिन्वानः-अक्रमीत्) अमृतान्नभोग को प्रेरित करता हुआ उपासक के अन्दर प्राप्त होता है (यथा वनुषः सीदन्तः) जैसे चाहने वाले हितैषी अपने शिष्यों को गुरुजन प्राप्त होते हुए उपदेश देते हैं।

स्तुतिकर्ता उपासकों द्वारा धारा हुआ उपासित किया हुआ अमृतभोग वाला परमात्मा अमृतभोग को प्रेरित करता हुआ उपासक को ऐसे प्राप्त होता है जैसे गुरुजन शिष्यों को प्राप्त होते हुए उपदेश देते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ऋधक् सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवाकवे ।
१ २ ३ १ २ ३ २
पवस्व सूर्यो दृशे ॥३॥

(कवे सोम) हे क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (स्वस्तये) मेरे सु-अस्तित्व-कल्याण के लिये (दिवा सञ्जग्मानः) स्वप्रकाश से सङ्गत करता हुआ (सूर्यः) की भांति 'लुप्तोपमावाच-

कालङ्कारः[1] (दृशे) निजदर्शनार्थ (ऋधक् पवस्व) समीप-साक्षात् "ऋधक् सामीप्ये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] प्राप्त हो।

उपासना द्वारा सर्वज्ञ परमात्मा उपासक के कल्याणार्थ अपने प्रकाश से सङ्गत करता हुआ सूर्य के समान साक्षात् प्राप्त होता है ॥३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—वैखानसः (अध्यात्म ज्ञान का विशेष खनन करने वाले उपासक)

देवताछन्दसौ—पूर्ववत्।

१ २ ३ २ ३ १ २
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१॥ ऋ० ९.६६.१

(कवे वाजिन्) हे सर्वज्ञ वक्ता तथा अमृतभोग वाले सोम परमात्मन्! "अमृतोऽन्नं वै वाजः [जै० २।१९३] (ते पवमानस्य) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होते हुए के (सर्गाः-असृक्षत) अमृत आनन्दप्रवाह उपासकों के अन्दर निरन्तर प्रवाहित होने लगते हैं "सृज धातोः क्सश्छान्दसः" (अर्वन्तः-न श्रवस्यवः) प्रशंसनीय प्रगतिशील प्रशस्त,गन्तव्य स्थान को चाहते हुए उस पर पहुंचने वाले घोड़ों की भांति "श्रवस्यु श्रवणीयम्" [निरु. ११।५०] "श्रव इच्छमानः प्रशंसामिच्छमानः" [निरु० ९।१०]

सर्वज्ञ अमृतानन्दभोगप्रद परमात्मन्! तुझ आनन्दप्रवाहों से प्राप्त होने वाले के आनन्द प्रवाह प्रवाहित होते हुए ऐसे मुझ उपासक को प्राप्त होते हैं जैसे प्रगतिशील प्रशंसनीय घोड़े छुटे हुए प्रशंसनीय प्राप्तव्य स्थान को चाहते हुए उसे प्राप्त करते हैं ॥१॥

२ ३ १२ ३२३१२३ १२ ३ १२
अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रन् वारे अव्यये ।
१२ ३ ११
अवावशन्त धीतयः ॥२॥

(अव्यये वारे) अनश्वर वरणीय परमात्मा में वर्तमान (मधुश्चुतं कोशम्) मधु चुवाने वाले कोश को (धीतयः-अवावशन्त) धारणाध्यानप्रज्ञावाले उपासक नितान्त चाहते हैं अतः वे (अच्छा-असृग्रन्) अपने अभिमुख खोलते हैं प्रवाहित करते हैं प्राप्त करते हैं।

'अविनाशी वरणीय परमात्मा के अन्दर वर्तमान मधुर आनन्दभरे कोश—थैले को धारणाध्यानप्रज्ञावाले उपासक नितान्त चाहते हैं अतः वे उसे अपनी ओर खोल लेते हैं—प्रवाहित कर लेते हैं—प्राप्त कर लेते हैं॥ २॥

१ २ ३२उ ३२ ३ २३२ ३१२
अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
१ २३२ ३ २३ २
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥३॥

(इन्दवः) आर्द्र भावना वाले उपासक आत्माएं "इन्दुरात्मा" [निरु० १३।३२ वा १४।१९] (ऋतस्य योनिम्) अमृत के गृह—भण्डार "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०] (समुद्रम्) पूर्ण पुरुष परमात्मा को "पुरुषो वै समुद्रः" [जै० ३।६ या ७५] (अच्छा-आ-अग्मन्) सम्यक् समन्तरूप से प्राप्त होते हैं (धेनवः-गावः-अस्तं न) जैसे दूध से भरी गौएं स्वाश्रयरूप घर को सीधे प्राप्त होती हैं।

दुधारू गौएं जैसे अपने आश्रयस्थान को प्राप्त होती हैं ऐसे ही आर्द्र भाव से भरे श्रद्धापूर्ण उपासक आत्माएं अमृतसदन पूर्णपुरुष परमात्मा को सम्यक् समन्तरूप से प्राप्त होते हैं॥ ३॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः (स्तुतिवाणी में कुशल अमृत-भोग धारण करने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये ।
१२ २२ ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (हव्यदातये गृणानः) हमें अपनी भेंट देने के लिए हमारे द्वारा स्तुत किया जाता हुआ प्रतीकाररूप में अपनी प्राप्ति के लिए आ जा (होता बर्हिषि नि सत्सि) तू हृदयासन पर होता की भांति नितरां प्राप्त हो—निरन्तर रमण कर ।

परमात्मा के प्रति स्वात्मसमर्पण करने से परमात्मा की स्तुति की जाती है तो वह अपने साक्षात् दर्शन के लिए आता है और हृदय में विराजमान हो जाता है जैसे होता यज्ञासन पर बैठ जाता है ॥ १ ॥

१ २ २ १ २ ३ १ २
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।
३ १ २
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥२॥

(अङ्गिरः-यविष्ठ्य) हे अङ्गों को प्रेरित करने वाले अत्यन्त मिलाने वालों में श्रेष्ठ परमात्मन् ! (तं त्वा) उस तुझ को (समि-

द्भिः-घृतेन वर्धयामसि) प्राणों से प्राणायामों–इन्द्रियों के सद्-व्यवहारों से "प्राणा वै समिधः" [ऐ० २।४] और आत्मतेज से बढ़ाते हैं (बृहत्-शोच) तू हमारे अन्दर बहुत प्रकाशित हो।

अङ्गों को प्रेरित करने वाला, मेल करने वालों में सबसे अधिक मिलनसार परमात्मा को, प्रार्पण से प्राणायामों इन्द्रियसंयमों और स्वकीय आत्मभाव से अपने अन्दर बढ़ावें तो वह हमारे अन्दर बहुत प्रकाशमान रूप में साक्षात् होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
६६२ स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि।
३ १ २ ३ १ २
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३॥ ऋ० ६.१६.१२

(सः-अग्ने देव) वह तू ज्ञानप्रकाशक परमात्मदेव ! (नः) हमारे लिए (पृथु बृहत् सुवीर्यं श्रवाय्यम्) महान् "पृथु महान्" [निरु० १२।२६] ज्येष्ठ श्रेष्ठ "ज्येष्ठं वै बृहत्" [ऐ० ८।२] सुनने योग्य प्रशंसनीय शोभनबल—अध्यात्म या दिव्य आयु मोक्ष आयु "आयुर्वीर्यंहिरण्यम्" [मै. १।७।५] को (अच्छा विवाससि) सम्यक् सम्पादित करता है "विवासतिः परिचर्यायाम्" [निरु. ११।१३]

परमात्मा हम उपासकों के लिए महान् श्रेष्ठ परम्परा से प्रसिद्ध दिव्य आयु मोक्ष को सम्यक् सम्पादित करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रो गाथिनो जमदग्निर्वा भार्गवः (गाथा वाक् वेदवाक्† वेदविद्या में निष्णात सर्वमित्र उपासक

---

† "गाथा वाङ्नाम" [नि०घं० १।११]

या साक्षात् परमात्माग्नि वाला आत्मतेज से पूर्ण उपासक)

देवता—मित्रावरुणौ (सत्कर्म में प्रेरक तथा अपनी ओर वरणकर्ता परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ । २ ३ . १ २२
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
१ ३ १ २
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१॥

(सुक्रतू) हे शोभन कर्म वाले—(मित्रावरुणौ) प्राणसमान तू संसार में सत्कर्मार्थ प्रेरित करने वाला पुनः अपान के समान मोक्ष में अपनी ओर वरने वाला हुआ "प्राणापनौ मित्रावरुणौ" [तां० ६।१०।५]† (नः) हमारी (गव्यूतिम्) स्तुतिप्रवहणभूमि—हृदयगुहा को (घृतैः) अपने तेजोमय दर्शन स्नेहादि से (आ-उक्षतम्) सींच दे (मध्वा रजांसि) अपने मीठे सुख भोग फलों से हमारी रञ्जनीय इन्द्रियों को भी सींच—तृप्त कर दे।

हे सुकर्मा परमात्मन् ! तू संसार में सत्कर्मकरणार्थ प्रेरक पुनः मोक्षार्थ अपनी ओर लेने वाला होता हुआ हमारी स्तुति-स्थली को अपने दर्शन स्नेहादि से भर देता है तथा संसार में भी मधुर कर्म फलभोग से हमारी रञ्जनीय इन्द्रियों को भी तृप्त कर देता है जिनमें पुनः भटकने अशान्त होने का अवसर नहीं रहता ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ . १ १२ १२
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।
१ २
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥२॥

---

† सर्वत्र द्विवचनं परमात्मनो द्विधमत्वप्रदर्शनार्थम् ।

(उरुशंसा) हे अति प्रशंसनीय (नमोवृधा) स्तुतियों द्वारा मुक्त उपासक को बढ़ाने वाले (मह्ना) महान् (शुचिव्रता) पवित्र कर्म करने वाले मित्रावरुणस्वरूप परमात्मन् (द्राघिष्ठाभिः) तू दीर्घ काल की स्तुतियों द्वारा (दक्षस्य राजथः) मेरे आत्म-स्वरूप को प्रकाशित कर रहा है ।

परमात्मन् ! तू अति प्रशंसनीय है पवित्रकारी महती पूर्व से चली आई स्तुतियों से मुक्त उपासक के आत्मबल पर अधिकार किये रक्षा कर रहा है ॥ १ ॥

३ २ ३१ २ ३ १ २ ३१ २
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
३ १ २र
पातं सोममृतावृधा ॥२॥

(जमदग्निना गृणाना) हे सत्कर्म में प्रेरक और अपनी ओर मोक्षार्थ लेने वाले परमात्मन् ! तू प्राप्त वैराग्य वाले उपासक द्वारा स्तुत किया हुआ (ऋतस्य योनौ सीदतम्) अध्यात्मयज्ञ के सदन हृदय में विराजमान हो "यज्ञो वा ऋतस्य योनिः" [श. १।३।४।१६] (ऋतावृधा) हे अध्यात्मयज्ञ के बढ़ानेवाले परमात्मन् ! (सोमं पातम्) उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर।

सत्कर्म में प्रेरित करने वाला और मोक्षार्थ अपनी ओर आकर्षित करने वाला परमात्मा साक्षात् होता हुआ उपासक द्वारा स्तुत किया हुआ अध्यात्मयज्ञ के सदन-हृदय में विराजता है और उपासनारस भी स्वीकार करता है ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—इरिम्बिठः (अन्तरिक्ष में—हृदयाकाश में या शब्द में—स्तुति वचन में मति जिसकी है ऐसा विद्वान्

"बिठमन्तरिक्षम्" [निरु० ६।३०] "बिट् शब्दे" [भ्वा०] "पृषोदरादित्वादिष्टसिद्धिः"

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आयाहि सुषुमाहि त इन्द्र सोम पिबा इमम् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥ ऋ० ८.१६.१

(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! तू (आ याहि) आ जा (ते) तेरे लिए (सोमं सुषुम हि) हम उपासनारस को सम्पादन करते हैं (इमं पिब) इसे पान कर—स्वीकार कर (मम-इदं बर्हिः) मेरे इस हृदयाकाश पर "बर्हिः-अन्तरिक्षनाम" [निघ० १।३] (आ सदः) आ बैठ ।

परमात्मा के लिए उपासनारस तैयार करना उसे स्वीकार कराने का आग्रह करना अपने हृदयाकाश में समन्तरूप से बिठाना चाहिये ॥ १ ॥

१ २ ३२३ २३१२ ३१२
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्रकेशिना ।
२ ३ १ ३
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥ ऋ० ८.१६.२

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! (त्वा) तुझे (ब्रह्मयुजा केशिना हरी) तुझ ब्रह्म से युक्त होने वाले ज्ञानरश्मि वाले—ज्ञानपूर्वक प्रवर्तमान 'रश्मयः केशाः' [तै० सं० ७।५।२५।१] स्तुति और उपासना "ऋक्सामे वै हरी" [श० ४।४।३।६] (आवहताम) मेरे अन्दर आमन्त्रित करें (नः-ब्रह्माणि) हमारे मनोभावों और कामनाओं को "मनो वै सम्राट् परमब्रह्म" [श० १४।६।१०।१२]

"मनो ब्रह्मेत्युपासीत" [उपनिषद्] "मनो ब्रह्मेति व्यजानात्" [तै. आ. ९।४।१] (उपश्रृणु) स्वीकार कर।

परमात्मा को युक्त होने वाली स्तुति उपासना ज्ञानपूर्वक करने से परमात्मा का साक्षात् कराती है तभी परमात्मा हमारे मनोभावों को स्वीकार करता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २

६६८ ब्रह्माणस्त्वायुजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः ।

३ १ २

सुतावन्तो हवामहे ॥३॥ ऋ. ८.१६.२

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! (वयम्) हम (सोमिनः) उपासनारस को समर्पित करने वाले (सुतावन्तः) उपासनारस तैयार कर चुके हुए (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञान में समर्थ मनस्वी उपासक (युजा) योग—समाधियोग के द्वारा (त्वा हवामहे) तुझे अपने अन्दर आमन्त्रित करते हैं।

जब हम मनस्वी जन उपासनारस परमात्मा के समर्पणार्थ सम्पन्न कर समर्पण करना चाहें तब योगसमाधि का अनुष्ठान करें तो परमात्मा को अपने अन्दर साक्षात् कर सकते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषि-—विश्वामित्रः (सब का मित्र या सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी देवते (ऐश्वर्यवान् एवं प्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
३ १ २ ३ ३ ३२
अस्य पातं धियेषिता ॥१॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवान् प्राणस्वरूप और प्रकाशमान उदान-स्वरूप परमात्मन्! तू (धिया गीर्भिः-इषिता) ध्यान से और स्तुतियों से लक्षित हुए (वरेण्यं-नभः) वरने योग्य हृदयाकाश को (आगतम्) आ—प्राप्त हो (अस्य सुतं पातम्) इस हृदय के निष्पन्न उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर।

ऐश्वर्यवान् तथा प्रकाशस्वरूप परमात्मा ध्यान से और स्तुतियों से लक्षित हुआ हृदयाकाश को प्राप्त होता है और वहाँ निष्पन्न उपासनारस को स्वीकार करता है॥ १॥

१ २ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमं सुतम् ॥२॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवान् प्राणरूप और प्रकाशमान उदान रूप परमात्मन्! (जरितुः) मुझ स्तुतिकर्ता का "जरिता स्तोतृ-नाम" [निघ० ३।१६] (चेतनः-यज्ञः) जड़ यज्ञ—द्रव्य यज्ञ—होम यज्ञ नहीं अपितु चेतन यज्ञ—चेतन आत्मा में होने वाला आत्मभावनार्पण (सचा जिगाति) तेरे साथ चलता है "सचा सहेत्यर्थः" [निरु० ५।५] "जिगाति गतिकर्मा" [निघ० २।१४] (अया-इमं सुतं पातम्) इस मेरी स्तुति से निष्पन्न आर्द्रभाव भरे उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर।

ऐश्वर्यवान् प्राणरूप और प्रकाशमान उदानरूप परमात्मन्! मुझ स्तुतिकर्ता का स्वात्मभाव भरा आत्मसमर्पण यज्ञ निरन्तर चलता रहता है यह जड़यज्ञ बाहिरी द्रव्ययज्ञ जैसा अस्थिर नहीं

होता है तथा स्तोता को निरन्तर चेताता रहता है स्तुतिकर्ता की स्तुति से निःसृत उपासनारस को तू स्वीकार करता है ॥ २ ॥

१ २३१ २३ १ ३१ २ ३ १ २
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
१२ १२ ३ १ २
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥

इन्द्रम्-अग्निम्) ऐश्वर्यवान् प्राणरूप एवं प्रकाशवान् उदान-रूप परमात्मा को (कविच्छदा) जो मेधावी ऋषिजनों का रक्षक है ऐसे को (यज्ञस्य जूत्या वृणे) अध्यात्मयज्ञ की प्रीति "जूतिः प्रीतिर्वा" [निरु० १०।२९] के कारण वरता हूँ अपने में धारण करता हूँ (ता) उन दोनों रूप वाले परमात्मा को (इह) इस जीवन में (सोमस्य तृम्पताम्) उपासनारस को स्वीकार कर मुझे तृप्त कर ।

स्तुतिकर्ता ऋषिजनों के रक्षक ऐश्वर्यवान् प्राणरूप और प्रकाशवान् उदानरूप परमात्मा को अध्यात्मयज्ञ रचाने की प्रीति श्रद्धा से स्वीकार करता हूँ वह इस जीवन में उपासनारस स्वीकार कर मुझे तृप्त करे ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आङ्गिरसोऽमहीयुः (प्राणविद्यानिष्णात मोक्ष का इच्छुक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे ।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पूर्वार्चिक पृष्ठ संख्या ३८६)

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवो वित्परिस्रव ॥२॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४८६)

एना विश्वान्यर्य आद्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥३॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४८७)

द्विती य द्व्यृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं मोक्ष को चाहने वाला)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—बृहती (प्रगाथः)

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४१५)

दुहान ऊधर्दिव्यं मधुप्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥२॥

(नृभिः-धौतः-विचक्षणः) मुमुक्षुजनों द्वारा परिष्कृत उपासक "नरो हवै देवविशः" [जै० १।२३] (दुहानः) जब हे सोमरूप शान्त आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन् ! तुझे दुहने वाला अपने अन्दर आकर्षित करने वाला उपासक (मधु प्रियं प्रत्नम्-आपृच्छ्यं धरुणं सधस्थं दिव्यम्-ऊधः-आसदत्) तुझ मीठे प्रिय शाश्वत जिज्ञास्य सर्वाधार साथ रहने वाले हृदयस्थ दिव्य-अलौकिक आनन्दरसपूर्ण को दोहनार्थ प्राप्त होता है, तो (वाजी-अर्षसि) तू अमृत अन्न भोग वाला उपासक को प्राप्त होता है "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

उत्तम जनों से शिक्षित उपासक जब तुझ शान्त स्वरूप मधुर प्रिय शाश्वत—स्थायी जानने योग्य सर्वाधार साथ रहने वाले परमात्मा को अपने अन्दर प्राप्त करना चाहता हुआ तेरी ओर आता है तो तू भी अवश्य प्राप्त होता है ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काव्य उशनाः (मेधावी से सम्बद्ध मोक्षकांक्षी)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः— त्रिष्टुप् ।

१२ २२३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हि रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४२४)

३ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः॥२

(इन्दुः-देवः) आनन्दरसभरा शान्त परमात्मदेव (स्वायुधः) स्वशक्तिरूप आयुध वाला विरोधी के ताडन करने को स्वशक्तिरूप अस्त्र वाला (अशस्तिहा) पापनाशक "पाप्मा वा अशस्तिः" [श० ६।३।२।७] (वृजना रक्षमाणः) समस्त वलों को रखता हुआ "वृजनं बलनाम" [निघ० २।९] (देवानां जनिता पिता) दिव्यगुण पदार्थों का उत्पादक और रक्षक (सुदक्षः) सुन्दर प्राणप्रेरक "प्राणो वै दक्षः" [श० ४।१।४।१] (दिवः-विष्टम्भः) द्युलोक का सम्भालने वाला (पृथिव्याः-धरुणः) पृथिवी लोक का धारक (पवते) आत्मा में प्राप्त होता है।

आनन्दरस का भरा परमात्मा जो महान् द्युलोक का सम्भालने वाला और पृथिवी को धारण करने वाला है अपितु समस्त दिव्यगुण पदार्थों का जनक और रक्षक है जिससे सब में सम्यक् प्राणसञ्चार होता है वह पापविनाशक वलों का रक्षक उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २ ३ २ ३ १ २
ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

(जनानां पुरः-एता) जनों का आगे ले जाने वाला (ऋषिः-विप्रः) सर्वद्रष्टा विशेष प्राप्त (धीरः) धारणकर्ता (काव्येन-उशनाः-ऋभुः) कौशल से कमनीय प्रकाशमान सोम शान्तस्वरूप परमात्मा है (सः-चित्) वह ही (गोनां गुह्यं नाम) वेदवाणियों के गुप्त रहस्य को (विवेद) खोलकर जनाता है (यत्-आसाम्-अपीच्यं निहितम्) जो कि इन में अपचित—सार "अपीच्यम्—अपचितम्" [निरु० ४।२५] रखा है।

मनुष्यों को आगे उन्नति की ओर ले जाने वाला सर्वद्रष्टा

सर्वसाक्षी अन्तर्यामी विशेषरूप से प्राप्त सब का धारणकर्ता जगद्रचनाकौशल से कमनीय प्रकाशमान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा है वही वेदवाणियों—वेदवचनों के गहन रहस्य को जनाता है विशेष उपासकजनों को जो उनमें साररूप में रखा हुआ है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्व्यर्च

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)
छन्दः—बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३.१ २
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पू० १८५)

१र २र ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

(मघवन्-इन्द्र) हे मोक्षैश्वर्यवान् परमात्मन् ! (त्वावान्) तेरे जैसा शरण्यदेव (अन्यः-न दिव्यः-न पार्थिवः) कोई न द्युलोक वाला न पृथिवीलोक वाला (न जातः-न जनिष्यते) न

उत्पन्न हुआ न उत्पन्न होवेगा यह निश्चय है (अश्वायन्तः—गव्यन्तः) हम सदन्तःकरण चाहते हुए संयत इन्द्रिय चाहने वाले होते हुए (वाजिनः) अमृतान्नभोग के भागी (त्वा हवामहे) तुझे आमन्त्रित करते हैं।

मानव का शरण्यदेव वास्तव में केवल परमात्मा ही है कोई अन्य न द्युलोक का पदार्थ न कोई पृथिवीलोक का पदार्थ हो सकता है। उस के आश्रय से हम उत्तम अन्तःकरण वाले संयत पवित्र इन्द्रियों वाले होते हुए अमृतभोग मोक्ष के भागी हो सकते हैं, उसका अपने अन्दर आमन्त्रण करना चाहिये॥२॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मा की उपासना करने वाला)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—गायत्री।

१ २ ३१र २र ३ २ ३ १ ३ २ ३ २
कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा।
२ ३ १२ ३ २
कया शचिष्ठया वृता॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३८)

२ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु॥२॥

(अन्धसः) अध्यात्म यज्ञ के "यज्ञो वा अन्धः" [जै०१।११६] (मदानाम्) हर्ष वाले—हर्षप्राप्तियोग्यों में "अत्र मत्वर्थीयोऽका-

रश्छान्दसः" (कः) कोई भाग्यशाली (सत्यः) सत्पुरुष (मंहिष्ठः) अतीव महनीय प्रशंसनीय उपासक (त्वा मत्सत्) तुझ इन्द्र परमात्मा को तृप्त करता है—सन्तुष्ट करता है "मदी तृप्तियोगे" [चुरादि०] तथा (दृढा चित्-वसु-आरुजे) दृढ भी वसुओं मध्य में वसे बाधकों को समन्तरूप से भङ्ग करने को समर्थ होता है।

अध्यात्मयज्ञ के आनन्द प्राप्त करने वाले अधिकारियों में विरला प्रशंसनीय उपासक सच्चा जन परमात्मा को स्वोपासन कर्म से सन्तुष्ट करता है तथा बडे बसे हुए बाधकों को भङ्ग—नष्ट करता है ॥ २ ॥

२उ ३ १२ ३ १ २ ३ २
अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
३ १ २ ३ १ २
शतम्भवास्यूतये ॥३॥

(नः-जरितॄणाम् सखीनाम्) हे इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! तू हम स्तुतिकर्ता उपासक मित्रों की (ऊतये) रक्षा के लिए (शतम्-अभि) आयु के प्रति—जब तक आयु है—आयुपर्यन्त "यच्छतमायुष्टत्" [जै० २।४७] 'अभ्याप्तुम्' प्राप्त करने को (सुभव) सुगम हो जा ।

परमात्मा अपने मित्ररूप स्तुतिकर्ता जनों की ओर आयु भर झुका हुआ या प्राप्त होने को उद्यत रहता है उनकी रक्षा के लिये, परमात्मा की स्तुति करने वाले उसके मित्र हो जाते हैं उनकी आयु भर रक्षा करता है ॥ ३ ॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—नोधाः (स्तुतिधारक†)

† "नोधा नवनं दधाति" (निरु. ४।१६)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १८८)

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

(तविषीभिः-आवृतम्) नाना बलप्रवृत्तियों से परिपूर्ण (गिरिं न) पर्वत के समान (पुरुभोजसम्) वहुत पालक (सुदानुम्) सुखदान करने वाले (द्युक्षम्) प्रकाश में निवास कराने वाले (द्युमन्तम्) प्रकाशवान् (गोमन्तम्) ज्ञानवान् सर्वज्ञानप्रद सर्वज्ञ (वाजम्) अमृत अन्नभोग वाले 'मकारोऽत्र मत्वर्थीयः' (शतिनं सहस्रिणम्) शतगुणित सहस्रगुणित वर के देने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (मक्षु-ईमहे) शीघ्र—वार वार प्रार्थित करते हैं "ईमहे याञ्चकर्मा" [निघ० ३।१९]।

हमें उस नाना शक्तियों से युक्त बहु प्रकार से पालनकर्ता सुखदान करने वाले प्रकाशमय मोक्षधाम में निवास कराने वाले स्वयं प्रकाशस्वरूप ज्ञानवान् सर्वज्ञ अमृतानन्दभोग के स्वामी अपनी स्तुति प्रार्थना उपासना का भेंट के शतगुणित सहस्रगुणित फल वररूप में देने वाले परमात्मा की शीघ्र—पुनः—निरन्तर प्रार्थना करनी चाहिये ॥ २ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—कलिः प्रगाथः (प्रकृष्ट वाणी वाला वक्ता)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पूर्ववत् ।

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १८९)

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥

(अन्धसः-मदे) आध्यानीय उपासनीय के आनन्दप्रदान के निमित्त उपासकार्थ (यं सुशिप्रम्-इन्द्रम्) जिस सुगतिमान् विभुगतिमान् परमात्मा को (दुध्राः-न वरन्ते) दुर्धारणावाले जन नहीं प्राप्त करते हैं (न स्थिराः-मुरः) निष्कर्म ढीठ अविचारशील नहीं प्राप्त करते हैं (यः) जो (शशमानाय सुन्वते जरित्रे) शंसमान—प्रशंसा करते हुए उपासनारस निष्पादन करते हुए स्तोता के लिए (आदृत्य-उक्थ्यं दाता) आदर—स्नेह करके प्रशस्य स्व आनन्द को प्रदान करता है ।

उपासनीय परमात्मा के आनन्दरस प्राप्त करने के लिए उस विभु परमात्मा को दुष्ट विचार वाले ढीठ या विचारशून्य जन प्राप्त नहीं कर सकते हां वह परमात्मा प्रशंसा करने वाले उपासनारसनिष्पादक स्तोता उपासक के लिए स्नेह स्वागत से अपना प्रशंसनीय आनन्द प्रदान करता है ॥ २ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८७)

३ २ ३ १ २ २ ३ ३ १ २
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभियोनिमयोहते ।
१ २ ३ २ ३ १ २
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२॥

(रक्षोहा) पापवासना का नाशक (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा परमात्मा (अयोहते) हिरण्य "अयः-हिरण्यनाम" [निघ० १।२] —ज्योति से संहत—आत्मज्योतिसम्प्रेरित (द्रोणे) हृदयकोष्ठ को 'द्वितीयार्थे सप्तमी' (सधस्थं योनिम्-अभि-आसदत्) जो आत्मज्योति और सर्वद्रष्टा परमात्मा का समानस्थान गृह है उसे अभिप्राप्त होता है ।

सर्वद्रष्टा पापनाशक परमात्मा उपासना द्वारा आत्मा और परमात्मा के समानस्थान आत्मा से सम्प्रेरित हृदयकोष्ठ को सम्यक् प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वरिवो धातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।
२ ३ १ २ ३ १ २
पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

(वृत्रहन्तम) हे अत्यन्त पापनाशक परमात्मन् ! तू (वरिवः-धातमः) धन का अत्यन्त धारक "वरिवः-धननाम" [निघ० २।१०] साथ ही (मंहिष्ठः) अत्यन्त दाता भी है (मघोनाम्) धन वालों को तू ही (राधः पर्षि) धन पूरता है।

पापाज्ञान का नाशक परमात्मा महान् धन का धारक होता हुआ अतीव दानकर्ता भी है, जितने भी धनवान् हैं उनको वही धन से भरपूर करता है। परमात्मन् ! तेरे जैसा कोई दानी नहीं दानियों को धन भी तू ही दानार्थ धन देता है तेरी उपासना से कोई निर्धन नहीं रह सकता ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—गौरिवीतिः (ब्रह्मवर्चस् तेज का सम्पादक†)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—ककुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७५)

† "तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतम्" (ऐ० ४।२)

छन्दः—बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।
२ ३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छावाजं नैतशः ॥२॥

(यस्य ते) जिस तुझ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के आनन्दरस का (पीत्वा) उपासना द्वारा पान करके (वृषभः—वृषायते) वृषभ की भांति उपासक आत्मा वृषसमान पुष्ट प्रफुल्लित हर्षित हो जाता है तथा (अस्य स्वर्विदः पीत्वा) इस तुझ सुख को प्राप्त कराने वाले का आनन्दरस पान करके (सः—सुप्रकेतः) वह उपासक सम्यक् ज्ञानमय बन कर हो कर (इषः—अभ्यक्रमीत्) अपनी एषणाओं—वासनाओं को स्वाधीन करता है—जीत लेता है—(वाजं न-एतशः-अच्छा) जैसे घोड़ा संग्राम को सामने होकर स्वाधीन करता है ।

उपासक जन परमात्मा के आनन्दरस का पान कर वृषभ-समान पुष्ट बलवान् बन जाता है और उस स्वर्गीय सुखस्वरूप परमात्मा का आनन्दरस पान कर उपासक आत्मा सम्यक् ज्ञान-मय प्रसिद्ध हो अपनी वासनाओं को स्वाधीन करता है जैसे बल-वान् घोड़ा संग्राम को सीधा स्वाधीन करता है ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३१२ २र ३ १ २
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४६६)

३ १र २र ३ १र २र ३ २
अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
१ २ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥

(अयं सानसिः सुतः सोमः) यह सम्भजनीय साक्षात् किया शान्त परमात्मा (इन्द्राय) उपासक आत्मा के 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थी' (भराय) भरण पोरण के लिए (पवते) आनन्दधारा रूप में प्राप्त होता है, पुनः (जैत्रस्य) इन्द्रिय जयशील के (यथाविदे) यथार्थवेतृत्त्व—यथार्थ ज्ञान के लिए (चेतति) उसे चेताता है।

सम्भजनीय साक्षात् किया हुआ परमात्मा उपासक आत्मा के भरण पोषण के लिए आनन्दधारा में बहता सा आता है। पुनः इन्द्रिय मन पर जय पाने वाले उपासक के यथार्थ—ज्ञानार्थ उसे सावधान करता है ॥ २ ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥

(इन्द्रः) उपासक आत्मा (अस्य-इत्) इस आनन्दधारा में साक्षात् परमात्मा के ही (ग्राभं सानसिम्-आगृभ्णाति) ग्रहण करने योग्य एकांश भजनीय स्वरूप ठीक ग्रहण कर पाता है (मदेषु) अपने समस्त तृप्तिप्रसङ्गों में (समप्सुजित्) सम्यक्-व्याप्त प्रवृत्तियों में विजय पाने वाला (वृषणं वज्रं भरत्)

आनन्दवर्षक ओज को धारण करता है "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]

उपासक आत्मा आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा को विभुरूप में नहीं किन्तु यावत् शक्य स्वरूप को ही सेवन करता है, इतने मात्र से वह अपनी ओर प्राप्त होने वाली समस्त प्रवृत्तियों को जीत लेता है तथा आनन्दवर्षक ओज को भी प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला संयमी उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
अप श्वानꣳ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४४७)

छन्दः—गायत्री ।

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
२ ३ २ ३ १र २र
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२॥

(यः-इन्द्रः) जो आर्द्र आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (सुतः) निष्पादित—उपासित हुआ (पावकया धारया) पवित्र करने—

दोष पाप दुःख निवारण करने वाली ज्ञानधारा से (परिप्रस्यन्दते) सर्वतोभाव से प्राप्त होता है (अश्वः-न कृत्व्यः) कर्म—गतिकर्म कुशल घोड़े की भांति "कृत्वी कर्मनाम" [निघ० २।१]

जैसे सर्वतोभाव से मार्गव्यापनशील घोड़ा पूर्णरूप से मार्ग को व्यापता है ऐसे उपासना द्वारा साक्षात्कृत परमात्मा उपासक आत्मा को निर्मल करने वाली ज्ञानधारा से सर्वतोभाव से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

२ ३१ २ ३ १उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तं दुरोषमभीनरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥४॥

(अद्रयः-नरः) विघ्न बाधाओं से दीर्ण—क्षीण न होने वाले मुमुक्षु उपासक "नरो ह वै दैवविशः" [जै० १।८९] (विश्वाच्या धिया) सर्वात्मना प्राप्तिशक्तिमयी उपासना क्रिया से "धीः कर्म-नाम" [निघ० २।१] (तं दुरोषं सोमम्) उस ओष—दाह को ध्वंश करने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा को (यज्ञाय) अध्यात्मयज्ञ सम्पादन के लिए (अभि सन्तु) स्वाश्रय करते हैं—स्वात्मा में धारण करते हैं ।

मुमुक्षु उपासक सर्वात्म प्राप्ति कराने वाली उपासना क्रिया से अध्यात्मयज्ञ चलाने के लिए उस दाह ताप के नाशक परमात्मा को स्वात्मा में धारण करते हैं ।। ३ ।।

पञ्चम तृच

ऋषिः—भार्गवः कविः (अध्यात्मज्ञान से देदीप्यमान मेधावी)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—जगती ।

600 XXV

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अभि प्रियाणि पवते चनो हितो
१ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २
नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
१२ २र ३ २ ३१उ ३ २ ३
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं
१ २ ३ २
विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥ ऋ० ९.७५.१.

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५४)

601

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं
३ १र २र ३ २ ३ १र २र
वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
१ २ ३ २ ३ १ २३ २ १ २
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३नाम
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
तृतीयमधिरोचनं दिवः ॥२॥ ऋ० ९.७५.२

(ऋतस्य जिह्वा) अमृतस्वरूप सोम शान्त परमात्मा की वाक्—स्तुति "ऋतममृतमित्याह" [जे०२।१६०] (मधुप्रियं पवते) मधु है प्रिय जिसको ऐसे उपासक को पवित्र कर देती है (अस्या धियः-वक्ता-अदाभ्यः पतिः) इस स्तुतिरूप धी का प्रज्ञा प्रवचन-कर्ता अदभनीय पति है—अधिकारी है (पित्रोः पुत्रः) द्यावा-पृथिवी लोकद्वय का त्राणकर्ता (दिवः-अधि रोचनं तृतीयम्) प्रकाशमय मोक्ष में रुचिकर तृतीय अमृत नाम ओ३म् सोम (अपीच्यं नाम दधाति) अन्तर्हित "अपीच्यम्-अन्तर्हितनाम" [निघ० ३।२५] नाम को धारण करता है ।

अमृतस्वरूप शान्त परमात्मा की स्तुति परमात्मसम्बन्धी मधु(), इसको चाहने वाले को, उपासक को पवित्र कर देती है, इस

स्तुतिरूप प्रज्ञा का प्रवचनकर्ता अहिंसनीय अधिकारी हो जाता है द्यावापृथिवी का त्राणकर्ता मोक्ष में रुचिकर अमृतनाम ओ३म् अन्तर्हित को धारण करता है ॥ ३ ॥

६०२ अवद्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभि-
येमाणः कोश आ हिरण्यये ।
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि
त्रिपृष्ठ उषसो विराजसि ॥३॥ ऋ०. ९.६४.२

(द्युतानः) द्योतमान स्वात्मरूप से प्रकाशमान सोम शान्तस्वरूप परमात्मा (नृभिः-हिरण्यये कोशे-आयेमानः) सुनहरे कोश—हृदयकोश में आकर्षित किया जाता हुआ (कलशान्-अभिक्रदत्) समस्त ज्ञानाशयों में प्रवचन करता है (ऋतस्य दोहना) सोमरूप अमृत के दोहने वाले मुमुक्षु जब (अनूषत) उसकी स्तुति करते हैं तब परमात्मा (उषसः-अधि त्रिपृष्ठे विराजसि) परमात्मन् ! तू ज्ञानप्रकाशतरङ्ग में होने वाले स्तुति प्रार्थना उपासना के स्तर में विशेषरूप से प्रकाशमान होता है।

स्वरूप से प्रकाशमान परमात्मा जब मुमुक्षुओं द्वारा दिव्य हृदयकोश में आकर्षित किया जाता है ध्याया जाता है तो वह समस्त ज्ञानविषयों को सुझाता है, पुनः उस अमृतरूप परमात्मा को दोहने वाले मुमुक्षु उपासक जब उसकी स्तुति करते हैं तो हे परमात्मन् ! तू ज्ञानप्रकाशधारा में होने वाले स्तुति प्रार्थना उपासना स्तर में विशेषरूप से प्रकाशित होता है साक्षात् होता है॥३॥

—:०:—

षष्ठ खण्ड

प्रथम द्वयृच

ऋषिः—तृणपाणिः शंयुः (तुच्छ भेंट आत्मसमर्पी, परमात्मा का इच्छुक उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—बृहती ।

६०३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
३५ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
प्र प्रवयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥२॥
ऋ० ६-४८-१ (देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३१)

६०४ ३ १र २र३ २ ३ १र २र ३१र २र ३ १ २
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
२ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
भुवद्वाजेष्ववितां भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥
ऋ० ६-४८-२

(ऊर्जः-नपातम्) हमारे आत्मस्वरूप को न गिराने वाले अग्नि ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को "ऊर्वै स्वं यावद्वै पुरुषस्य स्वं भवति" [श० ५।३।५।१२] उपासित करें (सः-हिना-अयम्-अस्मयुः) वह सचमुच यह हमें चाहने वाला अपनाने वाला है (हव्यदातये दाशेम) हम अपनी उपासनाहवि को देने के लिए अपने को समर्पित करते हैं (वाजेषु-अविता भुवत्) वह अमृत अन्नभोगों के निमित्त रक्षक है (उत) और (तनूनां वृधे त्राता भुवत्) उपासक आत्माओं के वर्धन—उत्कर्ष के लिए "आत्मा वै तनूः" [श० ६।७।२।६] रक्षक होता है ।

हम अपने आत्मस्वरूप को न गिराने वाले अपितु उन्नत करने वाले ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा की उपासना करें वह भी यथार्थरूप से हमें अपनाने वाला है, अतः उपासनारूप भेंट अर्पित करने के लिए हम अपने को उसकी ओर प्रेरित करें वह हमारे अमृतभोगों के हेतु रक्षक बनता है और वह सदा उपासक आत्माओं की वृद्धि उन्नति के लिए रक्षक होता है ॥ २ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न को धारण करने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

२ ३१२ २२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
एह्यूषु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
३ १ २ ३ १ ३
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पृ० ७)

२ ३क२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधसे उत्तरम् ।
२ ३ १ २
तत्र योनिं कृणवसे ॥२॥

(यत्र क्व च) जिस भी उपासक में (ते) तेरे लिए (मनः) मनोभाव—मनन—आस्तिकता है वहाँ तू (उत्तरं दक्षं दधसे) अपना उत्तम वरने योग्य स्वरूप धारण करता है—स्थापित करता है और (तत्र) वहाँ (योनिं कृणवसे) अपना निवास स्थान बनाता है ।

परमात्मन् ! जिस उपासक के अन्दर तेरे प्रति मनोभाव

आस्तिकता है वहाँ तू अपना दर्शन-ज्ञान कराता है और वहाँ अपना निवास बनाता है ॥ २ ॥

१२ २२३ १ २ ३ १२ २र३
न हि ते पूर्त्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते ।
२ ३ १ २
अथा दुवो वनवसे ॥३॥

(नेमानां पते) हे नमने वाले उपासकों के रक्षक परमात्मन् ! (ते-अक्षिपत् पूर्त्तं न हि भुवत्) उनके लिए तेरा इन्द्रिय-शक्तियों का गिराने वाला उन्हें समाप्त करने वाला तेज या ताप प्राप्त नहीं होता है (अथ दुवः-वनवसे) और तू उनके सेवा उपासना को स्वीकार करता है 'वनवसे' द्विविकरणप्रयोगश्छान्दसः ।

उपासकों का पालन करने वाला परमात्मा है उनकी इन्द्रिय-शक्तियों को परमात्मा तेज ताप नहीं देता भौतिक अग्नि की भांति, तथा वह उनकी उपासना को स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा के आनन्द को अपने अन्दर भरने में कुशल)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रिञ्चित्रं हवामहे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३३६)

छन्द—बृहती ।

उ पत्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिमिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

(कर्मन्) प्रत्येक कर्म में (ऊतये) रक्षा के लिए (त्वा-उप) तेरी हम उपासना करते हैं (सः-यः-युवा-उग्रः-धृषत्-नः-चक्राम) वह जो कि युवा—सदा युवा पूर्ण समर्थ प्रतापी पापप्रताड़क होता हुआ हमें उत्साही तेजस्वी करता है, अतः (इन्द्र त्वां सानसिम्-अवितारम्-इत्-हि) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! तुझ सम्भजनीय रक्षक को ही निश्चय (सखायः-ववृमहे) हम तेरे सखा—उपासक जन वरते हैं—अपनाते हैं ।

प्रत्येक कर्म में सदा समर्थ पापनाशक सम्भजनीय परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधा वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—ककुप् ।

अधाहीन्द्र गिर्वणः उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३३५)

छन्दः—उष्णिक् ।

१२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
३ १ २ ३ १ २
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥२॥

(शूर-अद्रिवः) हे पूर्ण समर्थ आनन्दमेघवन् परमात्मन् ! (त्वा) तुझे (ब्रह्माणि) हमारे स्तवन—स्तुतिवचन (यव्याभिः-वाः-न वर्धन्ति) नदियों से—नदियों के जल "यव्याः-नद्यः" [निघ० १।१३] जैसे महान् जलाशय को बढ़ाते हैं—भरते हैं ऐसे (दिवे दिवे) दिन दिन—प्रतिदिन (वावृध्वांसं चित्) बढ़ते हुए जैसे को भरते हैं ।

हे आनन्द मेघ वाले समर्थ परमात्मन् ! तुझे उपासक जन अपने स्तुतिवचनों से ऐसे भरते जाते हैं जैसे नदियां अपने जलों से महान् जलाशय को भर दिया करती हैं इसलिए कि तुझ से अमृतानन्दरस पाने के लिए ॥ २ ॥

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
३ १ २ ३ १ २
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥३॥

(इषिरस्य) प्रेरक परमात्मा के (हरी) दुःखापहरण सुखाहरणसाधनभूत ऋक् साम वाणी से स्तवन और मन से उपासन को "ऋक्सामे वै हरी" [श० ४।४।३।६] "यद्वै शिवं शान्तं वाचस्तत् साम" [जै० ३।५२] (गाथया) वेदवाक्—मन्त्र से "गाथा वाङ् नाम" [निघ० १।११] (वचोयुजा) प्रार्थनावचन से जो

युक्त है (इन्द्रवाहा) परमात्मा को ले आने वाले (स्वर्विदा) मोक्ष प्राप्त कराने वाले हैं उन स्तवन उपसन को (उरुयुगे-उरौ रथे) महान् योगभूमि वाले महान् रसरूप ध्यानयज्ञ में "तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते" [गो० १।२।२१] (युजन्ति) उपासकजन युक्त प्रयुक्त करते हैं।

वेदमन्त्रानुरूप प्रार्थनाप्रयुक्त प्रेरक परमात्मा की स्तुति उपासना करो जो कि परमात्मा के आमन्त्रित करने वाले मोक्ष प्राप्त कराने वाले महान् उपाय महान् योगभूमिवाले रसरूप ध्यान में उपासक प्रयुक्त करते हैं हमें करना चाहिये ॥ २ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः



अथ द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुना है अध्यात्मकक्ष—भाग जिसने ऐसा उपासक)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)
छन्दः—अनुष्टुप्।

२ ३१ ३ १२३ १२३ १२ २२
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभिप्रगायत।
३ १२ ३१२३ २३ ३ २
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १२९)

छन्दः—गायत्री।

३ १ २ ३१ २ ३ २ १२
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यांऽ२ऽसनश्रुतम्।
२ ३ १२
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२॥

(पुरुहूतं पुरुष्टुतम्) बहुत आस्तिकों के द्वारा आमन्त्रणीय तथा बहुत आस्तिकों द्वारा स्तुत्य (गाथान्यम्) गाने वाली ऋचाओं से गाने योग्य (सनश्रुतम्) भजन स्तुति सुनने वाले को (इन्द्रः-इति ब्रवीतन) ऐश्वर्यवान् परमात्मा कहो—जानो।

बहुत आस्तिक जनों के आमन्त्रणीय बहुत आस्तिकजनों के स्तुतियोग्य वेदमन्त्रों से गाने-जानने योग्य भजन स्तुति सुनने वाले को इन्द्र परमात्मा कहो—जानो ॥ २ ॥

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः ।
३ १ २ ३ १ २
महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३॥

(इन्द्रः-इत्) [इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही (नः) हमारे लिए (महोनां वाजानां दाता) बहुमूल्य—महत्त्वपूर्ण अमृतभोगों का प्रदानकर्ता है तथा (महान्-अभिज्ञु नृतुः-आ यमत्) महान् कृपालु नेता हुआ हम पर शासन करता है ।

परमात्मा हमारे लिए महनीय महत्त्वपूर्ण अमृतभोगों का देने वाला और महान् कृपालु नेता हुआ शासन करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १२९)

२उ ३ २ ३ १ २ ३१ ३२उ ३ १२
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
३ २ ३ १ २
चकृमा सत्यराधसे ॥२॥

(नरः) मुमुक्षु जन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] (यथा) जिस प्रकार (सुदानवे) उत्तम दान करने वाले (उत) और (सत्यराधसे) सत्य—स्थायी मोक्षैश्वर्य वाले—अनश्वर धन वाले परमात्मा के लिए (उक्थं शंसेत्) वक्तव्य प्रशंसावचन—स्तवन बोलता है (चकृम) हम भी वैसा ही आचरण करें।

मुमुक्षु जन जैसे श्रेष्ठ दानदाता स्थिर मोक्षैश्वर्य वाले परमात्मा की स्तुति किया करता है वैसा हम उपासकों को भी करना चाहिये ॥ २ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं न इन्द्रवाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥

(शतक्रतो-इन्द्र) हे अनन्त ज्ञानकर्म वाले परमात्मन्! (त्वम्) तू (नः) हमारे लिए (वाजयुः) अमृत अन्न—मोक्ष को चाहने वाला हो "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] 'छन्दसि परेच्छायामपि क्यच्' (त्वम्) तू (गव्युः) सरस्वती—ज्ञानशक्ति का चाहने वाला हो "सरस्वती हि गौः" [श.१४।२।१।७] (वसो) हे हमें वसाने वाले (त्वम्) तू (हिरण्ययुः) आयु—दीर्घ जीवन का चाहने वाला है "आयुर्वै हिरण्यम्" [काठ०११।८]

परमात्मा उपासकों का आयुष्काम विद्याकाम और मोक्षकाम है वह अनन्त ज्ञान कर्म वाला और वसाने वाला है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधा वा (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला या प्रिय है अध्यात्म-यज्ञ जिसको)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—गायत्री।

३ १ २   ३.१.२ ३ १ २   ३ २ ३   १ २
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।
१ २ ३   १ २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३०)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३   १ २
न घेमन्यदापपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ।
२उ३र १ २
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥२॥

(वज्रिन्) हे ओजस्वी तेजस्वी परमात्मन्! "वज्रो वा ओजः" (श० ८।४।१।२०] (अपसः) तुझ व्यापक कर्मशक्तिमान् की (नविष्टौ) स्तुतियज्ञ में "णु स्तुतौ" [अदादि०] (अन्यत्-न घ-ईम्-आपपन) अन्य की स्तुति कभी नहीं करता हूँ (तव-इत्-उ) तुझे ही (स्तोमैः) समस्त स्तुतिवचनों में 'विभक्तिव्यत्ययः' (चिकेत) इष्टदेव जानता—मानता हूँ।

परमात्मा के स्तुतियाग में किसी अन्य की स्तुति नहीं करनी चाहिये, परमात्मा के स्थान पर न कोई जड़ और न चेतन स्तुति योग्य है किन्तु समस्त स्तुतिप्रसङ्गों में परमात्मा को ही इष्टदेव मानना चाहिये॥ २॥

३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १२ २र
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
१ २ ३ २ ३ १ २
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥

(देवाः) इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थं यद्वा स्तोतव्यदेवस्यानेकगुणप्रदर्शनपरम्' (सुन्वन्तम्-इच्छन्ति) उपासनारस निष्पादक को चाहता है—अपनाता है (स्वप्राय न स्पृहयन्ति) असावधान—नास्तिक को नहीं स्नेह करता है (अतन्द्राः प्रमादं यन्ति) सावधान उपासनारसनिष्पादक आस्तिक जन प्रकृष्ट हर्ष—ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं ।

उपासनारसनिष्पादक उपासक को परमात्मा स्नेह करता है असावधान नास्तिक को नहीं, सावधान आस्तिकजन ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३१)

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यस्मिन्विश्वा अधिश्रियो रणन्ति सप्तसंसदः ।
१ २ ३ २ २
इन्द्रं सुते हवामहे ॥२॥

(यस्मिन्) जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा में (विश्वाः श्रियः) समस्त ऐश्वर्यशक्तियां या प्रकृतियां सूक्ष्म सत्तायें जगन्निर्माण धारणार्थ (अधि) अधिष्ठित हैं—वर्तमान हैं, तथा (सप्त संसदः) सात छन्दोमय स्तोम—मन्त्र—ज्ञानधारायें या सप्त—समवेत होने वाले चेतन आत्माएं "संसदां संसत्त्वं यदेते स्तोमाश्च छन्दांसि च मध्यतः संसन्नाः" [जै० २।३५०] (रणन्ति) रमण करते हैं "रण्याः-रमणीयाः" [निरु० ६।३३] (इन्द्रं-सुते हवामहे) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को उपासनारस के निमित्त आमन्त्रित करते हैं।

जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा में सारी ऐश्वर्यशक्तियां या सूक्ष्म प्रकृतिसत्तायें अधिष्ठित हैं जिस में सात गायत्री आदि छन्दोमय मन्त्र ज्ञानधारायें या उसमें समवेत होने वाली चेतन सत्तायें हैं उस परमात्मा को उपासना-समय आमन्त्रित करना चाहिये अन्य को नहीं ॥ २ ॥

६२४.

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
१२३२ ३ १ २
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥

ऋ० ८. ९२. २१
अथर्व २०. ११०. ३

(देवासः) मुमुक्षु जन (त्रिकद्रुकेषु) तीन योगभूमियों—धारणा ध्यान समाधियों में "पृथिवी वै कद्रूः" [श० ३।१।२।२] "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा, तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्, तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः" [योग० ३।१-३] (चेतनं यज्ञम्) अध्यात्मयज्ञ योगाभ्यास को (अत्नत) तानते हैं—सम्पादन करते हैं (तम् इत्) उसे अवश्य (नः-गिरः) हमारी स्तुतियां (वर्धन्तु) बढावें—बढाती हैं।

मुमुक्षुजन अध्यात्मयज्ञ को धारणा ध्यान समाधि रूप तीन

योगभूमियों में विस्तृत करते हैं, अतः हमें अध्यात्मयज्ञ करना चाहिये उसे हमारी स्तुतियां उन्नत करें, हम स्तुतियों में ओ३म् परमात्मा को धारणा ध्यान समाधि का अवलम्बन बनावें "तज्जपस्तदर्थभावनम्" [योग० १।२८] को घटावें ॥ ३ ॥

—o—

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—इरिम्बिठः (हृदयाकाश में स्थिर स्तुतिकर्ता)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
१ २ ३ ३ १ २
एहीमस्य द्रवा पिब ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३१)

१ २ ३ १ ३ २ १र २र ३ १
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
१ २ ३ १ २
आखण्डल प्रहूयसे ॥२॥

(शाचिगो) हे प्रज्ञा में—प्रज्ञानुरूप गौ—वेदवाक् जिसकी ऐसे प्रज्ञानुरूप—प्रज्ञावृद्धिकर हे वेदवाक् के स्वामी "शचीति प्रज्ञानाम" [निघ० ३।९] "बुद्धिपूर्वा वाक्कृतिर्वेदे" [वैशे० ६।१।१] शची—प्रज्ञा में सम्पन्न 'सम्पन्नार्थे छान्दस इञ् प्रत्ययः'

(शाचिपूजन) प्रज्ञानुरूप पूजन उपासन जिसका होता है न कि अन्धविश्वास से ऐसे परमात्मन् ! (अयं सुतः) यह उपासना-रस (ते रणाय) तेरे रमण के लिए—तेरा रमण हमारे अन्दर हो इस लिए (आखण्डल प्र हूयसे) हे पापदोषों को छिन्न भिन्न करने वाले "आखण्डल आखण्डयितः" [निरु० ३।१०] तू प्रकृष्ट रूप से निमन्त्रित किया जाता है।

प्रज्ञानुरूप वेदज्ञानवाला तथा प्रज्ञानुरूप उपासनावाला परमात्मा है उसमें रमण कराने के लिए उपासनारस तैयार करना चाहिये, वह पापदोषों का सदा निवारक है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
२र ३ १र २र
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३॥

(ते शृङ्गवृषः) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् तुझ अज्ञानान्धकार-नाशक ज्ञानप्रकाशवर्षक का "शृङ्गाणि ज्वलतो नाम" [निघ० १।१७] (नपात्) न गिराने वाला अपितु धारण करने वाला तथा (प्रणपात्) आत्मा को भी प्रकृष्टरूप से न गिराने वाला उत्कर्षकर्ता (कुण्डपाय्यः) कुण्ड से जैसे पान करने योग्य भरपूर आनन्दरस पान करना होता है वह जो अध्यात्मयज्ञ है "क्रतौ कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ" (अष्टा० ३।१।१३०] (अस्मिन्) इस—उस में (मनः-नि-आ दध्रे) उपासक जन अपने मन को नियम से निरन्तर रखते हैं—समर्पित करते हैं

अध्यात्मयज्ञ जो कि अज्ञानान्धकारनाशक ज्ञानप्रकाश सुख वर्षाने वाले परमात्मा का न गिराने—साक्षात् कराने वाला आत्मा का भी उत्कर्ष कराने वाला है उसमें उपासक जन अपना मन निरन्तर लगाया करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—काण्वः कुसीदी (मेधावी से सम्बद्ध योगभूमि पर आरूढ़ उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सङ्गृभाय ।
३ १र २र
महा हस्ती दक्षिणेन ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३६)

३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ २
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिन्तुविदेष्णं तुवीमघम् ।
३ १र २र
तुविमात्रमवोभिः ॥२॥

(त्वा) हे इन्द्र—परमात्मन् ! तुझ (तुविकूर्मिम्) बहुत प्राणशक्तिमान्—बहुत बलवान् "तुवि बहुनाम" [निघं० ३।१] "प्राणो वै कूर्मः प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति" [श. ७।५।१।७] (तुविदेष्णम्) बहुत प्रेरणाकर्ता 'दिशधातोश्छान्दसं रूपम्' (तुवीमघम्) बहुत ऐश्वर्यवान्—बहुत प्रकार से धनदाता (तुविमात्रम्) बहुत प्रमाणवाले—महान् व्यापक अनन्त को (अवोभिः-विद्म हि) हमारे प्रति विविध रक्षणों कृपाभावों से हम नितान्त जानते हैं ।

परमात्मा की हमारे प्रति विविध रक्षाएं कृपाएं हैं जिनसे हम उसे महान् प्राणशक्तिमान् महान् प्रेरणाकर्ता महान् धनसाधनदाता और सर्वव्यापक अनन्त जानते हैं जानें मानें ॥ २ ॥

१२ २र ३ १र २र ३ १ २
न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासो दित्सन्तम् ।
 २उ ३ १ २
भीमं न गां वारयन्ते ॥३॥

(शूर) हे समर्थ परमात्मन् ! (त्वा दित्सन्तम्) तुझ यथा-योग्य कर्मफल देने की इच्छा करते हुए को (न हि देवाः) न ही देव (न मर्त्तासः) न मनुष्य (वारयन्ते) हटा पाते हैं (भीमं गां न) भयङ्कर वृषभ को जैसे उसके वलकार्य से कोई नहीं हटा सकता है।

जैसे भयङ्कर वृषभ को उसके वलकार्य से कोई नहीं हटा पाता है ऐसे ही परमात्मा को उसके बलकार्य करते हुए कर्मफल के देते हुए को कोई नहीं रोक सकता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काण्वस्त्रिशोकः (मेधावी से सम्बद्ध मन आत्मा परमात्मा ज्योतियों से सम्पन्न)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
३ १ २ ३ १ २
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पृ० पृ० १३३)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आदभन् ।
१ २ ३ १ २
माकीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥२॥

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वा) तुझे (मूराः) मूढ भोगमूढ "मूराः-मूढाः" [निरु० ६।८] (अविष्यवः) भोग की कामना करने वाले (मा-आदभन्) नहीं दबा सकते, और (उपहस्वानः-मा) न उपहास करने को नास्तिक जन तुझे दबा सकते हैं (ब्रह्मद्विषम्) तेरे प्रति द्वेष करने वाले ऐसे भोगी और नास्तिक को (माकीं वनः) न कभी तू सम्भजन करता है उसका पक्ष करता है अपनाता है।

भोगविलासी तथा नास्तिक मूढ जन परमात्मा के दण्ड से बच नहीं सकते ऐसे ब्रह्मद्वेषी ईश्वरीय नियम और उपकार के द्वेषी जन को परमात्मा कभी अपनाता नहीं है ॥ २ ॥

३२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे ।
१ २ ३ १र २र
सरो गौरो यथा पिब ॥३॥

(त्वा गोपरीणसम्) हे परमात्मन् तुझ स्तुतिवाणियों से प्राप्त होने वाले अध्यात्म अन्न को "अन्नं वै परीणसम्" [जै० ३।१७४] (महे राधसे) महान् मोक्षैश्वर्य की प्राप्ति के लिए (मन्दन्तु) उपासकजन स्तुत करें—अर्चित करें "मदतिः-अर्चति कर्मा" [निघ० ३।१४] (गौरः-यथा सरः पिब) गौर हरिण जैसे सर—उदक जल तृप्ति से पीता है ऐसे उपासक के उपासनारस का पान कर।

स्तुतियों से प्राप्त होने योग्य, मोक्ष भोग वाले तुझ परमात्मा की मोक्षैश्वर्य के लिए उपासक अर्चना करते हैं, तू उनके अर्चना रूप आर्द्ररस को पूर्णरूप से पान कर ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधो वा (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला या प्रिय है मेधा जिसको)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

३१ २ ३२उ ३ २ ३ १२ ३ १ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १ ३
अनाभयिन् ररिमा ते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०७)

१ २ ३ २ ३ २उ ३२ ३ २ ३ १ २
नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२॥

(नृभिः) मुमुक्षु जनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० ३।८९] (सुतः) निष्पादित (धौतः) प्राप्त (अव्याः-अश्नैः-वारैः) योगभूमि—योगस्थली के "इयं पृथिवी वा-अविः" [श. ६।१।२।३३] दोषवारणसाधनों—अभ्यासों से (परिपूतः) सब ओर से परमात्मा रक्षित होता है (अश्वः-नदीभिः-निक्तः) जैसे खुली जलधाराओं से घोडा कान्त बनाया जाता है ऐसे ।

मुमुक्षु जन परमात्मा को अपने अन्दर श्रद्धा भरे योगभूमिस्थ अभ्यासों द्वारा निर्मल साक्षात् करते हैं जैसे जलधाराओं से घोड़े को स्नान करा निर्मल कान्तरूप में देखते हैं ॥ २ ॥

२ ३ २३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३॥

(इन्द्र) हे परमात्मन्! (ते) तेरे लिए (तं गोभिः) उस उपासनारस को अपनी वाणियों से (यथा यवं श्रीणन्तः) जैसे यव आदि अन्नपान को गोदुग्धों से मिलाते हुए (स्वादु-अकर्म) स्वादुवाला तैयार करते हैं, ऐसे मिलाते हुए तैयार करते हैं, अतः (त्वा) तुझे (अस्मिन् सधमादे) इस मेरे आत्मा के साथ या मुझ आत्मा के साथ अपने हर्षस्थान हृदय में आमन्त्रित करते हैं।

जैसे मनुष्य अपने लिये अन्नभोजन को दुग्ध घृत आदि मिश्रित कर स्वाद वाला बनाते हैं ऐसे उपासनारस को श्रद्धा भरे वचनों से मीठा बना कर हृदयस्थान में परमात्मा को आमन्त्रित करें॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषि—विश्वामित्रः (सब का मित्र उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

३१र २र ३ १ २
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते।
२ ३ २ १ ३
पिबा त्वाऽ३स्य गिर्वणः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३५)

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३क २र
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नियच्छ तन्वम् ।
१ २
स त्वा ममत्तु सोम्य ॥२॥

(ते) हे इन्द्र परमात्मन् ! तेरा (यः) जो उपासक (सुते) उपासनारस निष्पन्न होने पर (स्वधाम्-अनु-असत्) अपनी आत्मसमर्पण क्रिया के अनुसरण हो रहा है (तन्वं नियच्छ) स्वकीय आत्मा—स्वरूप को "आत्मा वै तनूः" [श० ६।७।२।६] उसके लिए प्रदान कर—प्रदान करता है (सोम्य सः-त्वा ममत्तु) हे उपासनारस के योग्य परमात्मन् ! वह उपासक तुझे उपासनारस से निरन्तर हर्षित करता रहे।

परमात्मन् ! जो उपासक उपासनासमय अपने आत्मा को तेरे प्रति समर्पण करता है तू भी अपने स्वरूपदर्शन का प्रसाद उसे देता है, पुनः वह उपासक उपासनारस से तुझे तृप्त हर्षित करता रहता है ॥ २ ॥

२ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
१ ३ १ २ ३ १ २
प्र बाहू शूर राधसा ॥३॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! उपासक (ते कुक्ष्योः-अश्नोतु) तेरे दोनों पार्श्वों में वर्तमान अभ्युदय और निःश्रेयस को—संसारसुख और मोक्षानन्द को प्राप्त करे—करता है (ब्रह्मणा शिरः प्र) तेरे वेदज्ञान से अपने मस्तिष्क को प्रवृद्ध करता है (शूर) हे महाबलवन् परमात्मन् ! (राधसा बाहू प्र) संसिद्धि—संयमरूप आराधना से शरीरात्मबलों को प्राप्त करता है "बाहुर्वीर्यः" [ता० ६।१।८]

परमात्मा से उपासक मोक्षानन्द और संसारसुख तो प्राप्त करता ही है परन्तु साथ उसके ज्ञान से मस्तिष्क को विकसित करता और संयमपूर्वक आराधना से आत्मबल और जीवनबल को भी प्राप्त किया करता है॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—पूर्ववत् ।

१उ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभिप्रगायत ।
१ २ ३ १ २
सखाय स्तोमवाहसः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३४)

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२॥

(सोमे) परमात्मा के उपासनारससम्पादन के निमित्त उपासको ! (पुरुतमम्) बहुतेरे प्रसङ्गों में कांक्ष्य वाञ्छनीय—(पुरूणां वार्याणाम्-ईशानम्) बहुत—अनेक वरणीय शुभकामनाओं कमनीय वस्तुओं के स्वामी (इन्द्रम्) परमात्मा को (सचा) एक मन होकर गाओ—स्तुत करो।

उपासनारसनिष्पादनार्थ हे उपासको ! बहुत वाञ्छनीय अनेक वरणीय कामना और कमनीय वस्तुओं के स्वामी परमात्मा की एकमन होकर स्तुतिगीति गानी चाहिये॥ २॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ २
स घा नो योग आभुवत् स राये स पुरन्ध्या ।
२ ३ १ २ ३ १ २ २ २
गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥

(सः-घ) वह ही इन्द्र—परमात्मा (नः) हमारे (योगे) अध्यात्मानन्द के निमित्त (सः) वह (राये) लौकिक ऐश्वर्य के निमित्त (सः-पुरन्ध्या) वह पुर—शरीरधारणस्थिति के निमित्त 'सप्तम्यर्थे तृतीया व्यत्ययेन' (आभुवत्) स्वामीरूप में वर्तमान रहे (सः) वह (नः) हमारे लिए (वाजेभिः) अपने अमृत-भोगों के साथ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (आगमत्) आवे—प्राप्त हो ।

परमात्मा हमारे योगानन्द—अध्यात्मानन्द के लिए परमात्मा हमारे सांसारिक सुख के लिए तथा स्वामी रक्षा करता है और वह हमारे लिये अमृतभोग प्रदान करता रहे ।। ३ ।।

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
योगे योगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३४)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥२॥

(प्रत्नस्य-ओकसः) दिव् स्थान "असौ वै द्युलोकः प्रत्नम्" [मै० १।५।५] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] मोक्षस्थान के (अनु) ऊपर वर्तमान (तुविप्रतिम्) बहुतों के प्रतिपालक—बहुतेरे मुक्तात्माओं के स्वानन्द से पूरण करने वाले—(नरम्) नेता—स्वामी परमात्मा को (हुवे) मैं आमन्त्रित करता हूं (यं ते पिता हुवे) जिस "ते-त्वाम्' विभक्तिव्यत्ययः" तुझ परमात्मा को मेरा पिता आमन्त्रित करता रहा।

मोक्षधाम के ऊपर शासक परमात्मा जो कि बहुतेरे मुक्तात्माओं का स्वानन्द से पूरण करने वाला है उस नेता को उपासक अपने हृदय में आमन्त्रित करें और परम्परा से अपने पूर्वज ब्रह्मा आदि भी आमन्त्रित करते रहे हैं। परम्परा का आदर्श आचरण अथवा हेतु ग्राह्य है "स पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत" [ऋ० १।१।२] ॥ २ ॥

१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजेभिरुप नो हवम् ॥३॥

(नः-हवं यदि श्रवत्) हमारे नम्र स्तुतिवचन या आमन्त्रण को वह इन्द्र—परमात्मा यदि सुने—स्वीकार करे तो (घ) निश्चय—अवश्य (सहस्रिणीभिः-ऊतिभिः) आयुष्मती—दीर्घ जीवन देने वाली रक्षा पद्धतियों के साथ "आयुर्वै सहस्रम्" [तै० १।८।१५] (आगमत्) आ जावे तथा (वाजेभिः-उप) अमृत अन्न भोगों के द्वारा उपकृत करे।

उपासक नम्र स्तुतिवचन या आमन्त्रण परमात्मा के प्रति करे तो परमात्मा उसे अवश्य सुन—स्वीकार कर दीर्घ जीवन देने वाली रक्षाविधियों के साथ उसके हृदय में प्राप्त होता है साक्षात् होता है तथा उस उपासक को अमृतभोगों से भी उपकृत कर देता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—नारदः (नरद—सद्भाव का रदन न करने वाले का शिष्य या नारा—नर सम्बन्धी जीवन विज्ञानदाता)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३क ३र
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाꣳहि षः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पूर्वार्चिक पृष्ठ संख्या ३१७)

१ २ ३ १ १ ३ २ ३ १ २ ३ २
स प्रथमे व्योमनि देवानाꣳसदने वृधः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सु जित् ॥२॥

(सः-प्रथमे) वह परमात्मा प्रमुख (देवानां सदने व्योमनि) मुक्तों के स्थान विशेष रक्षणस्थान मोक्षरूप में (वृधः) जो उपासकों का वर्धक (सुपारः) संसारसागर से शोभन पारकर्ता सुश्रवस्तमः) शोभन यशोजीवन का अत्यन्त निमित्त (सम्-अप्सुजित्) हृदयावकाश में कामादि का सम्यक् नाशक उपासनीय है "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०।५।४।१५] ।

मुक्तों के सदन विशेष रक्षणस्थान प्रमुख मोक्षधाम में आनन्दवर्धक संसार से पारकर्ता अच्छे यश का निमित्त हृदय के कामादि का नाशक परमात्मा उपासनीय है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
१ २ ३ १र २र ३ १ ३ २
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३॥

(तं शुष्मिणम्-इन्द्रम्-उ) उस सर्व बल वाले परमात्मा को अवश्य (वाजसातये भराय हुवे) अमृतभोग—मोक्षानन्द के लिए "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] तथा सांसारिक भरण पोषण—सांसारिक शुभ सुखभोग के लिए आमन्त्रित करता हूं, अतः हे परमात्मन् ! तू (नः) हमारे (सुम्ने) सर्व-सुख के निमित्त "सुम्नं सुखनाम" [निघ० ३।६] और (वृधे) वृद्धि के लिये—जीवन विकास के लिए (अन्तमः सखा भव) अन्तिकतम—अत्यन्त समीपी साथी हृदयस्थ हो जा ।

समस्त बल रखने वाले परमात्मा को हृदय में आमन्त्रित करना चाहिये वह ही मोक्ष का अमृतभोग और सांसारिक भरण पोषणरूप सुख एवं सर्व सुख देता है तथा हमारे जीवनविकास में अत्यन्त समीपी साथी हृदयवासी है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेववाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—बृहती।

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे।
३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥

(सः-विश्वभोजसा-अरुषा योजते) वह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा विश्व का पालन करने वाले तेज से युक्त है (सः-स्वाहुतः-दुद्रुवत्) वह सम्यक् आमन्त्रित हुआ उपासक के अन्दर शोभनरूप में प्राप्त होता है (सुब्रह्मा यज्ञः) शोभन मन्त्र यथार्थ पवित्र स्तवन वाला यजनीय है (सुशमी) शोभन शान्तिप्रद है (वसूनां जनानां देवं राधः) उसकी शरण में वसने वाले जनों को वह दिव्य धन देता है।

ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा विश्व का पालन करने वाले ज्ञान तेज से युक्त है उसका तेज दाहक नहीं, किन्तु, सर्वपालक है वह उपासक द्वारा हृदय से आमन्त्रित हुआ शोभनरूप में प्राप्त होता है तथा सुन्दर पवित्र स्तुतिपात्र यजनीय सङ्गमनीय है उसकी शरण में बसने वाले, उपासकों का दिव्य धन है या दिव्य धनदाता है ॥ २ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला)

देवता—उषाः (परमात्मा की आभा)

छन्दः—बृहती पूर्ववत् ।

प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३ऽच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महीवृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २४७)

उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥

(सूर्यः) सूर्य (उस्त्रियाः-उत्सृजते) रश्मियों को फैलाता है (सचा) साथ ही (उद्यत्-नक्षत्रम्-अर्चिवत्) उदय होने वाले नक्षत्र को भी अपनी ज्योति से ज्योतिवाला करता है यह ठीक है, परन्तु (उषः) हे परमात्मा की आभा (तव-इत्-व्युषि) तेरे संसार में भासमान होने पर (सूर्यस्य च भक्तेन संगमेमहि) सूर्य के उदयभाग के साथ ही सूर्य के उदय होने पर तुझे संगत हो ।

यह ठीक है यह भौतिक सूर्य प्रकाशरश्मियों को फैलाता है प्रत्येक नक्षत्र को ज्योतिष्मान् बनाता है परन्तु परमात्मा की आभा के संसार में आने पर सूर्य प्रकाश को प्राप्त होता है उदय होता है उसके उदय होने को लक्ष्य कर परमात्मा की आभा से हम समागम कर पाते हैं ॥ २ ॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला)

देवता—अश्विनौ (प्रकाशस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मा †)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २४८)

३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाग्रथं समनसा नियच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥

(नरा) हे अश्विनौ नरौ—हे व्यापनशील प्रकाशस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मन् ! (युवम्) तुम (सूनृतावते) स्तुतिवाणी वाले उपासक के लिए (चित्रं भोजनम्) चायनीय—प्राह्य अद्भुत सुखभोग को (ददथुः) देते हो (चोदेथाम्) और उसे अपनी ओर प्रेरित करते हो (समनसा) समान मन से—समान भाव से (रथम्-अर्वाक्-नियच्छतम्) रमणीय सुखभोग को इधर इस लोक में नियत करते हो, और (सोम्यं मधु पिबतम्) शान्त मधुर उपासनारस को पान करो—स्वीकार करो अथवा स्व मधुर दर्शनरस उपासक को पिलावो ।

स्तुति करने वाले उपासक के लिये ज्योतिस्वरूप आनन्दरसरूप परमात्मा अद्भुत-श्रेष्ठ भोग कराता है अपनी ओर प्रेरित करता है, समानभाव से रमणीय सुख को इस लोक में देता है अपने मधुर दर्शनामृत को पिलाता है ॥ २ ॥

† "अश्विनौ ज्योतिषाऽन्यो रसेनान्यः" [निरु० १२।१]

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षक परमात्मा की ओर शरण—गमन करने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ ३१ ३१ २ ३ १ २
अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
१ २ ३ १र २र
पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥

(अस्य) इस ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा की (प्रत्नां द्युतम्) शाश्वती अमर ज्योति को एवं (सहस्रसाम्-ऋषिं पयः) सहस्र लाभ देने वाले निर्मल निर्भ्रान्त दूधरूप मन्त्र—वेद को (अह्रयः-दुदुह्रे) अह्रतप्रज्ञा वाले—सर्वगुणसम्पन्न आदि विद्वान् दुहते हैं साक्षात् करते हैं।

ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा की शाश्वतिक अमृत ज्योति को और बहुत लाभ देने वाले निर्भ्रान्त दूधरूप मन्त्रज्ञान को सर्वगुण सम्पन्न आदिविद्वान् दुहा करते हैं ॥ १ ॥

देवता—पवमानः सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

३ १र २र ३ २ ३ १र २र
अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
१ २ ३ २र ३ १र २र
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥

(अयम्) यह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (सूर्यः-इव-उपदृक्) सूर्य के समान स्पष्ट प्रकाशक है—साक्षात् प्रकाशमान है उपासकों के सम्मुख या हृदय में (अयम्) यह परमात्मा (सरांसि धावति) उपासकों के प्रार्थनावचनों को "सरः-वाङ्नाम" [निघ० १।११] प्राप्त होता है "धावति गतिकर्मा" [निघ० २।१४] (सप्त प्रवतः-आ दिवम्) परिचरणशील—उपासनाशील "सपति परिचरणकर्मा" [निघ० ३।५] नम्र स्तुतिकर्ताओं को अमृतधाम—मोक्ष तक पहुंचाता है।

प्रकाशस्वरूप परमात्मा उपासकों के प्रति सूर्य के समान साक्षात् प्रकाशमान होता है उनके प्रार्थनावचनों को स्वीकार करता है तथा हृदय में नम्र स्तुति करने वाले उन उपासकों को मोक्षधाम तक पहुंचाता है अपनाता है ॥ २ ॥

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

(अयं सोमः-देवः) यह शान्त परमात्मा (विश्वानि भुवना पुनानः) सारे लोक लोकान्तरों को शोधने के हेतु तथा गति देने के हेतु (उपरि तिष्ठति) उनके ऊपर अधिष्ठातारूप में विराजमान है (देवः-न सूर्यः) सूर्य दिव्यलोक की भांति।

सूर्य दिव्य पदार्थ के समान शान्त परमात्मा सब लोक लोकान्तरों को शोधने और गति देने के हेतु उनके ऊपर अधिष्ठाता के रूप में विराजमान है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
१ २ ३ १ २
हरिः पवित्रे अर्षति ॥१॥

(एषः-हरिः-देवः) यह दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता सोम—शान्तस्वरूप परमात्मदेव "भद्रः सोमः पवमानो वृषा हरिः" [काठक० ६।३] (प्रत्नेन जन्मना) पुरातन—शाश्वत प्रसिद्धि से (देवेभ्यः) जीवन्मुक्तों के 'विभक्ति व्यापयेन' (पवित्रे सुतः) हृदयाकाश में साक्षात् होता है ।

दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा शाश्वत प्रसिद्धि से जीवन्मुक्तों के हृदयाकाश में साक्षात् होता है ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
३ १२ २२
कविर्विप्रेण वावृधे ॥२॥

(एषः-देवः) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (प्रत्नेन मन्मना) शाश्वत माननीय मन्त्र के द्वारा (देवेभ्यः-परि) आदि विद्वानों से—उनके उपदेश से परिप्राप्त होता है—अन्तःकरण में समझा जाता है (कविः) वह सब में कान्त—पहुंचा हुआ परमात्मा (विप्रेण वावृधे) मेधावी विद्वान् ब्रह्मा जैसे के द्वारा बढ़ाया जाता है—प्रचारित किया जाता है ।

शान्तस्वरूप परमात्मा शाश्वत मन्त्र—वेद के द्वारा आदि-विद्वानों से उनके उपदेश देने से जाना जाता है, वह सर्वत्र प्राप्त

परमात्मा मेधावी उपासक के द्वारा अन्तःकरण में बढ़ता जाता है—साक्षात् होता जाता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १र २र ३ ३ ३ १ २
दुहानः प्रत्नमित् पयः पवित्रे परिषिच्यसे ।
१ २ ३ १ २
क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥३॥

(दुहानः) 'दुह्यमानः' कर्मणि कर्तृप्रत्ययः, वेदज्ञान से दुह्यमान—दुहा जाता हुआ हे सोम—शान्त परमात्मन् ! (प्रत्नम्-इत् पयः) शाश्वत दूधरूप ही (पवित्रे परिषिच्यसे) पवित्र—हृदय में परिषिक्त किया जाता है—बिठाया जाता है (क्रन्दन् देवान्-अजीजनः) तू उपदेश देता हुआ मेरे अन्दर दिव्यगुणों को उत्पन्न करता है ।

शान्तस्वरूप परमात्मा वेदज्ञान से प्राप्त किया हुआ शाश्वत दूधरूप हृदय में निश्चित बैठ जाता है, वहाँ उपदेश करता हुआ दिव्यगुणों को प्रकट करता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (कामबन्धन से रहित या परमात्मदेव को जीवन में लाने धारण करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे ।
१ २ ३ २ ३ २
पवमान विदा रयिम् ॥१॥

(पवमान) हे आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन् ! तू (अपतस्थुषः) मेरे अन्दर अन्यथा स्थित दोषों के प्रति (उपशिक्ष) आन्तरिकभाव से समझा (शत्रवे भियसम्-आधेहि) मेरे अन्तःस्थल को नष्ट करने वाले काम आदि शत्रु के लिए मेरे अन्दर भय बिठा (रयिं विदा) अपना स्वरूपैश्वर्य अनुभव करा ।

आनन्दधाग में आने वाला परमात्मा उपासक के अन्दर अन्यथा स्थित दोषों के प्रति घृणा कराता है काम आदि शत्रु सदृश भावों के प्रति भय दिलाता है और अपने स्वरूपैश्वर्य का अनुभव कराता है ॥ १ ॥

१ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४००)

१ २ ३ १ २ ३ १ २
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
३ २ ३ १ २र
अभि देवाँ इयक्षते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या उत्तरार्चिक पृष्ठ १)

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (तीनों स्तुतिप्रार्थना उपासना से सम्पन्न परमात्मप्राप्तिकुशल)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१२ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
१ २ ३ १ १
वनानि महिषा इव ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९४)

३ १र २र ३ १ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
२ ३ १ २
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

(शुक्राः-बभ्रवः) तेजस्वी—सोम शान्तस्वरूप परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थम्' "सोमो वै बभ्रुः" [श० ७।२।४।२६] (ऋतस्य धारया) ऋत—अमृत की धारा से—धारा रूप में "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०] (वाजं गोमन्तम्) स्तुति वाले—स्तुति से प्राप्त अमृतभोग को (द्रोणानि) हृदयपात्र में (अभि-अक्षरन्) झिराता है ।

तेजस्वी शान्त परमात्मा स्तुतिसम्पन्न अमृतभोग—मोक्षानन्द को उपासक के हृदयपात्र में अमृतधारारूप में झिराता है ॥ २ ॥

२ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
१ २ १ २
सोमो अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥

(सुताः सोमाः) उपासित शान्त परमात्मा (इन्द्राय) वाणी के लिए "अथ य इन्द्रः सा वाक्" [जै० १।११] (वायवे) मन के

लिए "मनो वायुः" [काठ० १।१] (वरुणाय) प्राण के लिए "यः प्राणः स वरुणः" [गो० २।४।११] (मरुद्भ्यः) ओज—आत्मतेज के लिए "ओजो वै वीर्यं मरुतः" [जै० ३।३०९] (विष्णवे) वीर्य के लिए "वीर्यं विष्णुः" (तै० १।७।२।२३] (अर्षन्तु) प्राप्त हों।

उपासित शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक के वाक्—वाणी, मन, प्राण, ओज—आत्मतेज, वीर्य—शारीरिक बल को प्राप्त हो इन्हें यथोचित उन्नत करे॥ ३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—बृहती।

६६६ / ५।१४

१ २ ३१ २ ३ २ ३१ २ ३ १२ ३ १२
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा अंशोः।
२र ३ १र २र३२ ३ १ २ ३ १ २
पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम्॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४१८)

९.१०६.१२

६६८

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
तमीꣳहिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः॥२॥

अर्जुन (ग्रा.नि.)

९.१०६.१२

(हर्यतः) कमनीय "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघ० २।६] (अर्जुनः) जीवन में अर्जित करने योग्य या निर्मल (सूनुः-न प्रियः) पुत्र के समान स्नेहपात्र (मर्ज्यः) तथा अलङ्करणीय निज अर्चना स्तुति से प्रशंसनीय "मृजू शौचालङ्करणयोः" सोम—

शान्तस्वरूप परमात्मा (अत्के-आ-अव्यत) "अत सातत्यगमने" [भ्वादि०] निरन्तर पुनः पुनः जिसमें प्राप्त होता है उस हृदय-प्रदेश में आ जाता है प्राप्त होता है (तम्-इम्) उसे अवश्य (अपसः) कर्म वाले अभ्यासी योगाभ्यासी जन 'अत्र मत्वर्थीयोऽकारश्छान्दसः' (हिन्वन्ति) प्राप्त करते हैं अनुभव करते हैं "हिन्वन्ति प्राप्नुवन्ति" [निरु० १।२०] (यथा नदीषु रथं गभस्त्योः-आ) जैसे नदियों—जलधाराओं में जलयानों, नौका को, दोनों अरित्ररूप बाहुओं—भुजाओं में बलवान् मल्लाह 'आप्नुवन्ति' प्राप्त करते—सम्भाले रखते हैं "गभस्ती बाहुनाम" [निघ०२।४]।

कमनीय स्वात्मा में अर्जित करने योग्य,या निर्मल पुत्र के समान स्नेहपात्र,तथा अर्चनाओं से भूषित करने प्रशंसित करने योग्य, शान्तस्वरूप परमात्मा हृदय में आता है, प्राप्त होता है उसको अभ्यासी उपासक जन अनुभव करते हैं,प्राप्त करते हैं,जैसे जलधाराओं में जलयान—नौका को बलवान् मल्लाह चप्पूसहित दोनों भुजाओं में सम्भाले रहते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१२ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
३ २ ३ १ २
सुता विदथे अक्रमुः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९२)

६६० आदीँहंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥२॥ ऋ० ९.३२.३

(आत्-ईम्) तो फिर (यथा हंसः-गणम्-अवीवशत्) जैसे हंस अन्य पक्षी गण को अपने श्वेत सुन्दरता आदि गुणों से वश करता है अपेक्षा से प्रशंसापत्र बनता है (विश्वस्य मतिम्) ऐसे यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा अपने न्याय दया आनन्द आदि गुणों में संसारभर के मतिमान् जन को 'अत्र मतुप्प्रत्ययस्य लुक् छान्दसः' वश करता है स्वप्रभाव में ले आता है तथा (अत्यः-न गोभिः-अज्यते) जैसे अतनशील घोड़ा अन्नाद्यों—दाने चारे आदि से व्यक्त—पुष्ट प्रसन्न किया जाता है ऐसे सोम—परमात्मा भी स्तुतियों से हृदय में साक्षात् किया जाता है 'उपमेयलुप्तोपमालङ्कारः' ।

हँस जैसे पक्षीगण को अपने गुणों से अभिभूत करता है मोहित करता है ऐसे परमात्मा संसार के मतिमान् मात्र को प्रभावित करता है तथा गतिशील घोड़ा जैसे दाने चारे जल से प्रसन्न पुष्ट किया जाता है ऐसे परमात्मा स्तुतियों से हृदय में साक्षात् किया जाता है ॥ २ ॥

६६१ आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥३॥ ऋ० ९.३२.२

(आत्-ईम्) पुनश्च (त्रितस्य) मेधा से तीर्णतम उपासक की "त्रिणस्तीर्णतमो मेधया" [निरु० ४।७] (योषणः) योषन्—मिलने वाली—समागम कराने वाली स्तुतियां "यु मिश्रणे...... ।"

[अदादि०] "योषा हि वाक्" [श० १।४।४।४] (हरिम्) दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अद्रिभिः) आदरणीय श्रद्धा नम्रता आस्तिक भावनाओं से (हिन्वन्ति) प्राप्त करती हैं—प्राप्त कराती हैं 'अन्तर्गतणिजर्थः' (इन्द्राय-इन्दुं पीतये) आत्मा के लिए आनन्दपूर्ण परमात्मा का पान कराने के लिए।

मेधा से उत्कृष्ट बने उपासक की स्तुतियाँ दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा को श्रद्धा नम्रता आस्तिकभावनाओं के साथ आत्मा के लिए आनन्दरसपूर्ण परमात्मा का पान ज्ञान कराती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—चाक्षुषोऽग्निः (दृष्टिविज्ञान में कुशल अग्रणी उपासक) इति द्वयोः। प्रजापतिः (इन्द्रियों का स्वामी) इति तृतीयायाः।

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—पूर्ववत्।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अया पवस्व देवयूरेभन् पवित्रे पर्येषि विश्वतः।
२ ३ १ २
मधोर्धारा असृक्षत ॥१॥

हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (देवयुः) मुमुक्षुओं को चाहने वाला उनकी हितकामना करने वाला (अया) इस उपासना से (पवस्व) प्राप्त हो (पवित्रे रेभन् विश्वतः पर्येषि) उपासक के हृदय में प्रवचन शब्द करता हुआ उसे सब प्रकार से प्राप्त हो

रहा है (मधोः-धाराः-असृत्तत) तेरे द्वारा मधुरस की धारायें छोड़ी जाती हैं।

शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक के हृदय में प्रवचन करने वाला मुमुक्षुजनों को चाहने वाला उसके सब ओर रहता है और मधुर धाराओं के समान अपना अमृतदर्शन कराता है ॥ १ ॥

१ २   १ ३उ   ३ २ ३   १ २ ३   १ २
पवते हर्यतो हरि रति ह्वरांसि रंह्या ।
३क २र   ३ १ २   ३ २ ३   १ २
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥२॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७३)

१ २   ३ १र   २र ३ २ ३   १ २ ३   १र २र
प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३   १ २   ३ १ २   ३ २   ३१र   २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५३)

इति द्वितीयोऽध्यायः

❀

अथ तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला उपासक†)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
३ १र २र ३ १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (अग्रियः) अग्र—हमारा अग्रणायक हुआ (चित्राभिः-ऊतिभिः) चायनीय—मंहनीय—प्रशंसनीय बलिष्ठ रक्षाओं—रक्षणक्रियाओं के द्वारा (वाचः) हमारी वाणियों को, तथा (विश्वानि काव्या) हमारे समस्त ज्ञानकृत्यों आचरणों को (अभि-पवस्व) स्वाभिमुख अपनी ओर प्रेरित कर ।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू अग्रणायक हुआ अपनी प्रशंसनीय—बलिष्ठ रक्षाओं—रक्षणक्रियाओं के द्वारा हमारी वाणियों को और हमारे सारे कर्मव्यवहारों आचरणों को अपनी ओर

† "जमदग्नयः प्रज्वलिताग्नयः" [निरु० ७।२४]

प्रेरित कर हमारी वाणियां तेरे गुणगान में लगें हमारे सारे आच-रण तेरी प्राप्ति के निमित्त हों ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्।
१ २
पवस्व विश्वचर्षणे ॥२॥

(विश्वचर्षणे) हे सर्वद्रष्टा शान्त परमात्मन् ! (त्वम्) तू (अग्रियः) अग्रणायक हुआ अग्रे गति देता हुआ (समुद्रियाः-अपः) मन के साथ सम्बन्ध रखने वाली—मन में होने वाली "मनो वै समुद्रः" [श० ७।५।२।५२] काम—कामनाओं को "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०।५।४।१५] (वाचः-ईरयन्) स्तुतियों की ओर प्रेरित करने के हेतु (पवस्व) पवित्र कर।

हे सर्वद्रष्टा अन्तर्यामी शान्त परमात्मन् ! तू अग्रणायक हो हमारी मानसिक—मन में वर्तमान कामनाओं को अपनी स्तुतियों की ओर प्रेरित करने के हेतु पवित्र कर हमारी कामनायें संसार की ओर न जावें संसार में न फंसाएं अपितु तेरी स्तुतितों में लगें ॥ १ ॥

२ ३ १२ २२ ३ १ २
तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।
१ २ ३ १ २
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥३॥

(कवे सोम) हे क्रान्तदर्शक—समस्त बाहिर भीतर के द्रष्टा शान्त परमात्मन् (इमा भुवना) बाहिरी लोक लोकान्तर और भीतरी इन्द्रियसंस्थान (तुभ्यम्) 'तव-विभक्तिव्यत्ययः' तेरी (महिम्ने) महिमा को दर्शाने के लिए (तस्थिरे) वर्तमान हैं और नियत हैं (तुभ्यं धेनवः धावन्ति) तेरी महिमा दर्शाने और

गाने के लिये बाहिरी वाक् विद्युतें विद्युच्छक्तियां और भीतरी वाणियाँ प्रगति कर रही प्रवृत्त हो रही हैं।

हे व्यष्टि समष्टि के द्रष्टा शान्त परमात्मन् ! समस्त लोक लोकान्तर और इन्द्रियसंस्थान तेरी महिमा दर्शाने को वर्तमान हैं स्थिर है दर्शा रही है और विद्युत्-शक्तियां और वाणियां तेरी महिमा को गा रही हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—अमहीयुः (मही—पृथिवी का नहीं मोक्ष का इच्छुक उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥१॥

(इन्दो) हे आनन्दरस भरे आनन्दधारा वाले परमात्मन् ! तू (सुतः) हृदय में साक्षात् किया (वृषा) कामनावर्षक हुआ (नः) हमें (जने) जनसमुदाय में (यशसः) यश वाले 'अकारोऽत्र मत्वर्थीयः' (कृधि) कर (विश्वाः-द्विषः-अपजहि) सारी द्वेषभावनाओं को दूर कर दे।

हे आनन्दरसभरे परमात्मन् ! तू हृदय में साक्षात् हुआ कामपूरक हो जनसमुदाय—जनसमाज में यशस्वी कर दे और काम क्रोध आदि शत्रुभावनाओं को दूर कर दे ॥ १ ॥

६६९ यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः।
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥२॥ ऋ० ९। ६१। २९

(यस्य ते) जिस तुझ शान्तस्वरूप परमात्मा के (सख्ये) सखापन में (वयम्) हम (पृतन्यतः) संघर्ष करते हुए—प्रहार करते हुए काम आदि दोषों को (सासह्याम) निरन्तर सहन करें—दबा सकते हैं (इन्दो) हे रसीले परमात्मन् ! (तव-उत्तमे द्युम्ने) तेरे उत्तम द्योतमान यशोबल में हम स्थिर रहें।

परमात्मा के मित्रभाव में काम आदि प्रहारक दोषों को हम दबा सकते हैं उसके उत्तम यशोबल में हम स्थिर रहें ॥ २ ॥

६७० या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे।
रक्षा समस्य नो निदः ॥३॥ ऋ० ९। ६१। ३०

(धूर्वणे) हे धूर्वणि ! काम आदि शत्रुओं के नाशक (ते) तेरे (या) जो (भीमानि) भयङ्कर (तिग्मानि) तीक्ष्ण (आयुधा) उपदेश शस्त्र (सन्ति) हैं (समस्य निदः) समस्त निन्दक के दबाव से (नः-रक्षा) हमारी रक्षा कर।

हे शान्तस्वरूप काम आदि के विनाशक परमात्मन् ! तेरे जो भयङ्कर तीक्ष्ण उपदेशास्त्र हैं उनसे समस्त काम आदि के दबाव से हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मारीचः कश्यपः (वासनाओं को मार देने वाली

ज्योति से सम्पन्न नियन्त्रित मन से पान करने वाला †)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
२ ३ २ ३
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४११)

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
१र १र३ १र २र
स त्वं वृषन् वृषेदसि ॥२॥

(वृषन्) हे सुखवर्षक शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (ते वृष्णः) तुझ वृषा—सुखवर्षक का (शवः-वृष्ण्यम्) बल "शवः:बलम्" [निघ० २।९] सुखवर्षण निमित्त है (वनं वृषा) सम्भजन बलरूप है (सुतः-वृषा) उपासित हुआ भी सुखवर्षक है (सः-त्वम्) वह तू (वृषा-इत्-असि) सुखवर्षक ही है ।

हे सुखवर्षक परमात्मन् ! तेरा बल सुखवर्षक है तेरा भजन गान भी सुखवर्षक है तू साक्षात् हुआ भी सुखवर्षक है तू सच-मुच सुखवर्षक ही है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
अश्वो न चक्रदो वृषा सङ्गा इन्दो समर्वतः ।
१ २ ३१र २र
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

† "कश्येन पिबतीति कश्यपः, कशाहं शासनीयः 'कश शासने' [अदादि.]

(इन्दो) हे रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (अश्वः-न सं चक्रदः) घोड़े की भांति संक्रन्दन करता है सर्वत्र व्यापता है व्याप रहा है (वृषा) सुखवर्षक हुआ (गाः सं०) हमारे इन्द्रियों को भी व्याप रहा है इन्द्रियों द्वारा तेरा प्रत्यक्ष हो रहा है (अर्वतः सं०) हमारे मन आदि गतिशील को भी व्याप रहा है मन आदि द्वारा तेरा भानचिन्तन हो रहा है (नः) हमारे अभीष्ट (राये) मोक्षैश्वर्यप्राप्ति के निमित्त (दुरः-विवृधि) द्वारों को खोल दे—बाधक अज्ञान पाप आदि को हटा दे।

हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! जैसे घोड़ा मार्ग में व्यापता है ऐसे तू विश्व में व्याप रहा है हमारी इन्द्रियों में व्याप रहा है उनसे प्रत्यक्ष हो रहा हमारे मन आदि में भी व्याप रहा है— चिन्तन ध्यान में आ रहा है हमारे मोक्षैश्वर्य के निमित्त अज्ञान पाप को परे करदे ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—पूर्ववत्।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।
१ २ ३ १ २
पवमान स्वर्दृशम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९५)

२ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः।
१ २ ३ १ २
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥२॥

(यत्-आयुभिः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! जब तू उपासक जनों के द्वारा "आयवः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३] (मर्मृज्यमानः) पुनः पुनः साक्षात् करने के हेतु (अद्भिः) श्रद्धाभावों से "आपो वै श्रद्धा" [मै० ४।१।४] (परिषिच्यसे) परिषिक्त किया जाता है द्रवित किया जाता है अपनाया जाता है तो तू (द्रोणे) हृदय में (सधस्थम्-अश्नुषे) समानस्थान को प्राप्त करता है।

उपासकों द्वारा जब परमात्मा पुनः पुनः साक्षात् करने के हेतु श्रद्धाभावों से द्रवित किया जाता है—अपनाया जाता है तो हृदय में समानस्थानत्त्व को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
आपवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
३ १ २ ३ १ २
इहो ष्विन्दवा गहि ॥२॥ ऋ० ९-६५-५

(स्वायुध इन्दो) हे शोभन आयुध वाले—काम आदि दोषों को सरल भाव से मिटाने वाले गुणरूप शस्त्रों वाले शान्त परमात्मन् ! (मन्दमानः) स्तुत किया जाता हुआ "मन्दते अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४] (सुवीर्यम्-आपवस्व) शोभन—श्रेष्ठ बल को प्रेरित कर (इह-उ) यहाँ हृदय में अवश्य (सु-आगहि) भली प्रकार आ—प्राप्त हो।

काम आदि को नष्ट करने के लिए शान्तादि गुण प्रभाव वाला परमात्मा अर्चित उपासित हुआ हृदय में साक्षात् आत्मबल को प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्ष का इच्छुक उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पूर्ववत् ।

565
772

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
626 पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
३ १२ २२
सखित्वमावृणीमहे ॥१॥ ऋ. ९. ६१. ४

(पवित्रम्-अभ्युन्दतः) पवित्रकारक आनन्दरस को त्वरित करते हुए—बहाते हुए (ते पवमानस्य) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होते हुए परमात्मा के (सखित्वम्-आवृणीमहे) सखापन मित्रभाव को हम समन्तरूप से वरते हैं—अङ्गीकार करते हैं।

आत्मा को पवित्र करने वाले आनन्दरस को त्वरित करते हुए आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा की मित्रता को अवश्य अपनाना चाहिये ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
628 ये ते पवित्रमूर्मयोऽभि क्षरन्ति धारया ।
१ २
तेभिर्नः सोम मृळय ॥२॥ ऋ. ९. ६१. ५

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् (ये ते) जो तेरी (ऊर्मयः) आनन्दतरङ्गें (धारया) धाराप्रवाह से निरन्तर (पवित्रम्-अभिक्षरन्ति) पवित्ररूप में अभिक्षरित होती हैं (तेभिः) उन से (नः) हमको (मृळय) सुखी कर ।

शान्तस्वरूप परमात्मा की आनन्दतरङ्गें धाराप्रवाह से निरन्तर पवित्र बह रही हैं उनके द्वारा हम उपासकों को सुखी करता है ॥ २ ॥

६२८ स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥२॥ ऋ०-९.६१.६

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (सः) वह तू (पुनानः) शान्तरूप प्राप्त होता हुआ (नः) हमारे लिए (रयिम्) मोक्षैश्वर्यरूप धन को और (वीरवतीम्-इषम्) बलवती इस लोक-स्थिति को "अयं वै लोक इषमिति" [ऐ० ६।७] (आ भर) आभरित करदे (विश्वतः-ईशानः) तू विश्व का स्वामी है ।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू विश्व का स्वामी है अपनी आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ हमारे लिए मोक्षैश्वर्य को और इस लोक गुणवती स्थिति को आभरित कर दे ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन करने वाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

६३० अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥ ऋ०-१.१२.१

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ५०३)

६८१ ३ १२३ १२ ३ १२ ३ २ २
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
३ १२ ३ २
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२॥ ऋ० १.१२.२/ऋ० ९/२०.१०१.२

(हवीमभिः) आह्वानसाधन मन्त्रों से (पुरुप्रियम्) बहुतों के प्रिय या बहुत प्रिय (हव्यवाहम्) हाव भाव स्तुतिरूप भेंट को प्राप्त करने वाले—स्वीकार करने वाले (विश्पतिम्) ज्येष्ठ "ज्येष्ठो विश्पतिः" [तै० सं० २।३।३३] (अग्निम्-अग्निम्) ज्ञान-प्रकाशस्वरूप परमात्मा हां ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (सदा) नित्य, अत एव 'अग्निम्-अग्निम्' पाठः "नित्यवीप्सयोः" [अष्टा० ८।१।४] (हवन्ते) उपासकजन आमन्त्रित करते हैं ।

आह्वानसाधन मन्त्रों मननीय वचनों से बहुत प्रिय स्तुति भेंट को स्वीकार करने वाले ज्येष्ठ—सर्वश्रेष्ठ अग्रणायक ज्ञान-प्रकाशस्वरूप परमात्मा को नित्य उपासक जन आहूत करते हैं—आमन्त्रित करते हैं ॥ २ ॥

६८३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवाँ इहावह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
असि होता न ईड्यः ॥३॥ ऋ० १.१२.३/ऋ० २०.१०१.३

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (वृक्तबर्हिषे) छिन्न प्रजासम्बन्ध या त्यक्तप्रजासम्बन्ध—पूर्ण ब्रह्मचारी या संन्यासी उपासक के लिये "बर्हिः प्रजा" [जै० १।८६] (जज्ञानः) साक्षात् होता हुआ (इह) इस जीवन में (देवान्-आवह) दिव्य गुणों को ले आ—ले आता है (नः) हमारा (ईड्यः-होता-असि) स्तुत्य—उपासनीय ग्रहण करने वाला—स्वीकार करने वाला है ।

गार्हस्थ्य सम्बन्ध त्यागे हुए पूर्ण ब्रह्मचारी या संन्यासी उपासक के लिए इसी जीवन में परमात्मा दिव्य गुणों दिव्य

सुखों को प्राप्त कराता है कारण कि वह उपासक का स्तुतियोग्य अपनाने वाला उपास्यदेव है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला)

देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरणा देने वाला और वरने अपनाने वाला परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

६८२

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
२ ३ १ ३ १ २
या जाता पूतदक्षसा ॥१॥ ऋ० १.२३.४ (अज्ञात)

(वयम्) हम (सोमपीतये) मोक्षानन्दरसपान के लिए (मित्रं वरुणम्) संसार में शुभकर्माचरणार्थ प्रेरक शुभकर्मफल-भोगार्थ अपनी ओर वरने वाले परमात्मा को (हवामहे) स्मरण करते हैं—उपासित करते हैं (या पूतदक्षसा जाता) जो हमारे लिये दो धर्म वाले मित्ररूप में और वरुण रूप में पवित्र बल वाले प्रसिद्ध स्वतः सिद्ध हैं ।

हम मोक्षानन्दरसपान के लिए उस परमात्मा का स्मरण करें उसकी उपासना करें जो दो धर्मों वाला एक शुभ कर्म करणार्थ संसार में हमें प्रेरित करता है पुनः शुभ कर्मों का मोक्ष-फलभोगार्थ अपनी ओर वरण करने वाला है /उक्त दोनों धर्म उसके पवित्र—निर्दोष—नितान्त प्रशंसनीय और स्वतःसिद्ध प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

608 ३ २ ३ १२ ३१ २ ३१ ३ १ २ ३ १ २
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
२ ३ १२ २२
ता मित्रावरुणा हुवे ॥२॥ ऋ० १.२३.५

(यौ) जो (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण परमात्मा (तौ) वे (ऋतेन) यथार्थ ज्ञान से वर्तमान हैं (ऋतावृधौ) यथार्थ ज्ञान के वर्धक हैं (ऋतस्य ज्योतिषः) यथार्थ ज्ञानज्योति के (पती) पालक हैं—पालन करने वाले हैं (ता) उन्हें (हुवे) मैं आमन्त्रित करता हूं ।

संसार में कर्मकरणार्थ प्रेरक और मोक्ष कर्मफलभोगार्थ अङ्गीकारकर्ता परमात्मा यथार्थज्ञान से वर्तमान है यथार्थज्ञान का वर्धक है यथार्थज्ञानज्योति के पालन कराने वाला है उससे जीवन धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

609 १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २
करतां नः सुराधसः ॥३॥ ऋ० १.२३.६

(वरुणः-मित्रः) मोक्षकर्मभोगार्थ वरने वाला तथा संसार में कर्मकरणार्थ प्रेरित करने वाला परमात्मा (विश्वाभिः-ऊतिभिः) समस्त रक्षणविधियों द्वारा (अविता प्रभुवत्) रक्षक प्रभूत है—रक्षक होने में समर्थ है (नः सुराधसः करताम्) हमें शोभन धन वाले—शोभनसिद्धि वाले कर दे ।

मित्ररूप वरुणरूप परमात्मा समस्त रक्षाविधियों से रक्षक होने में समर्थ है हमें शोभन धन वाले और शोभन सिद्धि वाले कर देता है जब कि हम उसके उपासक हो जावें ॥ ३ ॥

तृतीय चतूर्ऋच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

७९६/१९८

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ ३
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
२ ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥१॥ ऋ० १.७.१

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १५९)

७९७/२९७

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचो युजा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२॥ ऋ० १.७.२

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४९१)

७९८/४९८

२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥३॥ ऋ० १.७.४

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४९२)

७९९

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
२उ ३ १ २
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥४॥ ऋ० १.७.३ (८.९३.४१; १०.१२९.६)
अथर्व० २०.३८.५; ४७.५

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (दीर्घाय चक्षसे) दीर्घ दर्शन —बहुत काल तक तथा बहुत दूर दर्शन के लिए (सूर्यं दिवि-आरोहयत्) सूर्य को द्युलोक में आरोपित किया—आस्थापित

किया, तथा (गोभिः-अद्रिम्-वि-ऐरयत्) जो सूर्य रश्मियों द्वारा मेघ को जल वर्षाने के लिये नीचे बिखेर देता है।

ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने दीर्घकाल तक तथा दूर तक दिखाने के लिये सूर्य दर्शनसाधन द्युलोक में ऊपर स्थापित किया है तथा वह मेघ को नीचे जलवृष्टि के लिये नीचे बिखेरता है ॥ ४ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला)

देवता—पूर्ववत् । — इन्द्राग्नी

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र

८०० इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे ।

३ १र २र ३ १ २

धिया धेना अवस्यवः ॥१॥ ऋ. ७.९४.४

(अवस्यवः) हम रक्षण चाहने वाले उपासक जन (इन्द्रे-अग्ना) ऐश्वर्यवान् एवं प्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मा के निमित्त 'अग्ना' आकारादेशश्छान्दसः (बृहत्-नमः) बहुत नम्रभाव—आत्मस्नेह अनुराग तथा (सुवृक्तिम्) शोभन वर्जन—मन से वासनात्याग को (एरयामहे) भेंट देते हैं (धिया धेनाः) कर्म के साथ वाणियों—गुणकीर्तन वाणियों को भी भेंट देते हैं।

रक्षण चाहने वाले उपासक ऐश्वर्यवान् अग्रणेता परमात्मा के निमित्त बहुत आत्मस्नेह तथा वासनारहित मन—शुद्ध मनोभाव तथा वाणी से गुणकीर्तन एवं उत्तमकर्म—उत्तम आचरण को भेंट दें तो वह अवश्य रक्षा करे॥ १ ॥

१२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये ।
३ २ ३ ३२
सबाधो वाजसातये ॥२॥

(इत्था) सचमुच "इत्था सत्यनाम" [निघ० ३।१०] (शश्वन्तः-विप्रासः) बहुत विप्र—मेधावी विद्वान् (ऊतये) रक्षा के लिए (ता हि ईडते) उन ऐश्वर्यवान् और अग्रणायक परमात्मा को ही स्तुत करते हैं (वाजसातये) अमृत अन्नभोगप्राप्ति के लिए (सबाधः) समान बाध पीड़ा वाले हो कर ।

यह सत्य है कि उपासकजन एक साथ बाधा पीड़ा या संकट आ जाने पर सब दशा में परमात्मा की शरण लेते हैं ॥ २ ॥

१ २..३ १ २ ३ २ ३ १ २
ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
३ १ २ ३ १ २
मेधसाता सनिष्यवः ॥३॥

(विपन्यवः) हम स्तुति करने वाले (प्रयस्वन्तः) स्तुतिरूप भेंट वाले (सनिष्यवः) सम्भजन करने वाले—उपासक जन (ता वाम्) उन तुम (मेधसाता) अध्यात्मयज्ञ में सेवन करने योग्य परमात्मा को (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं ।

हम स्तोता स्तुति भेंट देने वाले उपासक जन अध्यात्मयज्ञ में सेवनीय उस ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशवान् अग्रणेता परमात्मा को आमन्त्रित करें ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वारुणिर्भृगुर्जमदग्निर्वा (वरुणविद्याकुशल तेजस्वी जन या प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ शान्त परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १२ ३१२ ३२
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८८)

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ऽऽ पवमान स्वर्दृशम् ।
३ १२ २२ ३ १ २
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२॥

(पवमान) हे आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन् ! (तं त्वा स्वर्दृशम्) उस तुझ सुखदर्शक (ओण्योः-धर्त्तारम्) द्युलोक पृथिवीलोक के धर्त्ता को "ओण्यौ द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०] (वाजेषु) अमृत अन्नभोगों के निमित्त "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० ३।१९३] (वाजिनम्) अमृत अन्न वाले परमात्मा को (हिन्वे) प्राप्त करूं ।

हे आनन्दधागा में आने वाले परमात्मन् ! उस तुझ द्युलोक पृथिवीलोक के कर्त्ता धर्त्ता अमृत अन्नभोगों के निमित्त अमृत अन्न-भोगों के स्वामी को प्राप्त होऊं ॥२॥

३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।

२ ३ १ २

युजं वाजेषु चोदय ॥३॥

(अया-अनया) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! इस प्रगतिमय—(विपा धारया) स्तुतिरूप वाणी से "धारा वाङ्नाम" [निघ० १।११] (चित्तः) संचेतित हुआ—प्रसन्न हुआ हमारी ओर कृपायमाण हुआ (हरिः) दुःखापहरणकर्त्ता सुखाहरणकर्ता बना (युजम्) युक्त—मुझ अपने से युक्त हुए को (वाजेषु) अमृत अन्नभोगों के निमित्त (चोदय) प्रेरित कर ।

परमात्मा प्रगतिमय स्तुतिरूप वाणी से कृपायमाण हुआ दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता बना अपने साथ युक्त—योगी उपासक को अमृत भोगों के निमित्त प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—उपमन्युः (परमात्मा का उपमनन करने वाला उपासना करने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः— त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २

वृषा शोणो अभि कनिक्रदद् गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥१॥

(गाः-अभिक्रन्दत्) उपासक आत्मा, जब आरम्भ सृष्टि में परमात्मन् ! तेरी स्तुतियां करता है, तब हे शान्तस्वरूप परमात्मन् तू (वृषा शोणः) सुखवर्षक कामनापूर्वक स्वज्ञान से प्रकाश-

मान हुआ (पृथिवीम्-उत द्यां नदयन्-एषि) ज्ञान का प्रवचन करता हुआ प्राण और उदान को, हृदय को प्राप्त होता है "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४।३।१।२२] तब (इन्द्रस्य वग्नुः-इव) विद्युत् के स्तयित्नु मेघ में शब्द की भांति (आश्रृण्वे) वह उपासक सुनता है 'पुरुषव्यत्ययः,' हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू जिस (इमां वाचम्-आजौ प्रचोदयन्-आ-अर्षसि) इस वाणी—कल्याणी वाणी—वेद को प्रेरित प्रकाशित करने के हेतु जीवन संग्राम स्थल संसार या आजवन या महत्त्वपूर्ण हृदयस्थान में समन्तरूप से प्राप्त होता है "परमं वा एतन्महो यदाजिः [जै० २।४०५]।

आरम्भसृष्टि के उपासक जब परमात्मा की स्तुतियां करते हैं तो शान्तस्वरूप परमात्मा सुखवर्षक स्वज्ञानप्रकाशस्वरूप बन उस के प्राण और उदान को उनसे पूरित हृदय देश को प्रत्येक श्वास प्रश्वास के साथ आता है प्रवचन करता है उसे उपासक सुनते हैं इस कल्याणी वाणी वेद को प्रेरित करने के हेतु तू समन्तरूप जीवनसंग्रामस्थल संसार में या आजवन या महत्त्वपूर्ण हृदयस्थान में समन्तरूप से प्राप्त होता है ॥ १ ॥

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्।
पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥२॥

(पवमान सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होते हुए शान्तस्वरूप परमात्मन्! (रसाय्यः) उपासनारस योग्य (पयसा) उपासनारस के द्वारा "रसो वै पयः" [श० ४।४।४।८] (पिन्वमानः) सेवन किया जाता हुआ "पिवि सेवने" [भ्वादि०] (मधुमन्तम्-अंशुम्-ईरयन्-एषि) कामभाव वाले कामनावाले मन को

"सर्वे वै कामा मधु" [ऐ० आ० १।१।३] "मनो ह वाऽअंशुः" [श० ११।५।९।२] उत्कृष्ट करता हुआ उपासक को प्राप्त होता है तथा (परिषिच्यमानः) उपासनारस से परितृप्त किया जाता हुआ (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिए (सन्तनिं कृण्वन्-एषि) प्राण—प्राणशक्ति को जीवन को भी सुसम्पन्न करता हुआ आता है।

आनन्दधारा में आने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा, उपासनारस प्राप्त करने योग्य पात्र उपासनारस के द्वारा सेवन किया जाता हुआ, कामना विषय वाले मन को उत्कृष्ट करता हुआ उपासक को प्राप्त होता है। तथा, उपासनारस से तृप्त हुआ प्रसन्न हुआ परमात्मा, उपासक आत्मा के लिये, प्राणशक्ति जीवन को भी सुसम्पन्न बनाता हुआ, प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ १ २ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् बधस्नुम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (मदिरः) हर्षकर हुआ (उदग्राभस्य मदाय) उपासनारस ग्रहण कराने वाले उपासक के हर्ष के लिए (वधस्नुं नमयन् पवस्व एव) प्रहार-प्रसारक कामभाव को नमता हुआ निर्बल करता हुआ अवश्य आनन्दधारा में प्राप्त हो (सिक्तः) उपासनारस से पूरित—तृप्त हुआ (रुशन्तं वर्णं भरमाणः) प्रकाशमान स्वरूप को धारण करता हुआ (परि-अर्ष) भली भांति प्राप्त हो (नः-गव्युः परि) हमारी स्तुतियों को चाहता हुआ भली भांति प्राप्त हो।

हर्षप्रद शान्तस्वरूप परमात्मा उपासनारस प्रदान करने वाले उपासक के हर्ष के लिए उस नाशकारी काम आदि शत्रु को

विलीन करता हुआ प्राप्त होता है तथा उपासनारस से तृप्त—प्रसन्न हुआ प्रकाशमान स्वरूप को धारण करता हुआ प्राप्त होता है हम उपासकों की स्तुतियों को चाहने वाला सम्यक् प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

—:०:—

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न या ज्ञानबल को धारण करने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

१र २र ३ १र २र ३ १ २
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १८६)

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ १
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
१र २र ३क २र ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र सङ्किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

(चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः-अद्रिवः) हे चायनीय दर्शनीय, प्राणों से वर्जित कराने वाले ओज ही हाथ जिसका है "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] धर्षणशील 'याच्प्रत्ययः सम्बोधने' महान् विभु आत्मन् परमात्मन्! (सः-त्वं स्तवानः) वह

स्तुत किया जाता हुआ (नः) हमारे लिए (रथ्यं गाम्-अश्वम्) देहरथसम्बन्धी गो—ऋषभ प्राण को "प्राणो हि गौः" [श० ४।३।४।२५] और वीर्य को "वीर्यं वा अश्वः" [श० २।१।४।२३] (सत्रा) साथ (वाजम्) बल को (न सङ्क्किर) सम्प्रति भरपूर दे "न सम्प्रत्यर्थे प्रतिभागं दीधिम-भागंमनुध्यायोम" [निरु० ६।८] (जिग्युषे) संसारसंघर्ष को जीतने के लिए।

हे दर्शनीय पापनिवारक ओजरूप हाथों वाले धर्षणशील परमात्मन्! तू स्तुति में लाया हुआ हमारे देह में प्राण, वीर्य, बल को भी सम्प्रति संसारसंघर्ष में जीतने वाले भरपूर प्रदान कर ॥ २ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—काण्वः प्रस्कण्वः (मेधावी का पुत्र अतिमेधावी उपासक)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—प्रगाथ बृहती।

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १८७)

३ १ २ ३ १ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२॥

(धृष्णुया) धर्षणशील परमात्मा (दाशुषे) स्वात्मसमर्पण कर्ता उपासक के "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" [अष्टा० २।३।६२] इत्यत्र 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि वक्तव्यम्' (वृत्राणि) पापों को "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] (हन्ति) नष्ट कर देता है (शतानीका-इव प्रजिगाति) जैसे सैकड़ों सैनिक बलों को सेनानायक पूर्णरूप से जीत लेता है तथा (अस्य पुरुभोजसः) इस बहुत पालनकर्ता परमात्मा के (दत्राणि) सुखद भोग्य दान (गिरेः-रसाः-इव प्रपिन्वरे) पर्वत के नदी सोते जैसे "रसा नदी" [निरु० ११।२५] भूमि को सींचते हैं तृप्त करते हैं। ऐसे उपासक को तृप्त करते हैं।

आत्मसमर्पणकर्ता उपासक के पापों का नाश परमात्मा ऐसे कर देता है जैसे सेनानायक शत्रुसैनिकबलों को जीत लेता नष्ट कर देता है पुनः बहुत पालनकर्ता विविध सुखदान उपासक को ऐसे तृप्त करते हैं जैसे पर्वत के नदी सोते भूमि को सींचते तृप्त करते हैं॥ २॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधा वाला†)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—पूर्ववत्।

२ ३ १र २र ३ १ २
२९३ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः। ऋ० ८.९९.१
३.२
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २४६)

---

† "नरो ह वै देवविशः" [जै. १।८९]

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २
तव श्रवाꣳस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥२॥

(सुशिप्रिन् हरिवः-उक्थ्य गिर्वणः-इन्द्र) हे सुन्दर विभुगति वाले दुःखापहरण सुखाहरण शक्ति वाले स्तुतियों से सेवनीय प्रशंसनीय ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (मत्स्व) हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हो (तम्-ईमहे) उस तुझ को हम चाहते हैं (त्वया वेधसः-भूषन्ति) तेरे सहारे से मेधावी उपासक "वेधाः-मेधावीनाम" [निघ० ३।१५] ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं (सुतेषु) समस्त उपासना-रसप्रसङ्गों में (तव) तेरे (उपमानि श्रवांसि) ऊपर मान कराने वाले श्रवणों को सुनते रहें ।

विभुगतिमान् दुःखहारी सुखकारी तथा स्तुतियों से सेवनीय प्रशंसनीय ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होता है जब कि उसे हम चाहते हैं उसकी स्तुतियां करते हैं परमात्मा के आश्रय से मेधावी उपासक जन मोक्षैश्वर्य के भागी हो जाते हैं अतः इस प्रकार ऊपर मान कराने वाले जीवन्मुक्त बनाने वाले परमात्मविषयक श्रवणों को हम सुनते रहें ॥ २ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—असहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्ष का इच्छुक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
३ १२ ३ २
देवावीरघशꣳसहा ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८८)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
जघ्निर्वृत्रममित्रियꣳ सस्निर्वाजं दिवे दिवे ।
१ २ ३ १ २
गोषातिरश्वसा असि ॥२॥

(अमित्रियं वृत्रं जघ्निः) अमित्र न मित्र—शत्रु के समान आचरण करते हुए पाप को नष्ट करता है (दिवे दिवे वाजं सस्निः) दिन दिन प्रतिदिन अध्यात्मबल का दाता है (गोषातिः-अश्वसाः-असि) वाणी—स्तुति को सेवन—स्वीकार करने वाला आशुव्यापी मन—मनोभाव का सेवन करने—स्वीकार करने वाला है ।

शत्रु के समान आचरण करने वाले पाप को परमात्मन् तू नष्ट करता है आध्यात्मिक बल को प्रदान करता है पश्चात् हमारी स्तुतियां स्वीकार करता है और मनोभाव को भी अपनाता है।।२।।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
१ २ ३ २३ ३ २
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥३॥

(सूपस्थाभिः-धेनुभिः-न) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू सुव्यवस्थित स्तुतिवाणियों से सम्प्रति "धेनुः-वाङ् नाम" [निघ०

१।११] (सम्मिश्लः-अरुषः-भुवः) संयुक्त सम्भाव को प्राप्त हो रोचमान हृदय में साक्षात् हो जाता है (श्येनः-न योनिम्-आसीदन्) भास—बाज पक्षी की भांति प्रशंसनीय गतिमान् हो अपने घर में विराजमान हो जाता है ।

परमात्मा उत्तम स्तुतियों से स्तुत किया हुआ हृदय में साक्षात् भासमान होता है जैसे प्रशंसनीय गतिमान् भास—बाज पक्षी अपने घर में आ विराजता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नहुषो ययातिर्मानवो वा (जीवन्मुक्त या मननकुशल उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३१२३ ३ १ २ ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
२ ३ १ २ ३ १ २३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४४८)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
१ २ ३१र २र ३ १ २
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥२॥

(प्रियाः-घृष्वयः-गावः) हे प्यारी परस्पर संघर्ष करती हुई एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर स्तुतिवाणियो ! तुम सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के हर्ष आनन्द प्राप्ति के लिए (उ समू-अनुषत)

अवश्य सम्यक् उस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को स्तुत करो यतः (इन्दवः पवमानासः सोमासः) आनन्दरस भरा धारारूप में प्राप्त होता हुआ सोम शान्त परमात्मा 'सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्' हम स्तोताओं उपासकों के लिये (पथः कृण्वते) जीवनमार्गों को सम्पन्न करता है।

हे एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर स्तुति करने वाली प्यारी वाणियो ! तुम मेरे हर्ष आनन्द प्राप्त करने के लिए शान्त स्वरूप परमात्मा की स्तुति करो, वह आनन्दरस भरा धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा हम स्तोताओं—उपासकों के लिए जीवनमार्गों को सम्पन्न करता है॥ २॥

१२ ३१२ ३ १२ २२३ १२ ३ १ २
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्।
१२ २२ ३ २ ३ २ ३२३ ३ १ २
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥३॥

(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! (यः-ओजिष्ठः) जो तेरा सर्वोत्तम रस—आनन्दरस है (तं श्रवाय्यम्-आभर) उस श्रवणीय—अङ्गीकार करने योग्य—अपने अन्दर समाने योग्य को हमारे अन्दर आभरित कर (यः पञ्च चर्षणीः-अभि) जो पांच मनुष्यों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद—वनवासी जनों—मनुष्य मात्र को "चर्षणयः-मनुष्याः" [निघ० २।३] अभि—अभिप्राप्त—करनेयोग्य अध्यात्मरस है (येन) जिसके द्वारा (रयिं वनामहे) हम पुष्ट—मुक्त जीवन "पुष्टं वै रयिः" [श० २।३।४।१३] सेवन कर सकें।

हे मेरे प्यारे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरा जो सर्वोत्तम आनन्दरस है अपने अन्दर समाविष्ट करने योग्य को हमारे अन्दर आभरित करदे जो मनुष्यमात्र को धारण करने योग्य है।

परमात्मदर्शन या परमात्मश्रवण करने का अधिकार मनुष्य-मात्र—वनवासी तक को है जिस से मुक्तजीवन बना सके ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—भार्गवः कविः (तेजस्वी से सम्बद्ध क्रान्तदर्शी विद्वान्)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः
३ १ २ ३ १र २र ३ २
सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
३ १र २र ३ १ ३ ३ १ २ ३
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य
१ २ ३ १ २ ३ १ २
हार्दाविशन् मनीषिभिः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५९).

३ १ २ ३ २ ३ १र २र
मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभि-
३ २उ ३ १ २
र्यतः परिकोशाँ असिष्यदत् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३
त्रितस्य नाम जनयन्मधु
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥२॥

(मनीषिभिः-नृभिः-यतः) मननशील मुमुक्षुओं के द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] योगाभ्यास से साधा ध्याया हुआ (पूर्व्यः कविः) शाश्वतिक सर्वज्ञ शान्तस्वरूप परमात्मा (कोशान् परि-असिष्यदत्) हृदय-अवकाशों को पूरित करता है

(त्रितस्य-इन्द्रस्य मधु नाम जनयन्) "त्रितः-त्रिस्थान इन्द्रः" [निरु० ९।२५] स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर में वर्तमान जीवात्मा या स्तुति प्रार्थना उपासना में प्रवृत्त उपासक आत्मा के नमाने वाले मधुर आनन्दरस को उत्पन्न करता हुआ भिराता हुआ (सख्याय वायुं वर्धयन् पवते) अपने साथ मित्रता के लिए तथा आयु—परम आयु को बढ़ाने के हेतु "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २।४।३] प्राप्त होता है ।

मननशील मुमुक्षु द्वारा ध्याया हुआ शाश्वतिक सर्वज्ञ शान्त स्वरूप परमात्मा, उनके हृदयों में समा जाता है, बस जाता है, तीन स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों में रहने वाले या स्तुति प्रार्थना उपासना में प्रवृत्त, उपासक आत्मा के नमाने वाले, मधुर रस को प्रकट करता हुआ तथा चुआता हुआ, अपने साथ मित्रता कराने के लिए, एवं, परम आयु मोक्ष वाले की बढ़ाने के हेतु प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ः १ २र
अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु-
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
लोककृत् । अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते
१ २ ३ २
चारु मत्सरः ॥३॥

(अयं सोमः) यह शान्तस्वरूप परमात्मा (पुनानः-उषसः-अरोचयत्) अध्येषित हुआ ध्याया हुआ ज्ञानप्रकाशधाराओं को चमका देता है (सिन्धुभ्यः-लोककृत्-अभवत्) प्राणों के लिए "प्राणो वै सिन्धुः।" [श० ८।५।२।४] प्रतिष्ठा करने वाला है "इम उ लोकाः प्रतिष्ठा" [श० ८।३।१।१०] (अयं त्रिः सप्त-आशिरं दुहानः) यह परमात्मा स्तुति प्रार्थना उपासना में सप्त चला

हुआ "सप्त सृप्तः" [निरु० ४।२५] आनन्द आश्रय को दोहन करता हुआ (हृदे मत्सरः-चारु पवते) हृदय के लिए हर्षकर हो सुन्दर रूप में प्राप्त होता है।

शान्तस्वरूप परमात्मा ध्याया हुआ, ज्ञानज्योतियों को प्रकाशित करता है, प्राणों को यथावत् प्रतिष्ठित करता है, स्तुति प्रार्थना उपासना में चलाया हुआ आनन्द आश्रय को दोहन करता हुआ हृदय के लिये हर्षकर सुन्दर रूप में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

३ १२ २२ ३ २३ १२ २२ ३ २ ३ २
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
३ २ ३ २ ३ १ २
एवा ते राध्यं मनः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १८३)

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः।
१ २ ३ १ २
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥२॥

(तुविमघ-इन्द्र) हे बहुत प्रकार धनस्वामिन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तुझ से (विश्वेभिः-धातृभिः) सब धारणा ध्यान करने वाले उपासक जन (रातिः-धायि) अध्यात्म सम्पत्ति—अमरता

धारते हैं (अध-एव चित्-नः सच) ऐसे फिर हमारा भी सहायक बन ।

बहुविध धनस्वामिन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! जैसे धारणा ध्यान करने वाले उपासक जन, तुझ अमरता रूप सम्पत्ति को धारते प्राप्त करते रहे वैसे अब हमें भी उस अमरतारूप सम्पत्ति प्रदान करने में हमारा सहायक बन ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ १र २र
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते।
१ २ ३ २ ३ १ २
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥

(वाजानां पते) हे अमृत अन्नभोगों के स्वामिन्! तू (ब्रह्मा-इव) 'ब्रह्मणे' ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण के लिए अपने उपासक के लिए जैसे 'ब्रह्मणे—अत्र चतुर्थीविभक्तेर्लुक्' तू (तन्द्रयुः) तन्द्राप्राप्त उपेक्षायुक्त (सु-मा-उ भुवः) सुनिश्चित नहीं कभी होता है अतः (गोमतः सुतस्य मत्स्व) स्तुति वाले निष्पादित उपासनारस के उपहार को पाकर प्रसन्न हो।

हे अमृतभोगों के स्वामिन् परमात्मन्! तू ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण के लिए जैसे अमृतभोग देने में कभी भी निश्चय तन्द्रायुक्त—उपेक्षाकारी नहीं होता ऐसे ही नम्र वाणियों से उपासनारस को स्वीकार करने में भी उपेक्षाकारी नहीं होता है ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—माधुच्छन्दसो जेता (मधुच्छन्दाः से सम्बद्ध इन्द्रिय-विजयी उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २८४)

३ १ २ ३ २ ३ १ २
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
२ ३ १२ २२ ३ १२३१२
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२॥

(शवसस्पते-इन्द्र) हे बल के स्वामिन् ! ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते सख्ये) तेरे मित्रभाव में (वाजिनः) बलवान् होते हुए—आत्मबल वाले होते हुए हम (मा भेम) नहीं भय करते हैं (त्वाम्-अपराजितं जेतारम्) तुझ पराजित न होने वाले जैता—विजेता—समर्थ को हम (प्र नोनुमः) पुनः पुनः प्रणाम करते हैं—तेरी ओर नमते हैं—तेरी उपासना करते हैं ।

सर्वबलवान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा की मित्रता में उपासकजन बलवान् होकर निर्भय हो जाते हैं अतः उस अभयशरण समर्थ अपराजित की पुनः पुनः उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

३ १२ २२ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न विदस्यन्त्यूतयः ।
३ १२ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मꣳहते मघम् ॥३॥

(यदा स्तोतृभ्यः) जब स्तोता-उपासकों के लिए (गोमतः-वाजस्य मघं मंहते) स्तुति वाले स्तुतिविषयक अध्यात्मबल के

प्रतीकाररूप—पुरस्काररूप धन—आनन्दप्रद धन को इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा देता है "मघ मंहतेदानकर्मा:" [निघ० ३।२०] तो (इन्द्रस्य पूर्वीः) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा के प्राचीन शाश्वतिक (रातयः-ऊतयः) दान तथा रक्षण (न विदस्यन्ति) नहीं क्षीण होते हैं। न क्षुध्यन्ति नोपक्षीयन्ति

जब ऐश्वर्यवान् परमात्मा अपने स्तोताओं उपासकों के लिए स्तुतिविषयक अध्यात्मबल के प्रतीकाररूप पुरस्काररूप आनन्द-प्रद धन को देता है तो उस परमात्मा की शाश्वतिक दानभावनाओं और रक्षणक्रियाओं का अन्त नहीं होता निरन्तर चलती रहती हैं ॥ ३ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः।

—()-:o:-()—

अथ चतुर्थ अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
१ २ ३ १र २र
विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥ ऋ० ९-६२-१

(एते-आशवः-इन्दवः) 'अत्र सर्वत्र वहुवचनमादरार्थम्' यह व्यापनशील आनन्दरस भरा सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (तिरः पवित्रम्-असृग्रम्) अन्तर्हित—अन्दर "तिरो दधे—तिरो अन्तर्दधाति" [निरु० १२।३२] "तिरोऽन्तर्धौ" [अष्टा० १।४।७०] पवित्र हृदय में सृजा जाता है—प्रकट—प्रत्यक्ष किया जाता ध्यानी उपासकों द्वारा (विश्वानि सौभगा-अभि) सारे सुभग धर्मों को प्राप्त करने के लिए।

उपासक आनन्दरसपूर्ण व्यापनशील शान्त परमात्मा को अन्दर हृदय में साक्षात् करते हैं समस्त सौभाग्यप्राप्ति को लक्ष्य करके ॥ १ ॥

३ १ २ ३२ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥२॥

(वाजिनः) अमृत अन्नभोगों वाला "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] सोम शान्त परमात्मा (दुरिता विघ्नन्तः) दुःख अज्ञान पापों को विशेषरूप से नष्ट करता हुआ (तोकाय पुरु सुगा) निकेतन—शरीरस्थान के लिए "तुज निकेतने" [चुरादि०] बहुत सुगतियों सुखसाधनों को, तथा (त्मना-अर्वतः कृण्वन्तः) 'आत्मनः—आकारादेशः शसि' आत्माओं को पौरुष वाले—बलवान् करता हुआ "पुमांसोऽर्वन्तः" [श० ३।२।४।७] प्राप्त होता है।

अमृतभोगों वाला सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा मन के अज्ञान पाप दुःख को नष्ट करता हुआ शरीरस्थान के सुगमन—सुखसाधनों को स्थिर करता हुआ और आत्मा को बलवान्—आत्मबलवान् बनाता हुआ प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १२३ २३क २र ३ २
कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
१ २३ १ २ ३ १ २
इडामस्मभ्यꣳ संयतम् ॥३॥

(गवे वरिवः सुष्टितम्) वाणी के लिए बोलने का अवकाश "अन्तरिक्षं वै वरिवः" [श० ८।५।२।५] तथा उत्तम स्तुति करने का गुण एवं (अस्मभ्यम्) मह्यम्—"अस्मदो द्वयोश्च" [अष्टा० १।२।५९] मेरे—मुझ उपासक आत्मा के लिए (इडां संयतम्) श्रद्धा को "श्रद्धा-इडा" [श० ११।२।७।२०] 'सम्पूर्वकयमधातोः क्विपि रूपम्' और संयत्—संयमशक्ति को (कृण्वन्तः) सम्पा-

दन करता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थम्' (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होता है।

शान्तस्वरूप परमात्मा अपने उपासक आत्मा में अपने प्रति श्रद्धा और संयमशक्ति तथा उसकी वाणी में भाषणावकाश और अपनी स्तुतिप्रवृत्ति का सम्पादन करता हुआ प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋष्यादयः—पूर्ववत्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि।
३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥१॥

(पवमानः-राजा) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला सर्वत्र राजमान—विराजमान तथा दीप्यमान प्रकाशमान परमात्मा (मनौ-अधि) मननशील उपासक में (मेधाभिः) मेधा—बुद्धि—विविध बुद्धियों—विविध मननक्रियाओं के द्वारा "मेधा मतौ धीयते" [निरु० ३।१९] मति में रहने वाली मननप्रक्रियाओं से (अन्तरिक्षेण यातवे) हृदयाकाश में प्राप्त होने को (ईयते) धारा जाता है माना जाता है।

आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाला प्रकाशमान परमात्मा हृदयाकाश में सिद्ध प्राप्त होने को मननशील उपासक में मनन-क्रियाओं से माना—जाना जाता है ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणो देववीतये ॥२॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (सुष्वाणः) उपासना द्वारा साक्षात् हुआ (नः) हमारी (जुवः सहः-रूपं न) वाणी के "जूरसीत्येतद्ध वा अस्या वाच एकं नाम" [श० ३।२।४।११] बल "सहः-बलनाम" [निघ० २।९] को निरूपणप्रकार भावनामय को भी (वर्चसे) आत्मतेज के सम्पन्न करने के लिए (देववीतये) तुझ देव की प्राप्ति के लिए (आभर) आभरित कर—पूर्णरूप से भर दे।

परमात्मा उपासकों को स्वसाक्षात्कार के निमित्त उनकी वाणी में वदनशक्ति और, भावमय स्तवनप्रकार को आत्मतेज के लिए और अपनी प्राप्ति के लिए पूरा भर देता है ॥ २ ॥

आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोषꣳ स्वश्व्यम्।
वहा भगत्तिमूतये ॥३॥

(इन्दो) हे दीप्तिमन् आनन्दरसवन् परमात्मन्! (नः) हमारे लिए (गवां पोषम्) वाणियों—स्तुतियों के फल को (शतग्विनम्) सैंकड़ों स्तुतियों से निष्पन्न को (स्वश्व्यम्) सुन्दर विषयव्याप्तिशील मनोभाव को (भगत्तिम्) मोक्षैश्वर्यदानप्रवृत्ति को (ऊतये) रक्षा के लिए (आवह) समन्तरूप से प्रवाहित कर।

दीप्तिमन आनन्दरस भरे परमात्मन्! तू हमारे सैकड़ों बार के स्तुतिफल तथा सुन्दर मन के भाव को और अपनी मोक्षदान-प्रवृत्ति को प्राप्त करा जिससे हम सुरक्षित रहें ॥ ३ ॥

तृतीय पञ्चर्च

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी उपासक)

देवताछन्दसौ—पूर्ववत्।

८३६ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतꣳ सधस्थेषु महो दिवः ।
१ २ ३ १ २
चारुꣳ सुकृत्ययेमहे ॥१॥ ऋ. ९. ४८ । १

(तं त्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! उस तुझे (नृम्णानि बिभ्रतम्) उपासकनरों के नमाने वाले सुखसाधनों के धारण करते हुए को (महः-दिवः) महान् मोक्षधाम के समानस्थानों—सुखस्थानों में (चारुं सुकृत्यया-ईमहे) चरणशील व्यापने वाले सुन्दर को हम, उपासना से चाहते हैं सङ्गति में चाहते हैं ।

महान् मोक्षधाम के समानस्थानों में उपासकजनों को झुकाने वाले धनों के धारण करने वाले उस तुझ व्यापनशील सुन्दर परमात्मा को उपासना से प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १ ॥

८३७ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
३ १ २र ३ १ २
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥ ऋ. ९. ४८. २

(संवृक्तधृष्णुम्) सम्यक् पृथक् हो जाते हैं, धर्षणशील काम आदि जिस से ऐसे (महामहिव्रतम्) महान्—अनेक महत्त्वपूर्ण कर्म जिसके हैं ऐसे—(उक्थ्यं मदम्) प्रशंसनीय—हर्षकर—आनन्दप्रद (शतं पुरः-रुरुक्षणिम्) बहुत—असंख्य उपासकों आत्माओं को "आत्मा वै पूः" [श० ७।५।२।२१] रोहण—आरोहण—मोक्ष में आरूढ़ कराने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा को हम प्राप्त करें ।

जो शान्तस्वरूप परमात्मा हम उपासकों के अन्दर से काम आदियों को पृथक् कर देता है तथा जो महान् प्रशंसनीय कर्म

करने वाला आनन्दप्रद है और जो असंख्य उपासक आत्माओं को मोक्ष में स्थापित करता है उसको हम उपासक प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ ३क२र ३ १ २ ३ २
अतस्त्वा रयिरभ्ययद् राजानं सुक्रतो दिवः ।
३ १ २ ३ १ २
सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥३॥

(सुक्रतो-अतः-रयिः-त्वा राजानम्-अभ्ययत्) हे उत्तम प्रज्ञानवन् परमात्मन् ! "क्रतुः प्रज्ञाननाम" [निघ० २।९] 'सम्बोधने मतुपो लुक् छान्दसः' इस कारण कि मोक्षैश्वर्य तुझ प्रकाशमान को प्राप्त है—तेरे अधीन है (सुपर्णः-अव्यथी दिवः-भरत्) सम्यक् धर्मपालक उपासक पुरुष "पुरुषः सुपर्णः" [श० ७।४।२।५] व्यथारहित हो—विना कष्ट के मोक्षधाम से धारण कर लेता है—प्राप्त कर लेता है ।

हे सुप्रज्ञानवन् परमात्मन् ! तुझ राजमान स्वामी को मोक्षैश्वर्य प्राप्त है अतः तेरा उपासक मनुष्य विना व्यथा—अनायास मोक्षधाम से मोक्षैश्वर्य को प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
३ १र २र
अभिष्टिकृद् विचर्षणिः ॥४॥

(अध) पुनः (ज्यायः-इन्द्रियं हिन्वानः) ज्येष्ठ इन्द्रिय अर्थात् मन को प्रेरित करता हुआ (महित्वम्-आनशे) मेरे द्वारा पूजन सत्कार को प्राप्त होता है (अभिष्टिकृत्-विचर्षणिः) तू कामना पूर्ण करने वाला विशेष कृपादृष्टि रखने वाला है ।

शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक के मन या अन्तःकरण को प्रेरित करता हुआ—कामनापूरक और कृपादृष्टि करने वाला होने से हमारे द्वारा पूजा पात्रता को प्राप्त है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ १२ २र ३ १ २
विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।
३ १ ३ २ ३ १ २
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥५॥

(विश्वस्मै-इत् स्वर्दृशे) सब के लिए निश्चय सुख दिखाने के लिए (साधारणं रजस्तुरम्) समानरूपी दोषनाशक (ऋतस्य गोपाम्) अमृत के रक्षक परमात्मा को "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०] (विः-भरत्) ज्ञानवान् उपासक "वी गति…" [अदादि०] अपने अन्दर धारण करता है ।

समस्त जन को सुख दिखाने के लिए, जो समानरूप दोषनाशक अमृत का रक्षक परमात्मा है, उसको ज्ञानवान् उपासक अपने अन्दर धारण करता है ॥५॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—कश्यपः (अध्यात्मदर्शी उपासक†)

देवताछन्दसी पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
१ २ ३ १र २र
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४११)

† "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १।८।८]

३ १ २र ३ २ ३ १ ३
पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
हरे सृजान आशिरम् ॥२॥

(गिर्वणः-हरे) हे स्तुतिवाणियों से वननीय सेवनीय दुःखापहरणसुखाहरणकर्ता परमात्मन् ! (जनाय) उपासक जन के लिए (पुनानः) उपासक के हृदय में प्राप्त होने के हेतु (वरिवः-ऊर्जं कृधि) भोगधन और अमृतरस—मोक्षानन्द को सम्पादन कर (आशिरं सृजान) मुझे अपने आश्रय में आनन्द प्राप्त करा ।

स्तुतियों से प्राप्त होने वाले दुःखहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मन् ! तू उपासक जन के लिए उसके हृदय में प्राप्त होने के हेतु भोगधन और अमृतरस को मुझे प्राप्त हो ॥ २ ॥

३ २ ३१२ ३ १ २ ३२
पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
३ २ ३ १ २ ३२
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥३॥

(वाजिभिः-हितः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू वाजी—छन्दी—छन्द—अर्जन स्तुति करने वाले उपासकों द्वारा "छन्दांसि वै वाजिः" [मै० १।१०] "छन्दति अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४] हित—ध्याया हुआ (द्युतानः पुनानः) उपासकों को प्रकाशमान और पवित्र करता हुआ (देववीतये) देवों—जीवनमुक्तों की गति—गमनस्थली—मुक्ति है उसके लिए (इन्द्रस्य निष्कृतं याहि) अध्यात्मयज्ञ के यजमान आत्मा के संस्कृत—सुपात्र हृदय को प्राप्त हो "यद् वै निष्कृतं तत् संस्कृतम्" [ऐ० आ० १।१।४] ।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू अर्चना करने वाले उपासना करने वाले उपासकों के द्वारा ध्याया हुआ उपासकों के अन्दर

प्रकाशित हुआ उन्हें पवित्र करता हुआ मुक्ति प्राप्ति के लिए आत्मा के सुसज्जित अन्तःपात्र को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
३ २ ३क २र
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥१॥

(अग्निना) आत्मरूप अग्नि से—आत्मसमर्पण से (अग्निः समिध्यते) सर्वप्रकाशक परमात्मा स्वात्मा के अन्दर प्रकाशित होता है "अयं त इध्म आत्मा जातवेद तेनेद्धस्व" [आश्व० १।१०।१२] जो कि (कविः) क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (गृहपतिः) ब्रह्माण्ड के स्वामी परमात्मा "प्रजापतिरेव गृहपतिरासीत्" [श० १२।१।१।१] (युवा) सदा यौवनसम्पन्न "अकामो.....तमेव विद्वान्.....अजरं युवानम्" [अथर्व० १०।८।४४] (हव्यवाट्) स्तुतिरूप भेंट को वहन करने वाला "किं मे हव्यमहृणानो जुषेत" [ऋ० ७।८६।२] (जुह्वास्य) जुहू—वाणी "वाग्—जुहूः" [तै० आ० २।१७।२] स्तुति फेंकने—प्रेरित करने का साधन जिसके लिए है वह ऐसा परमात्मा है।

उपासक के आत्मा द्वारा—आत्मसमर्पण से, उपासक के अन्दर परमात्मा अग्नि प्रकाशित हो जाता है, जो कि क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ, ब्रह्माण्डस्वामी, सदा युवा, स्तुति भेंट को स्वीकार करने वाला, और, वाणी जिसके लिए स्तुति प्रेरित करने का साधन है ॥ १ ॥

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
१ २ ३ १ २
तस्य स्म प्राविता भव ॥२॥

(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव ! (यः) जो (हविष्पतिः) अपने मन का स्वामी—मन को निरुद्ध कर चुका हुआ उपासक "मनो हविः" [तै० आ० ३।६।१] (त्वां दूतं सपर्यति) तुझ प्रेरक को सेवित करता है—तेरी उपासना करता है (तस्य स्म) उसका निश्चय (प्र-अविता भव) तू प्रबल रक्षक है।

हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! जो मन को निरुद्ध कर तेरी उपासना करता है उसकी तू पूर्णरूप से रक्षा करता है ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आ विवासति ।
१ २
तस्मै पावक मृळय ॥३॥

(पावक) हे शोधक परमात्मन् ! (यः-हविष्मान्) जो मनस्वी उपासक (देववीतये) देवस्थली—मुक्तिप्राप्ति के लिए (अग्निम्-आविवासति) तुझ अग्नि—परमात्मा की समन्तरूप से उपासना करता है (तस्मै मृळय) उसके लिये मुक्ति देता है "मृळतिर्दानकर्मा" [निरु० १०।१५] ।

हे पवित्र करनेवाले परमात्मन्! जो मनस्वी उपासक मुक्तिधामप्राप्ति के लिए तेरी उपासना करता है उसके लिए तू अवश्य मुक्ति प्रदान करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)
देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरक एवं वरणकर्ता परमात्मा)
छन्दः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
धियं घृताचीꣳसाधन्ता ॥१॥ ५६-१-२-६

(पूतदक्षं मित्रं रिशादसं वरुणं च हुवे) पवित्रबल वाले प्रेरक परमात्मा को तथा हिंसकों के भक्षणकर्ता या हिंसकों के क्षयकर्ता अपनी ओर वरणकर्ता परमात्मा को जो कि (धियं घृताचीम्) प्रज्ञा—मनोभावना को "धी प्रज्ञानाम" [निघ० ३।९] वाणी—स्तुतिवाणी को "वाग् वै घृताची" [ऐ. आ. १।१।४] (साधन्ता) साधने—सफल बनाने वाला है (हुवे) उसे आमन्त्रित करता हूं—स्मरण करता हूं ।

मैं संसार में कर्मार्थ प्रेरक मनोभावना को सिद्ध—सफल करने वाले तथा अपनी ओर वरने वाले स्तुतिवाणी को सफल बनाने वाले परमात्मा को निरन्तर अपने अन्दर आमन्त्रित करूं—स्मरण करूं ॥ १ ॥

३ १ २
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।
१ २ ३ १ २
क्रतुं बृहन्तमाशथे ॥२॥ ५८-१-२-८

(ऋतावृधा) सत्य—सत्याचरणकर्ता के वर्धक (ऋतस्पृशा) सत्य—सत्याचरणकर्ता के स्पर्शी—सङ्गतिकर्ता (मित्रावरुणौ) प्रेरक और वरने—अङ्गीकार करने वाला परमात्मा (बृहन्तं क्रतुम्) महान् ज्ञानयज्ञ को या अध्यात्मयज्ञ को (ऋतेन-आशाथे) अपने अमृतस्वरूप से प्राप्त होते हैं "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०]।

सत्याचरणकर्ता—सत्यमानी सत्यवादी सत्यकारी का वर्धक तथा सत्यमानी सत्यवादी सत्यकारी का स्पर्शकर्ता सङ्गी प्रेरक और अङ्गीकार करने वाला परमात्मा महान् अध्यात्मयज्ञ को अपने अमृतस्वरूप से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।
१ २ ३ १ २
दक्षं दधाते अपसम् ॥३॥ ऋ० १.२.९

अत्र द्विवचनं गौणम्, धर्मद्वययुक्तः परमात्मा गृह्यते ।

(कवी) क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (तुविजातौ) बहुत प्रकार से साक्षात् होने वाला (उरुक्षया) महान् से महान् पदार्थों का निवास जहां हो ऐसा परमात्मा (मित्रावरुणा) प्रेरक और अङ्गी-कारकर्ता (नः-दक्षम्-अपसं दधाते) हम उपासकों के लिए आत्मबल और कर्मशक्ति को धारण कराता है ।

अन्तर्यामी सर्वज्ञ, तथा बहुत प्रकार से साक्षात् होने वाला महान् से महान् पदार्थों का निवासस्थान परमात्मा, हम उपासकों के लिए, आत्मबल और कर्मशक्ति को धारण कराता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—मरुद्गणाः-इन्द्रश्च (ऐश्वर्यवान् परमात्मा और उससे सम्बद्ध जीवन्मुक्त)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १र २र ३ १र २र
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा ।
३ १ २ ३ १ २
मन्दू समानवर्चसा ॥१॥

(अविभ्युषा-इन्द्रेण सञ्जग्मानः-हि सं दृक्षसे) भयरहित करने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मा के साथ उपासनाद्वारा संगत हुआ तू हे जीवन्मुक्त उपासकगण सदृश—उस जैसा हो रहा है "मरुतो देवविशः" [श० २।५।१।१२] (मन्दू समानवर्चसा) यतः अब दोनों समान तेज वाले और आनन्दवान् आनन्दप्रद हो रहे हैं "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि" [यजु० १२।२] "रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" [तै०उप० ब्रह्म० अनु० ६]

भयरहित करने वाले परमात्मा के साथ उपासनाद्वारा जीवन्मुक्त उपासकगण संगत हो सदृश प्रतीत होते हैं क्योंकि दोनों समान तेज वाले और आनन्दपूर्ण आनन्दमय हो जाते हैं ॥ १ ॥

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
२ २ ३ १ २ ३ १ २
दधाना नाम यज्ञियम् ॥२॥

(आत्-अह) बस अनन्तर—परमात्मसदृश गुण प्राप्त कर मुक्त गण (स्वधाम्-अनु) अपनी धृति—स्थिति के अनुसार (पुनः-गर्भत्वम्-एरिरे) पुनः परमात्मा के गर्भभाव को प्राप्त हो

जाते हैं उसके अन्दर विराजमान हो जाते हैं (यज्ञियं नाम दधाना:) सङ्गमनीय आत्मसमर्पण नम्रभाव को धारण करते हुए।

उपासना से उपासकजन उपास्य परमात्मा के गुण धारण कर अपने धृति स्थिति—स्व ज्ञान गति के अनुसार परमात्मा के अन्दर पुनः प्राप्ति अनुभव करते हैं जैसे संसार में आने से पूर्व मोक्ष में रहते थे सङ्गमनीय आत्मसमर्पणरूप नम्रीभाव को धारण करते हुए ॥ २ ॥

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥३॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (वीडु चित्-आरुजत्नुभिः) 'वीडुभिः-चित्' भिस्विभक्तेर्लुक् "सुपां सुलुक्......" [अष्टा० ७।१।३९] बल वाले—आत्मबल वाले ही, समन्तरूप से अज्ञान का भंजन करने वालों-(वह्निभिः) अपने ज्ञानसन्देशवाहकों मरुतों—आरम्भसृष्टि में उत्पन्न मुक्तात्मा अग्नि आदि परम ऋषियों के द्वारा (गुहा चित्) 'गुहायां चित्' उनके हृदय में निश्चय (उस्रियाः-अनु-अविन्द) ज्ञानरश्मियां—वेदवाणियां संसारी जनों को प्राप्त कराईं।

ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने आरम्भसृष्टि में अध्यात्मबलशाली अज्ञाननाशक उपासक मुक्तों अग्नि आदि परम ऋषियों के द्वारा—उनके हृदय में ज्ञानरश्मियों मन्त्रवाणियों को संसारी जनों के लिये पहुँचाया है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न को धारण करने वाला उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशक परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

८५३ ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्द्धतः ॥१॥ ऋ० ६.६०.४

(ता-इन्द्राग्नी हुवे) मैं उन दोनों नामों से कहे जाने वाले ऐश्वर्यवान् बलशाली एवं ज्ञानप्रकाशवान् अग्रणेता परमात्मा को आमन्त्रित करता हूँ (ययोः पुरा कृतं विश्वं पप्ने) जिसका प्रथम किया—रचा विश्व—संसार प्रशंसित किया जाता है (न मर्द्धतः) जो पीड़ा नहीं देता है 'मृध हिंसायाम्-छान्दसः' ।

ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा का रचा प्रवाह से पुराना संसार प्रशंसित किया जाहा है वह परमात्मा उपास्य देव है जो उपासकों को पीड़ित नहीं करता है ॥ १ ॥

८५४ उग्रा विघनिना मृधः इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृडात ईदृशे ॥२॥ ऋ० ६.६०.५

(उग्रा) उभरे बल वाले (मृधः-विघनिना) संग्राम करने वाले काम आदि को विशेष रूप से मारने वाले (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् ज्ञानप्रकाशवान् परमात्मा को (हवामहे) हम अपने

अन्दर आमन्त्रित करते हैं (ता नः-ईदृशे मृडातः) वह ऐसा संग्राम संकट में हमारी रक्षा करता है "मृडयतिरुपदयाकर्मा" [निरु० १०।१६]

ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा उपासक के अन्दर संग्राम मचाने वाले काम आदि शत्रुओं को सर्वथा नष्ट करता है और हमारी रक्षा करता है ॥ २ ॥

३ ३ २ १र २र ३ १ २र
८२५ हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
हथो विश्वा अप द्विषः ॥३॥ ऋ० ६.६०.६

(सत्पती) सत्पुरुष—उपासक के रक्षक ऐश्वर्यवान् ज्ञान-प्रकाशवान् परमात्मन् ! (आर्या वृत्राणि) अरि—अमित्र—शत्रु के अन्दर होने वाले पापों को "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] (अपहथः) हटादो—दूर कर दो (दासानि-अपहथः) दास—निष्कर्म जन या कर्मविनाशक जन के अन्दर होने वाले पापों को हटा दो दूर कर दो (विश्वाः-द्विषः-अपहथः) सारी द्वेषभावनाओं को हटा दो—दूर कर दो ।

उपासक का रक्षक परमात्मा, उपासक के प्रति शत्रु में की हिंसावृत्ति कर्मविनाशक प्रवृत्ति और द्वेषी की द्वेषभावनाओं को दूर कर देता है तथा, उपासक के अन्दर से किसी के भी प्रति शत्रु जैसी वृत्ति वैरवृत्ति दास जैसी हानि करने की प्रवृत्ति और द्वेषभावनाओं को उठने नहीं देता है ॥ ३ ॥

—

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र सब को मित्ररूप में देखने वाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)

छन्द—बृहती ।

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४२१)

१२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३२
तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ २
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२॥

(देवः पवमानः-राजा) सुखदाता प्राप्त होने वाला सोम राजा शान्तस्वरूप सर्वत्र राजमान परमात्मा (बृहत्-ऋतम्) महान् अमृतरूप "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०] (समुद्रम्-ऊर्मिणा तरत्) हृदयाकाश को "अयं समुद्रः···यदन्तरिक्षम्" [जै०१।१६५] अपनी ज्योतिः—तरङ्ग से प्राप्त होता है (मित्रस्य वरुणस्य) प्राण अपान के "प्राणापानौ मित्रावरुणौ" [तां० ६।१०।५।९] (धर्मणा) धर्म से—प्राणसमान अपानसमान बन कर (ऋतं बृहत्-हिन्वानः) महान् अमृत—मोक्ष की ओर उपासक को प्रेरित करता हुआ—अर्षण करता हुआ (अर्ष) साक्षात् होता है।

सुखदाता प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप सर्वत्र राजमान महान् अमृत परमात्मा हृदयावकाश में अपनी ज्योतितरङ्ग से प्राप्त होता है प्राण अपान के समान बन उपासक को महान् अमृत मोक्ष की ओर प्रेरित करने के हेतु साक्षात् होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ ३ २र

नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रयः ॥३॥

(नृभिः-येमाणः) मुमुक्षुओं के द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] यम आदि साधना में आता हुआ (हर्यतः) कमनीय "हर्यति प्रेप्साकर्मा": [निरु० २।१०] (विचक्षणः) विशेषद्रष्टा (राजा) सर्वत्र राजमान (देवः) सुखदाता परमात्मा (समुद्रयः) हृदयावकाश में साक्षात् होने योग्य है साक्षात् किया जाता है।

कमनीय सर्वद्रष्टा सर्वत्र राजमान सुखदाता परमात्मा मुमुक्षुओं द्वारा साधना में लाया हुआ हृदयावकाश में साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—पराशरः (काम आदि का शीर्ण करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १र २र २ १र २र ३ १ २ ३ १र २र २ २

तिस्रो वाच ईरयति प्रवह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४२७)

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २
सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ ९
सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सन्नवन्ते ॥२॥

(गावः-धेनवः) गाती हुई वेदवाणियां "धेनुः-वाङ्नाम" [निघ० १।१०] (सोमं वावशानाः) शान्तस्वरूप परमात्मा को पुनः पुनः चाहती हुई (विप्राः) मेधावी विद्वान् (मतिभिः) स्तुतिवाणियों से "वाग् वै मतिः" [श० ८।१।२।७] "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४] (पृच्छमानाः) अर्चित करते हुए "पृच्छति अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] (संनवन्ते) सम्यक् प्राप्त होते हैं (सोमः सुतः पूयमानः-ऋच्यते) शान्त परमात्मा साक्षात् हो अन्तरात्मा को शोधता हुआ प्रशंसित होता है (सोमे-अर्काः-त्रिष्टुभः-संनवन्ते) शान्त परमात्मा में अर्चना करने वाले मन वाणी कर्म से तीन प्रकार स्तुति करने वाले सङ्गत होते हैं।

जाने वाली स्तुतिवाणियां पुनः पुनः चाहती हुई शान्त परमात्मा को प्राप्त होती हैं, मेधावी उपासक स्तुतिवाणियों से अर्चना करते हुए शान्त परमात्मा को प्राप्त होते हैं, साक्षात् हुआ परमात्मा उपासक के आत्मा को शोधता हुआ प्रशंसित किया जाता है, मन वाणी कर्म से स्तुति करने वाले अर्चकजन परमात्मा में सङ्गति पाते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एवा नः सोम परिषिच्यमान आपवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १,
इन्द्रमाविश बृहतो मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम् ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (परिषिच्यमानः) सर्वभाव से धारित निदिध्यासन में आया हुआ (पूयमानः)

तथा साक्षात् हुआ (नः स्वस्ति) हमारी सु-अस्ति—स्वरूपापत्ति—मुक्ति को (एव) अवश्य (आपवस्व) प्राप्त करा "पवते गतिकर्मा" [निघ० २।१४] (बृहता मदेन) महान् हर्षक स्वरूप या हर्षनिमित्त से (इन्द्रम्-आविश) उपासक आत्मा को आविष्ट हो उसके अन्दर आवेश कर (वाचं वर्धय) उसकी स्तुतिवाणी को समृद्ध कर—सफल कर—करता है (पुरन्धिं जनय) उपासक आत्मा को बहुत धी—बुद्धिवाला सम्पन्न करदे "पुरन्धिर्बहुधीः…" [निरु० ६।१३] ।

मेरे प्यारे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू सर्वभाव से धारित—निदिध्यासन में लाया उपासना द्वारा ध्याया तथा साक्षात् किया हुआ मेरे स्वरूपप्राप्ति—मुक्ति को अवश्य प्राप्त करा—कराता है, मुझ उपासक आत्मा को महान् अपने हर्षप्रद स्वरूप में या हर्षनिमित्त बन प्राप्त हो—होता है मेरी स्तुतिवाणी को सफल कर—करता है मुझे बहुत बुद्धिमान् कुशल बुद्धिमान् बना—बनाता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुत प्रगतिशील ज्ञानी)

देवता—इन्द्रः—ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—बृहती ।

न तस्य प्रतिमा अस्ति

१र २र ३२ ३१ २र ३२

२६२ यद् द्याव इन्द्र ते शतꣳ शतं भूमीरुत स्युः ।

२६२ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रꣳ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २२४)

१ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १२
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिन् चित्राभिरूतिभिः॥२॥

(शविष्ठ वृषन्) हे अत्यन्त बलवान्—सुखवर्षक परमात्मन् ! तू (शवसा) अपने बल से (विश्वा महिना वृष्ण्या) सारे प्रशंसनीय सुख वर्षाने में योग्य तत्त्वों वस्तुओं को (आपप्राथ) पूरे हुए हैं (वज्रिन् मघवन्) हे ओजस्वी ऐश्वर्यवान् परमात्मन् "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (गोमति व्रजे) स्तुतिवाणियों वाले मन्त्रसमूह में "छन्दांसि वै व्रजः" [मै० ४।१।१०] (चित्राभिः-ऊतिभिः) चायनीय—प्रशंसनीय रक्षाओं द्वारा "चित्रं चायनीयं मंहनीयम्" [निरु० १२।७] (अस्मान्-अव) हमें सुरक्षित कर—हमारी रक्षा कर ।

हे अत्यन्त बलवान् सुखवर्षक परमात्मन् ! तू अपने बल से सारे सुख वर्षा करने योग्य तत्त्वों वस्तुओं को पूरे हुए—व्यापे हुए है वे सुखवर्षाने योग्य तत्त्व तेरे से प्रेरित हुए ही सुख वर्षाते हैं, हे ओजस्वी ऐश्वर्यवन् परमात्मन् स्तुतिवाणियों वाले मन्त्रसमूह में—उसके धारण में, आचरण में अपनी प्रशंसनीय रक्षाओं के द्वारा हमारी हम उपासकों की रक्षा कर—करता है ॥ २ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परिस्तोतार आसते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २०९)

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
कदा सुतं तृषाण ओक आगम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥

(वसो-इन्द्र) हे सर्वत्र वसे हुए ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ए के-उक्थिनः-नरः) विरले भाग्यशाली स्तुतिवाणी वाले "वाग्-उक्थम्" [ष० १।५] मुमुक्षु जन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] (सुते) उपासना रस सम्पन्न हो जाने पर (त्वा निः स्वरन्ति) तुझे सम्यक् गाते हैं तेरा सम्यक् भजन गान गाते हैं कि (ओकः-तृषाणः) कब, जलाशय की ओर प्यासे हरिण की भांति 'लुप्तोपमानोपमावाचकालङ्कारः' (कदासुतम्-आगमः) कब—कभी तो सम्पन्न उपासनारस की ओर आता है (स्वब्दी-इव वंसगः) सु-निश्चित अब्दी—अब्द—संवत्सर—समय वाले "संवत्सरो वा अब्दः" [तै० स० ५।६।४।१] वननीय स्थान को प्राप्त होने वाले अतिथि की भांति ।

हे सर्वत्र बसने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! विरले भाग्यशाली स्तुतिकर्ता मुमुक्षु जन उपासनारस सम्पन्न हो जाने पर तेरा भली भांति गान करते हैं और प्रतीक्षा करते है जलाशय पर जलपान करने के लिए प्यासे हरिण की भांति तू उपास्य कब आता है—कभी तो आयेगा ही जैसे वर्ष या अपने विशेष समय पर विशिष्ट पूजनीय अतिथि वननीय स्थान पर आता ही है ॥ २॥

१ २ ३ २ ३१२ २२ ३ १ ०२
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
३ १ ३१२ २२
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥

(धृष्णो विचर्षणे मघवन्) हे दोषनिवारक विशेषद्रष्टा ऐश्वर्य-वन् परमात्मन् ! तू (कण्वेभिः) मेधावी उपासकों को लक्ष्य कर "कण्वो मेधावी" [निघ० ३।१५] (सहस्रिणं वाजं धृषत्-आदर्षि) सहस्रों में गिना जाने वाला सहस्रों के तुल्य बढ़े चढ़े दबाने वाले सताने वाले विरोधिबल वासनाबल को चकनाचूर छिन्न भिन्न कर दे, पुनः (पिशङ्गरूपं गोमन्तं मक्षु-ईमहे) स्तुति वाणियों वाले—स्तुतियों के फलभूत तेरे सुनहरे रूप ज्ञानानन्दरूप को शीघ्र चाहते हैं "मक्षु क्षिप्र नाम" [निघ० २।१५] "ईमहे याञ्चाकर्मा" [निघ० ३।१९] ।

दोषनिवारक अन्तर्द्रष्टा ऐश्वर्यवान् परमात्मा मेधावी उपासकों के अन्दर से सहस्रों में बढ़े चढ़े विरोधी कामवासनाबल को छिन्न भिन्न कर देता है और स्तुतियों के फलभूत अपने सुनहरे ज्ञाना-नन्दरूप को प्रदान करता है जिसकी उपासक शीघ्र शीघ्र प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता छन्दसी—पूर्ववत् ।

३२ ३१ २ ३ २ ३ १२ ३ २
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
आ व इन्द्रं पुरुहूते नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू. पू० १९०)

१ २३१२ ३१२ ३१र २र ३१२
न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तꣳ रयिर्नशत् ।
३२ ३१२३ २३१२ १र २र ३२
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्यें दिवि ॥२॥

(द्रविणोदेषु) भौतिक या आध्यात्मिक धनदाताओं में (दुष्टुतिः-न शस्यते) बुरी स्तुति—विपरीत स्तुति—मन में कुछ आचरण में कुछ ऐसी अपवित्र मिथ्या स्तुति प्रशस्त नहीं या विहित नहीं और (स्रेधन्तं रयिः-न नशत्) हिंसा करने वाले—फिर उपकार को न मानने वाले कृतघ्न को धनादि व्याप्त भी नहीं होता—सफल नहीं होता "नशत्-व्याप्तिकर्मा" [निघ०२।२८] (मघवन् तुभ्यं सुशक्तिः-इत्) ऐश्वर्यवन् तेरे लिए तो सुगमता ही है (मावते देष्णाम्) मेरे जैसे उपासक के लिए जो देने योग्य आध्यात्मिक धन तू देना चाहे (यत् पार्ये दिवि) जो धन पार—द्युलोक—मोक्षधाम का धन है।

धनदाताओं के निमित्त बुरी स्तुति अपवित्र स्तुति प्रशस्त नहीं—पसन्द नहीं या विहित नहीं और कृतघ्न को धन व्याप्त नहीं होता है—नहीं फलता है ऐश्वर्यवन् ! परमात्मन् ! तेरे लिए तो सुगमता है मेरे जैसे उपासक के लिए अभीष्ट धन देना चाहे तो वह अध्यात्मधन अत्यन्त दूर मोक्षधाम में भी देता है।

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (तीन को लेकर उपासना करने वाला ब्रह्मप्राप्ति में योग्य उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥१॥ ऋ० ९-३३-४

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८९)

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीरृतस्य मातरः।
मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥२॥ ऋ० ९.३३.५.

(यह्वीः) महत्त्वपूर्ण (ब्राह्मीः) ब्रह्म—वेद सम्बन्धी (ऋतस्य मातरः) सत्य का स्वरूप प्रकट कराने वाली (दिवः शिशुं मर्जयन्तीः) अमृतधाम में शयन करने वाले परमात्मा को प्राप्त करने के हेतु "मर्जयन्त गमयन्तः" [निरु० १२।४३] (अभि-अनूषत) अभिमुखता स्तुति करती है।

वेद में कही सत्य का स्वरूप दर्शाने वाली महत्त्वपूर्ण वाणियां अमृतधाम में वर्तमान परमात्मा के प्राप्त कराने हेतु उसकी पूर्ण स्तुति करती हैं, उनका सेवन करना चाहिये॥ २॥

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यꣳ सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥३॥ ९.३३-६

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिए (विश्वतः) सब प्रकार से—सर्वतोभाव से (सहस्रिणः) सहस्रों के समान—अत्यन्त महामूल्य (रायः)

धनरूप (चतुरः समुद्रान्) चारों वाणियों—तेरे रचे वेदवचनों—स्तुति प्रार्थना उपासना और जपों को "वाग् वै समुद्रः" [ऐ० ५.५६] (आपवस्व) चरितार्थ कर।

शान्तस्वरूप परमात्मन्! कृपा कर हम उपासकों के अन्दर सर्वभाव से तेरे उपदिष्ट सर्वमहान् धनरूप चार वाणियां स्तुति प्रार्थना उपासना और जप चरितार्थ कर इनके सेवन में निरत होकर तेरे दर्शन समागम पाने में सफल होवें ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—ययातिः (परमात्मप्राप्ति के लिए जीवनयात्रा करने वाला)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—अनुष्टुप्।

३ २ ३ १ २   ३   २ ३ १ २   ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पू० ४४८)

२ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
३ १र २र   ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥२॥

(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (इन्द्राय पवते) उपासक आत्मा के लिए आनन्दधारा रूप में प्राप्त होता है (इति देवासः-अब्रुवन्) ऐसा विद्वान् कहते हैं (वाचस्पतिः) ब्रह्मात्मा परमात्मा "ब्रह्म वै वाचस्पतिः" [काठ० २७।१] (विश्वस्य) संसार का

(ओजसः-ईशानः) बलवान् 'अकारो मत्वर्थीयः' अधिकारकर्ता स्वामी (मखस्यते) जब कि अध्यात्मयज्ञरूप में सेवित होता है।

आनन्दरसभरा परमात्मा ब्रह्मात्मा, जगत् का बलवान् वशकर्ता स्वामी, जब अध्यात्मयज्ञरूप में सेवित होता है तो, उपासक आत्मा के लिए आनन्दरसधारा रूप में प्राप्त होता है, ऐसा ऋषिजन कहते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
सोमस्पती रयीणाᳬं सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥३॥

(वाचमीङ्खयः) स्तुतिवाणियों को प्राप्त होने वाला—स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाला 'वाचमीङ्खति-इति खश्प्रत्ययान्तः' (सहस्रधारः समुद्रः) बहुत आनन्दधाराओं वाला उभरने वाला आनन्दसागर परमात्मा (रयीणां पतिः) विविध ऐश्वर्यों का स्वामी (इन्द्रस्य सखा) उपासक आत्मा का साथी मित्र (दिवे दिवे पवते) दिनों दिन बढ़ बढ़ कर उपासक आत्मा के अन्दर प्राप्त होता है।

स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाला बहुत आनन्दधाराओं में प्राप्त होने वाला आनन्दसागर परमात्मा विविध ऐश्वर्यों का स्वामी उपासक आत्मा का साथी मित्र दिनों दिन बढ़ बढ़ कर उसके अन्दर प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—पवित्रः (शुद्ध अन्तःकरण वाला निष्पाप उपासक)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
१ १ ३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रृतास इद्वहन्तः सन्तदाशत ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४६५)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २र
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधिरोहन्ति तेजसा ॥२॥

(तपोः-पवित्रं विततम्) काम आदि को या दुष्टों को तपाने वाले परमात्मा का पवित्र तथा उपासक को पवित्र करने वाला स्वरूप संसार में फैला हुआ है (अस्य तन्तवः) इसका अपने अन्दर विस्तार करने वाले (अर्चन्तः) इसकी अर्चना स्तुति करते हुए (दिवस्पदे) अमृतधाम मोक्षपद में "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (व्यस्थिरन्) विशेष रूप से स्थिर हो जाते हैं—विराजमान हो जाते हैं (अस्य-आशवः) इसके अन्दर उपासना द्वारा समन्तरूप से शयन करने वाले उपासक (पवितारम्-अवन्ति) उस पवित्रकर्ता परमात्मा का आलिङ्गन करते हैं "अव रक्षण""आलिङ्गन""" [भ्वादि०] पुन' (तेजसा दिवः पृष्ठम्-अधिरोहन्ति) अध्यात्मतेज से अमृतधाम मोक्ष के प्राप्तव्य पद पर अधिष्ठित हो जाते हैं।

काम आदि दोषों और दुष्टों का तापक, उपासकों के पवित्र-कारक परमात्मा का स्वरूप संसार में फैल रहा है, इसका अपने अन्दर विस्तार करने वाले मननशील उपासकजन इसकी अर्चना स्तुति करते हुए अमृतधाम मोक्षपद में विशेषरूप से विराजमान हो जाते हैं तथा इसके अन्दर उपासना द्वारा समन्त रूप से शयन करने वाले उपासक पवित्रकर्ता परमात्मा का आलिङ्गन

करते हैं पुनः अध्यात्मतेज से अमृतधाम मोक्ष के प्राप्तव्य पद पर अधिष्ठित हो जाते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३.२ ३ १ २
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४९०)

षष्ठ खण्ड

प्रथम द्वयृच

ऋषिः—सौभरिः (अपने अन्दर परमात्मा को धारण करने में कुशल)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—बृहती ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र मंहिष्ठाय गायत ऋतान्वे बृहते शुक्रशोचिषे ।
३ १ २ ३ १ २
उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ९४)

१ २ ३ १ २ ३र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥२॥

(मघवा द्युम्नी आहुतः समिद्धः) विविध धनवान् यशस्वी—

यश देने वाला स्वात्मा में उपासना द्वारा समन्तरूप से गृहीत तथा प्रकाशित हुआ परमात्मा (वीरवत्-यशः-आवंसते) आत्मबल-युक्त यश समन्तरूप से देता है (अस्य सुमतिः) इसकी कल्याण-कारी मतिमान्यता (नः) हमारे लिए (कुवित्) बहुत ही "कुवित् बहुनाम" [निघ० ३।१] (भवीयसी) बढ़ी चढ़ी है (अस्य वा-जेभिः-अच्छा-आगमत्) इसके जो अमृत अन्नभोग हैं उनके द्वारा वह "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २-१९३] भली भांति आवे—प्राप्त हो।

विविध धन वाला अपने अन्दर धारण किया हुआ और उपासना द्वारा प्रकाशित किया हुआ यशस्वी परमात्मा आत्मबल-युक्त यश को समन्तरूप से प्रदान करता है, इसकी कल्याणकारी मति—मान्यता भी हमारे लिए बहुत ही बढ़ी चढ़ी प्राप्त होती है यह अपने अमृतभोगों के साथ प्राप्त होवे॥ २॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ (इन्द्रियों के विषय में अच्छी उक्ति समर्पण करने वाला और प्राण के सम्बन्ध में अच्छी उक्ति प्राणायाम करने वाला जन)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—उष्णिक्।

२ ३ १ २   ३ १ २   ३ १   २ ३ १
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्।
३   १ २   ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥१॥

(देखो अथर्वव्याख्या पृ० पृ० ३१८)

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन ज्योतीᳫंष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
३ २ ३ २ ३ ३ १ २
मन्दानो अस्य बर्हिषो विराजसि ॥२॥

(येन च) 'च-इति वाक्यसमुच्चयार्थः' हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! और तू जिस हर्षप्रद स्वरूप से (मनवे-आयवे) मननशील मनुष्य के लिए "आयवः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३] (ज्योतींषि विवेदिथ) ज्ञानज्योतियों को जनाता है (मन्दानः) स्तुत किया जाता हुआ (अस्य बर्हिषः-विराजसि) इस उपासक के हृदयाकाश में विराजमान होता है।

परमात्मन् ! तू अपने जिस हर्षप्रदस्वरूप से मननशील जन को ज्ञानज्योतियां जनाता है और जिस हर्षप्रद स्वरूप के कारण स्तुतिपात्र बना हुआ इस मननशील उपासक के हृदयावकाश में स्थान पाता है, वह हर्षप्रद स्वरूप प्रशंसनीय है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषपत्नीरपो जया दिवे दिवे ॥३॥

(अद्य चित्) आज भी (पूर्वथा) पूर्व की भांति पूर्वकाल से परम्परागत (ते-उक्थिनः-अनुष्टुवन्ति) तेरे स्तोता निरन्तर स्तुति करते हैं, अतः तू हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (दिवे दिवे) दिनो दिन—प्रतिदिन (वृषपत्नीः) मन है पति—पालक जिनका उन "वृषाः हि मनः" [श० १।४।४।१] (अपः) कामनाओं को—पर "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०।५।४।१५] "मनसि वै सर्वे कामाः श्रिताः" [ऐ० आ० १।३।२] (जय) विजय प्राप्त करा।

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! पूर्वकाल की भांति परम्परागत आज

भी तेरे स्तुतिकर्ता उपासकजन तेरी निरन्तर प्रतिदिन स्तुति करते चले आ रहे हैं, तू उपासकों के मन में रहने वाली कामनाओं को जीत—उन्हें असत् से सत् की ओर ले चल ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—तिरश्ची (अन्तर्मुखी† उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २८६)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते) तेरे लिए (यः) जो उपासक (नवीयसीं मन्द्रां गिरम्-अजीजनत्) अपूर्व पवित्र नम्र हर्षकरी स्तुतिवाणी को प्रस्तुत करता है (चिकित्विन्मनसम्) ज्ञानप्रेरक मन से युक्त (प्रत्नाम्) शाश्वतिक—निर्मल (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्य से पूर्ण—सत्यप्रसारिका (धियम्) बुद्धि को उसके लिए तू (अजीजनः) उत्पन्न करता है ।

परमात्मा के लिए जो उपासक अपूर्व पवित्र नम्र हर्षकारी

† 'तिरोऽन्तर्दधाति" [निरु० १२।३२]

स्तुति प्रस्तुत करता है उस उपासक के लिए परमात्मा ज्ञानप्रेरक मन से युक्त शाश्वतिक सत्यपूर्ण बुद्धि को प्रदान करता है ॥२॥

१ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थ्यानि वावृधुः ।
३ १ ३ २ ३ १ २
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

(तमू-उ स्तवाम) हम उपासक उस इष्टदेव की स्तुति करते हैं (यम्-इन्द्रं गिरः-उक्थ्यानि वावृधुः) जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को स्तुतिपरक वाणियां वक्तव्यप्रशस्त मन्त्रवचन बढ़ चढ़ कर गुणव्याख्यान करते हैं (अस्य) इसके (पुरूणि पौंस्या) बहु प्रकार के पौरुष—सृष्टिरचन धारण कर्मफलप्रदान, मोक्षप्रदान, उपकार आदि को (सिषासन्तः) सम्यक् पालते धारण करते मानते हुए (वनामहे) भजें।

हम उस इष्टदेव ऐश्वर्यवान् परमात्म की स्तुति करते हैं जिसे स्तुतिवाणियां और प्रशस्त वेदवचन बढ़ चढ़ कर कथन करते हैं इसके बहुत पौरुष कर्मों—सृष्टिरचन धारण जीवों के कर्मफल-प्रदान मुमुक्षुओं का मोक्षप्रदान उपकारकार्यों को धारण पालन करते हुए भजें ॥ ३ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

विज्ञप्ति—पंचम अध्याय से प्रमाणभाग नीचे टिप्पणी में दिये गये हैं, बीच में देने से किन्हीं की दृष्टि में वाक्यार्थ समझने में कठिनाई होती है, मन्त्रार्थ में ही भावार्थ है पृथक् नहीं ।

अथ पञ्चम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—ऋषिगणाः 'सायणमते' (ऋषियों—प्राणों इन्द्रियों† को संख्यात ज्ञात रखने वाले संयमी उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरी-
१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मणि । प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषि-
३ १ २
षाण वेधसः ॥१॥

(ऋषिषाण पवमान) हे ऋषियों के सम्भजनयोग्य आनन्द-धारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! (ते) तेरी (आश्विनीः) श्रोत्रों कानों से सम्बद्ध एवं व्यापन धर्म वाली‡ (दिव्याः) अमानुषी—दिव्यविषयक (धेनवः) स्तुतिवाणियां* (धरीमणि) धरा—धरती पर (पयसा प्रासृग्रन्) अपने आनन्दरस प्राप्ति के

---

† "प्राणा उ वा ऋषयः" [श० ८।४।१।५]

‡ "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० १२।९।१।१३]

* "धेनुः-वाङ् नाम" [निघ० १।११]

हेतु* तूने छोड़ी—रची—प्रचारित करी हैं (अन्तरिक्षात्) हृदयावकाश में† (स्थाविरीः) स्थिर होने वाली (ते) तेरी उन वाणियों को (प्रासृक्षत) प्रकृष्ट रूप से विठा लेते हैं (ये वेधसः-त्वा मृजन्ति) जो आदिसृष्टि के मेधावी विधाता ऋषि तुझे प्राप्त होते हैं—साक्षात् करते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परियन्ति केतवः।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति॥२

(ध्रुवस्य सतः पवमानस्य) एकरस वर्तमान आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा के (रश्मयः केतवः) व्यापनशील प्रज्ञान—गुण‡ (उभयतः परियन्ति) जड़ जङ्गम संसार में परिप्राप्त हो रहे हैं (यदि 'यत्-इ') जब ही (हरिः पवित्रे-अधि मृज्यते) दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा प्राप्तिस्थान पवित्र उपासक के अन्दर प्राप्त किया जाता है—साक्षात् किया जाता है (सत्ता योनौ कलशेषु नि-सीदति) बैठने वाला यह मिलन के स्थान, हृदय में, और उसके समस्त कलास्थानों मन इन्द्रियों में* बस जाता है—उसका हृदय में ध्यान, मन में मनन, कानों में श्रवण, वाणी में स्तवन आदि होता रहता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परियन्ति

* "रसो वै पयः" [श० ४।४।४।८]

† विभक्तिव्यत्ययः।

‡ "केतुः प्रज्ञानम्" [निघ० ३।९]

* "कलशः कस्मात् कला अस्मिञ्छेरते" [निरु० ११।१२]

३ १२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १२
केतवः। व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥३॥

(सोम) शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (विश्वचक्षः) सर्वद्रष्टा है (ते प्रभोः सतः) तुझ प्रभु होते हुए के (ऋभ्वसः केतवः) बहुत—असंख्यात† प्रज्ञापक गुण (विश्वा धामानि परियन्ति) सारे लोक लोकान्तरों पर परिप्राप्त हो रहे हैं (व्यानशी पवसे) विशेष व्यापने वाला‡ सर्वत्र प्राप्त है (धर्मणा) स्वरूप से (विश्वस्य भुवनस्य पतिः-राजसि) समस्त संसार का स्वामी रूप में राजमान प्रकाशमान हो रहा है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं,मोक्षधाम को चाहने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
१ २ ३२ ३२
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१॥

(देखो अथव्याख्या पू० पृ० ३९८)

---

† "ऋस्वमुरुभूतम्" [निरु० ११।२१]

‡ "आनशे व्याप्तिकर्मा" [निघ० २।१८]

१२ ३ २३ २३१ ३२
पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः ।
२उ ३२र
वि वारमव्यमर्षति ॥२॥

(पवमान राजन्) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले प्रकाश-मान परमात्मन् ! (तव-अदुच्छुनः-मदः-रसः) तेरा विघ्नक्षय पापरहित† हर्षकर रस या रसीला हर्ष (अव्यं वारं वि-अर्षति) पार्थिव शरीर‡ आवरक को लांघ कर अन्तरात्मा को प्राप्त होता है सांसारिकरस विघ्न से, क्षय से, पाप से रहित नहीं परमात्मन् तेरा रस विघ्न—बाधा से क्षय से पाप से रहित तथा आनन्दप्रद है उसे तू उपासक को प्रदान कर—करता है ॥ २ ॥

१२ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ २
पवमानस्य ते रसो दक्षो विराजति द्युमान् ।
२ ३ २ ३क १र ३ २
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥३॥

(पवमानस्य ते) तुझ धारारूप में प्राप्त होते हुए परमात्मा का (रसः-दक्षः-द्युमान्) रस प्रबल—महान् एवं दीप्तिमान् ज्योति वाला (विराजति) विशेष प्रकाशित हो रहा है उपासक के अन्दर (ज्योतिः-विश्वं स्वः-दृशे) जो ज्योति समस्त सुखों के सर्वोपरि सुख को दिखाने को है ॥ ३ ॥

तृतीय षड्च

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

† "यो वा अभिचरति योऽभिदासति यः पापं कामयते स वै दुच्छुनः" [जै० १।९३]

‡ "इयं पृथिवी वाऽविः" [श० ३।१।२।३३]

देवता—छन्दसी पूर्ववत् ।

२उ ३ १२ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र यद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
१ २ ३ २र ३ १ २
अन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४०२)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
सुवितस्य वनामहेऽतिसेतुं दुराव्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
साह्याम दस्युमव्रतम् ॥२॥

(सुवितस्य)† 'सु-इत' सम्यक् सुलभ प्राप्त शान्त परमात्मा के (दुराव्यम्-अतिसेतुं वनामहे) कठिनाई से प्राप्त होने योग्य बन्धनरहित करने वाले आनन्दरूप को सेवन करें अतः (अव्रतं दस्युं साह्याम) व्रतहीन करने वाले—शिवसङ्कल्प से गिराने वाले आत्मबल के क्षीण करने वाले अज्ञान वासना पाप को तिरस्कृत करें—भगावें । शिवसङ्कल्प से गिराने वाले आत्मबल के क्षीण करने वाले अज्ञान वासना पाप को हटाने से परमात्मा का आनन्दमय स्वरूप बन्धनरहित करने वाला प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ ३ ३ १र २र ३ १ २
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

(शुष्मिणः पवमानस्य) बलवान्‡ धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मा का (स्वनः) अमृतवचन (वृष्टेः-इव शृण्वे)

† "सुविते सु इते" [निरु० ४।१०

‡ "शुष्मं बलनाम" (निघ० २।९]

धारारूप में प्राप्त हो रही वृष्टि का जैसे सुनता हूं (दिवि विद्युतः-चरन्ति) तथा जैसे† आकाश में विद्युतें चल रही—चमक रही होती हैं ऐसे परमात्मा की आनन्दधारायें भी चल रहीं चमक रही होती हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
१ २ ३ १ २
अश्ववत् सोम वीरवत् ॥४॥

(इन्दो सोम) हे आनन्दरसपूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (महीम्-इषम्) मेरी महती एषणा—इच्छा को‡ जो न पुत्रैषणा न लोकैषणा न वित्तैषणा किन्तु तेरी स्वरूपप्राप्ति की एषणा है उसको (आपवस्व) समन्तरूप से पूरा कर—भली भांति पूरा कर (गोमत्) यहीं गौओं वाली (अश्ववत्) घोड़ों वाली (वीर-वत्) पुत्रों वाली (हिरण्यवत्) स्वर्ण सम्पत्ति वाली एषणा—इच्छा है इसके पूरे होने से सभी लौकिक एषणायें पूरी हुई होती हैं उपासक की दृष्टि में* ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र
पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

(विश्वचर्षणे) विश्वद्रष्टा परमात्मन् ! तू (पवस्व) मुझ

† लुप्तोपमावाचकालङ्कारः

‡ "इषु इच्छायाम्" [तुदादि०] क्विपि

* यस्यां प्राप्तौ सर्वा प्राप्तिः सा गरीयसी । "यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञात भवति' [मुण्ड० १।३] तद्वत् ।

उपासक के अन्दर आ—प्राप्त हो (मही रोदसी आपृण) मेरे महत्त्वपूर्ण दोनों किनारों—इहलोक जीवन और परलोक जीवन अर्थात् भोगपार्श्व और अपवर्गपार्श्व को अपने आनन्दरस धाराओं से आपूर करदे † (उषाः सूर्यः-न रश्मिभिः) सूर्य जैसे प्रकाशधाराओं से उषावेलाओं को भर देता है ॥ ५ ॥

१ २ ३२ ३ १२ ३ १ २
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥ ऋ०-९.४१.६

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (नः) हमारी ओर (शर्मयन्त्या धारया) सुखकरी धारा से (विश्वतः) सर्व प्रकार (परि सर) परिप्राप्त हो—वहता सा प्राप्त हो (रसा इव विष्टपम्) नदी‡ जैसे अपने प्रवेशस्थान निम्नभूस्थल समुद्र की ओर बहती चली जाती है ॥ ६ ॥

—:०:—

द्वितीय खण्ड

प्रथम षडृच

ऋषिः—बृहन्मतिः (बड़ी मान्यता बड़ी स्तुति वाला ऊंचा आस्तिक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

---

† "रोदसी रोधसी विरोधनात् रोधः कूलं निरुणद्धि स्रोतः" [निरु० ६।१]

‡ "रसा नदी" [निरु० ११।२५]

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
१ २ ३ २ ३ ३ १ २
यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥१॥

(बृहन्मते) हे बड़ी मान्यता वाले—सर्वाधिक मानने योग्य शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (आशुः) व्यापनशील हुआ (प्रियेण धाम्ना) तेरा प्रिय धाम है इस हेतु (परि-अर्ष) परिप्राप्त हो (यत्र देवाः) जहां देव—दिव्य धर्म वाले हैं वह स्थान हृदय है, हृदय में पांचों ज्ञानेन्द्रियों का विषयगति मन बुद्धि चित्त अहङ्कार की स्थिति सत्त्व रज तमोगुण आत्मा भी है और तेरी प्राप्ति भी वहां हुआ करती है† (इति ब्रुवन्) ऐसा ब्रह्मवेत्ता परम्परा से कहते हैं‡ मानते हैं ॥ १ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ ३ १ २
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
३ २ ३ १र २र
वृष्टिं दिवः परिस्रव ॥२॥

(अनिष्कृतं परिष्कृण्वन्) असंस्कृत* हृदय को अपने आग-

† "पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् । तस्मिन् यद् यक्षमात-न्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥" [अथर्व० १०।८।४३]

‡ 'ब्रुवन्—अब्रुवन्—ब्रुवन्ति' अडभावश्छान्दसः "बहुलं छन्दस्य-माङ्योगेऽपि" [अष्टा० ६।४।७५] ईश्वरावतारवादस्य गन्धोऽपि नात्र यश्च भगवदाचार्येण कल्पितः, सायणभाष्यासम्मतश्च ।

* "यद्वै निष्कृतं तत्संस्कृतम्" [ऐ० आ० १।१।४]

मन से सुशोभित करता हुआ तू परमात्मन् ! (जनाय-इषः-यातयन्) उपासकजन के लिये तेरे दर्शन ज्ञान आनन्दरूप इच्छाओं को प्राप्त कराने के हेतु † (दिवः-वृष्टिं परिस्रव) अपने अमृतधाम से‡ रस—अमृतरस को* परिस्रवित कर—धारारूप में टपका दे॥ २॥

अयꣳ स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥३॥

(अयं सः-यः) यह वह जो परमात्मा (रघुयामा) मीठी गति वाला* (दिवः परि) अमृतधाम—मोक्षधाम का अध्यक्ष है॥ (पवित्रे-आ) पवित्र आत्मा उपासक के अन्दर आक्षरित होता है—आ जाता है (सिन्धोः-ऊर्मा) स्यन्दमान महान् जलाशय की तरङ्ग∷ जैसे° विविध रूप से क्षरित हो जाती है॥ ३॥

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥४॥

---

† "यातयति आयातयति" [निरु० १०।२२]

‡ "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]

* "रसो वृष्टिः" [मै० २।५।७]

* "रघ आस्वादने" [चुरादि०[

॥ "पञ्चम्याः परावध्यर्थे" (अष्टा० ८।३।५१]

∷ आकारादेशश्छान्दसः

° लुप्तोपमावाचकालङ्कारः

(सुतः) अभ्यास द्वारा निष्पादित (त्विषिं दधानः) ज्योति को प्राप्त कराने के हेतु (विचक्षणः) विशेष ज्ञानदाता (विरोचयन्) चमकता हुआ (पवित्रे) हृदय में (ओजसा-आ-एति) शीघ्रता से प्राप्त होता है—साक्षात् होता है ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आविवासन् परावतो अथो अर्वावत सुतः ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५॥

(सुतः) साक्षात् किया हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिए (परावतः-अथ-उ-अर्वावतः) सम्प्रज्ञात समाधिजन्य दिव्य अतीन्द्रिय विषयों को और इन्द्रियजन्य विषयों को (आविवासन्) समन्तरूप में स्वरूप से विवासित करता हुआ उनका (मधु सिच्यते) सार—उत्तम आनन्द सींचता है† उनके सच्चे सुख का कारण परमात्मा ही है ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६॥

(समीचीनाः-हरिम्-इन्दुम्-अनूषत) हे सम्यक् गुणाचारसम्पन्न उपासक जनो तुम दुःखापहर्ता सुखाहर्ता आनन्दरसपूर्ण परमात्मा की स्तुति करो (इन्द्राय पीतये) स्वान्तरात्मा‡ के पान—आधान के लिए (अद्रिभिः-हिन्वन्ति) जिसे श्लोककर्त्ता—

† कर्तरि कर्मप्रत्ययः
‡ "षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि" [अष्टा० २।३।६२ वा.]
° "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५] "श्लोको वाङ्नाम" [निघ० १।११]

स्तुतिकर्ता मन्त्रपाठक ऋषियों के द्वारा† आप्तकरते हैं—श्रवण करते हैं° ॥ ६ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—जमदग्निर्भृगुर्वा (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला या तेजस्वी उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

८०४ हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥ ऋ० ९.६५.१

(उस्रयः) परमात्मा में वसने वाली—उस तक पहुँचने वाली (स्वसारः) स्वसरणशील—स्वाधारगतिशील (जामयः) एक दूसरे से बढ़ बढ़ कर प्रवृत्त होने वाली ‡ (महीयुवः) वाणी के साथ गमन करनेवाली स्तुतियां※ (महां सूरं पतिम्-इन्दुम्) महान् प्रेरक पालक आनन्दरसपूर्ण परमात्मा को (हिन्वन्ति) प्रसन्न करती हैं° उपासक की स्तुतियां ही परमात्मा तक जा कर प्रसन्न करती हैं ॥ १ ॥

८०५ पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः ।
विश्वा वसून्याविश ॥२॥ ऋ० ९.६५.२ वसून्याविश

† "हिन्वन्ति आप्नुवन्ति" [निरु० १।२०]

‡ "जाम्यतिरेकनाम" [निरु० ४।२०]

※ "मही वाङ्नाम" [निघ० १।११]

° "हिवि प्रीणनार्थः" [स्वादि०]

(पवमान देव) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मदेव! तू (देवेभ्यः) देवों मुमुक्षु जनों के अन्दर† (सुतः) साक्षात् हुआ (रुचा रुचा) अपनी प्रत्येक दीप्त धारा या प्रत्येक रुचिर धारा से या अमृत धारा से‡ (विश्वा वसूनि-आविश) मुझ उपासक के समस्त वासस्थानों के हृदय मन इन्द्रियों को आविष्ट हो जा, इन में तेरा आधान, ध्यान चर्चा, भान हो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
३ १ २ ३ १ २
इषे पवस्व संयतम् ॥३॥

(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू (देवेभ्यः) मुमुक्षु उपासकों के लिए (सुष्टुतिं वृष्टिम्-आदुवः) उत्तम स्तुति वाली जिसके लिए श्रद्धा पवित्रभाव से स्तुति की उस सुखवृष्टि को आराधित कर॥ सिद्ध कर (इषे संयतं पवस्व) तेरे दर्शन समागम की इच्छा के निमित्त स्वयं को सम्यक् नियत स्थिर कर ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुतम्भरः 'सायणमते शतम्भरः' (साक्षात् किए परमात्मा को धारण करने वाला, या, शत प्रकार—बहु प्रकार से परमात्मा का विवेचन कर धारण करने वाला)

---

† विभक्तिव्यत्ययः

‡ "अमृतं वै रुक्" [श० ७।४।२।२१]

॥ "दुवस्यति राध्नोतिकर्मा" [निरु० १०।२०] यको लुक् छान्दसः

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद् विभाति भरतेभ्यः शुचिः॥१

(भरतेभ्यः-नव्यसे सुविताय) परमात्मा को अन्तरात्मा में धारण करने वालों के लिए, अत्यन्त नवीन अपूर्व कल्याणार्थ (जनस्य गोपाः) जायमान—उत्पन्न स्थावर जङ्गम संसार का गोपायिता रक्षक धारक (जागृविः) जागरूक सदा सावधान (सुदक्षः) प्रशंसनीय बल वाला—यथावत् बल प्रयोक्ता, संसार-चालन, दुष्टताड़न करने योग्य बल रखने वाला (घृतप्रतीकः) तेजो† से प्रीती जिसकी है ऐसा तेजस्वी तेजःस्वरूप (शुचिः) अत्यन्त निर्मल (अग्निः) उपासक का अग्रणेता परमात्मा (अजनिष्ट) प्रकट होता है, जो (दिविस्पृशा महता द्युमत्-विभाति) मोक्ष—अमृत धाम को स्पर्श करने वाले महान् दीप्तिमान्‡ धर्म से विशेष भासमान हो रहा है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १र २र
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वने वने ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः॥२॥

(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन् ! (त्वाम्) तुझे (अङ्गिरसः) तेरे सम्बन्ध में पढ़ने पढ़ाने वाले तेरा अध्यात्मयज्ञ कराने

† 'तजो वै घृतम्" [मै० १।६।८]
‡ द्युमत्-द्युमता "सुपां सुलुक्'...." [अष्टा० ७।१।३६]

वाले विद्वान् ऋषिजन † (गुहाहितम्-अन्वविन्दन्) हृदय में अनुभव कर लेते हैं (वने वने शिश्रियाणम्) सम्भजन सम्भजन—स्तुति प्रार्थना उपासना में‡ आश्रयणीय देव को (सः-मथ्यमानः-जायसे) वह तू अभ्यास वैराग्य द्वारा मन्थन से हृदय में प्रकाशित होता है (सहः-महत्-अङ्गिरः) हे वलरूप महत्त्वरूप अग्नि परमात्मन् ! (त्वां सहसः पुत्रम्-आहुः) तुझे महान् योगबल का पुत्र—योगवल से प्राप्त होने वाला कहते हैं ॥ २ ॥

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।
इन्द्रेण देवैः सरथꣳ स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः॥३

(नरः) मुमुक्षु उपासक जन❀ (यज्ञस्य केतुम्) अध्यात्मयज्ञ के प्रज्ञापक—साधनाधार (प्रथमं पुरोहितम्-अग्निम्) प्रमुख पुरोहितरूप—प्रथम से धारण करने वाले ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (त्रिषधस्थे समिन्धते) तीन सहयोग—समागम-स्थान—विषयप्रसङ्ग स्तुति प्रार्थना उपासना में सम्यक् प्रदीप्त करते हैं (इन्द्रेण देवैः) आत्मा और इन्द्रियों के साथ, आत्मा द्वारा समर्पण मन से मनन इन्द्रियों से श्रवण स्तवन आदि करके (यजथाय) अध्यात्मयज्ञ करने के लिए (सुक्रतुः-होता सः) यथार्थ यजन क्रिया करने वाला ऋत्विक् बना वह परमात्मा (सरथं बर्हिषि निषीदत्) समान रमणस्थान° हृदयावकाश* में बैठ जाता है ॥ ३ ॥

† 'तान् हादित्यानङ्गिरसो याजयाञ्चक्रुः" [गो० २।६।१४]

‡ 'वन सम्भक्तौ" [भ्वादि०]

❀ "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

° सप्तमीस्थाने द्वितीया व्यत्ययेन ।

* 'बर्हिः-अन्तरिक्षम्" [निघ० १।३]

द्वितीय तृच

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु या स्तोता हर्षालु†)

देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरक एवं वरणकर्ता परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ १र २र
२१० अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
ममेदिह श्रुतꣳ हवम् ॥१॥ ऋ० २.४१.४

(ऋतावृधा मित्रावरुणा) हे मेरे अन्दर सच्चा सुख और अमृत के वर्धक संसार में प्रेरक और मोक्ष में वरणकर्ता दोनों—रूपों में धर्मयुक्त परमात्मन् ! (वाम्) तुम्हारे—तेरे लिए (अयं सोमः सुतः) यह उपासनारस तैयार है (इह) इस अध्यात्मयज्ञ में (मम हवम्) मेरी भेंट—उपासनारस को (इत्-श्रुतम्) अवश्य सुनो—स्वीकार करो—करते हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३१र २र ३ २
२११ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
३ १ २
सहस्रस्थूण आशाते ॥२॥ ऋ० २.४१.५

(अनभिद्रुहा राजानौ) हे अभिद्रोह न करने वाले—अपितु स्नेह करने वाले सर्वत्र राजमान परमात्मन् ! (उत्तमे सहस्रस्थूणे ध्रुवे सदसि) सर्वोत्तम अविनाशी सहस्रस्तम्भ—खुले विचरण

† "गृत्समदो गृत्समदनः, गृत्स इति मेधाविनाम गृणातेः स्तुतिकर्मणः" [निरु० ९।५]

सदन मोक्षधाम में (आशाते) विराजते हों† वहां हमें भी ले जावें ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
१ २ ३ १ २
सचेते अनवह्वरम् ॥३॥

(ता) वे (सम्राजा) सम्राट्—विश्वसम्राट् (घृतासुती) तेज को फैलाने वाले अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति के स्वामी (दानुनः-पती) दानपति—भोग प्रदान अपवर्ग—मोक्ष प्रदान के पति सदा भोग अपवर्ग प्रदान करने वाले‡ (अनवह्वरं सचेते) अकुटिल पवित्र अन्तःस्थल वाले को अपनाते हैं ॥३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोतमः (उपासना में अत्यन्त गतिशील उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
३ १ २ ३ १२ २२
जघान नवतीर्नव ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १४४)

३ १ २२ ३ २३ ३ १२३ १ २
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
१२ ३ १ २
तद्विदच्छर्यणावति ॥२॥

---

† 'आशाते' [illegible]

‡ "दानुनस्पतिः-दानपतिः" [निरु० २।१३]

(अश्वस्य) गतिशील संसार या जगत् को† (यत्-शिरः) जिस शिर—ऊर्ध्वस्थान—आधार—इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (इच्छन्) उपासक चाहता हुआ (पर्वतेषु-अपश्रितम्) पर्ववाले योगाङ्गों में‡ योगभूमियों में पहुंचा हुआ (तत्) उसको (शर्यणावति विदत्) उपासक ने शर्यणावत्—धनुष पर प्राप्त किया है—करता है। वह धनुष है प्रणव—ओ३म्※। ओ३म् धनुष पर अपने आत्मा शर को चढ़ा देता है ब्रह्म जो प्रणव ओ३म् का वाच्य लक्ष्य है उसे प्राप्त करता है ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २२
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
३ २ ३ १ २ ३ १
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १२३)

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् ज्ञानप्रकाशवान् दोनों धर्मों से युक्त परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत्।

---

† "जागतोऽश्वः प्राजापत्यः" [तै० ३।८।८।४]

‡ "तप् पर्वमरुद्भ्याम्" [अष्टा० ५।२।१२२ वा०]

※ शर—बाण का लोहफलक, शर्य—फलकसहित बाण, शर्यणा—बाण को फेंकने के लिए झुकी ज्या—तांत या डोरी, शर्यणावत्—उससे युक्त धनुष "प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते" [मुण्डको० २।२।४]

३ १ २ ३ १२ २२३ १ २ ३ १ २
इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
३ २ ३ १ २
अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥१॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन् ! (त्वाम्) तुझ दोनों धर्म वाले परमात्मा के लिए (अस्य मन्मनः) इस मननशील उपासक की (इयं पूर्व्यस्तुतिः) यह श्रेष्ठ स्तुति (अभ्रात्-वृष्टिः-इव-अजनि) मेघ से वृष्टि की भांति निरन्तर बरस रही है इसे स्वीकार करें ॥ १ ॥

३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् और ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन् ! (जरितुः-हवं शृणुतम्) स्तुतिकर्ता को† आमन्त्रण को अभिप्राय को सुनो (गिरः-वनतम्) स्तुति वाणियों को स्वीकार करो (ईशान) हे जगत् के स्वामी (धियः पिप्यतम्) कर्मों को—अध्यात्म कर्मों को‡ बढ़ाओ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १२ १२
मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
१ २ ३ २
मा नो रीरधतं निदे ॥३॥

(इन्द्राग्नी नरा) हे ऐश्वर्यवन् ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन् ! मेरे जीवननेता ! (नः) हमें (पापत्वाय मा रीरधतम्) मानस

† "जरिता स्तोता" [निघ० ३:१६]
‡ "धीः कर्मनाम" [निघ० २:१]

पाप के लिए पापवश न करें (अभिशस्तये मा) हिंसा करने के लिए शारीरिक पाप के वश न कर (नः-मा निदे) हमें निन्दा के लिए वाणी विषयक पापवश न करना ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—दृढच्युतः (दृढ़ दोष को भी च्युत नष्ट करने वाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आने वाला परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९१)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २
सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
१ २ ३ १ २
पवमानो अदाभ्यः ॥२॥

(वृषा) सुखवर्षक (कविः) क्रान्तदर्शी (प्रियः) स्नेही (पवमानः) धारारूप में प्राप्त होने वाला (अदाभ्यः) न दबने न

---

† ''रध्यतिर्वशगमने'' [निरु० ६।३२]

हिंसित करने योग्य† परमात्मा (देवैः संशोभते) मुमुक्षु उपासक-जनों द्वारा स्तुति से उनके हृदय में दीप्त होता है—प्रकाशित होता है ‡ ॥ २ ॥

पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् ।
धर्मणा वायुमारुहः ॥३॥

(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! (धिया हितः) ध्यान धारणा द्वारा धारा ध्याया हुआ (योनिं कनिक्रदत्) मिलने वाले—मिलने समागम के पात्र उपासक को कल्याणप्रवचन करता हुआ※ (धर्मणा वायुम्-आरुहः) मोक्षधर्म के हेतु आयु को° ऊपर आरोपित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

तवाहँ सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे ।
पुरूणि बभ्रो निचरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पू० ४१९)

† "न दब्धुमशक्नुवन्" [काठक० ३०।७]

‡ "शुभ दीप्तौ" [भ्वादि०]

※ "कनिक्रदत् प्रब्रुवाणः" [निरु० ६।३]

° "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २।४।२]

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२॥

(बभ्रो सोम) हे भरण पोषण करने वाले शान्त परमात्मन् ! (तव-ऊधनि) तेरे ऊधस—आनन्दरसाधान स्वरूप को (नक्तम्-उत दिवा-अहं दुहानः) रात्रि में सायं और दिन में—प्रातः मैं दोहता हुआ (घृणा तपन्तं सूर्यम्-अति) दीप्ति से† तपते चमकते सूर्य को अतिक्रम कर—जब तपता हुआ सूर्य छिपने के निकट आवे तब (परः शकुनाः-इव पप्तिम) परे देश से पक्षी जैसे घोंसले की ओर गमन करते हैं ऐसे हम उपासक तुझ अपने आश्रय को‡ प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—बृहन्मतिः (बड़ी स्तुति वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४००)

---

† 'घृ क्षरणदीप्त्योः' [जुहोत्यादि०] दीप्तिस् गृह्यते, तृतीयाया अलुक् ।

‡ लुप्तोपमेयालङ्कारः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ।
३ १र २र
ध्रुवे सदसि सीदतु ॥२॥

(अरुणः) आरोचन—समन्त प्रकाशमान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा† (योनिम्-आरुहत्) मिलने वाले—मिलने के इच्छुक उपासक में आ बैठा—आ बैठता है तब (वृषा-इन्द्रः सुतम्-आगमत्) इन्द्रियों का प्रेरक आत्मा स्वयं सोम की उस साक्षात् हुए की ओर झुक जाता है पुनः ध्रुवस्थान में विराजित हो जाता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २
आपवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

(इन्दो सोम) हे आनन्दरससरसीले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (नु) निश्चय (नः) हमारे (महाम्) महान् (सहस्रिणम्) बहुमूल्य (रयिम्) धन को (आपवस्व) प्राप्त कर ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

---

† "अरुण आरोचनः" [निरु० ५।२०]

छन्दः—विराट् ।

२ ३ १२ ३१२ ३ १ २ ३१२ ३ १ २
पिबा सोममिन्द्र मन्दन्तु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
३२ ३२ ३ १२ ३ १ ३
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३२९)

२ ३ २ ३ २ ३ २३२ ३१२ ३१२ ३ १ २
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
१२ २२
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

(हर्यश्व प्रभूवसो-इन्द्र) ऋक् साम†—स्तुति उपासना जिस के घोड़े हैं अध्यात्मयान में जुड़ने वाले ऐसा, तथा प्रभूत धन—महान् मोक्ष धन वाले हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते) तेरे लिए (यः) जो (मदः-युज्यः-चारुः-अस्ति) हर्षकर सोम उपासनारस है, तेरे साथ योग का साधन सुन्दर है (येन वृत्राणि हंसि) जिससे तू उपासक के पाप—अनुदार भाव को नष्ट करता है (सः-त्वाम्) वह तुझे (ममत्तु) उपासक पर प्रसन्न करे ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
३१२ २२ ३ १ २
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥

(मघवन्) हे धनवन् इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (मे-इमां वाचम्-आ-सुबोध) मेरी इस वाणी को समन्तरूप से भली भांति समझ—समझता है जानता है सर्वज्ञ अन्तःसाक्षी होने से (यां प्रशस्ति वसिष्ठः-अर्चति) जिस प्रशंसारूप—स्तुतिरूप वाणी

† "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [मं० ३।१०।६]

को मैं यह तेरा उपासक बोलता है, तथा (इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व) इन प्रणववचनों को—ओ३म् जपों को† साथ हर्षप्रदस्थान में मेरे हृदय में सेवन कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—त्रिशोको रेभो वा (तीन ज्ञानज्योतियों से युक्त‡ या स्तुति करने वाला उपासक❀)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अति जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३०६)

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥२॥

(विप्राः) ऋषिजन° (चक्षसा) दर्शन हेतु* (अभिस्वरे) उच्च स्वर एवं स्नेहमय स्वर के निमित्त‖ (नेमिं मेषं नमन्ति) नेता

---

† "ब्रह्म वै प्रणवः" [कौ० ११।४; गो० २।३।११]

‡ "शोचति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

❀ "रेभः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

° "विप्रा यद् ऋषयः" [श० १।४।२।७]

* हेतौ तृतीया

सुखसेचन करने वाले† ऐश्वर्यवान् परमात्मा को नमस्कार करते हैं—स्वात्मसमर्पण करते हैं (वः) 'यूयम्' तुम (सुदीतयः-तरस्विनः-अद्रुहः) शोभनगति वाले—सम्यक् ज्ञानी‡ तथा प्रशस्त बलवान् किसी से भी वैर न करने वाले (ऋक्वभिः) स्तुतिमन्त्रों के द्वारा (अपि कर्णे सम्०) चाहे किसी कान में भी सुनने में आवे ऐसी सम्यक् स्तुति करते हैं॥ २॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८३२ समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः॥३॥

(रेभासः-इन्द्रं समस्वरन्-उ) स्तुति करने वाले उपासक जन ऐश्वर्यवान् परमात्मा की सम्यक् अर्चना करते हैं✽ (सोमस्य पीतये) उनके उपासनारस के पान करने—स्वीकार करने के लिए (यत्-ई) कि जिससे (धृतव्रतः-स्वः-पतिः) स्थिर कर्म वाला सुखों का स्वामी परमात्मा (ओजसा-ऊतिभिः-हि संवृधे) ओज से अनेक रक्षाक्रियाओं के द्वारा सम्यक् वृद्धि के लिए हो॥ ३॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषि—पुरुहन्मा (बहुत—अतिशय से दोषों का हन्ता)।

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—प्रगाथः (विषमा बृहती)

---

† "मिष सेचने" [भ्वादि०]

‡ "दीयति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

✽ 'स्वरति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

१२ २२ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।
१ २ ३ १ २र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २२०)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इन्द्रं तं† शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १र २र
हस्तेन वज्रः प्रतिधायि दर्शतो महान् देवो न सूर्यः ॥२॥

(पुरुहन्मन्) हे दोषों के अत्यन्त नाशक उपासक! तू (तम्-इन्द्रम्-अवसे शुम्भ) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अपने रक्षण के लिए बोल—प्रार्थित कर। (यस्य विधर्तरि द्विता) जिस विशेषधृकर्ता इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा में दो धर्म हैं भोग और अपवर्ग प्रदान करना या दण्ड और पुरस्कार देना (हस्तेन वज्रः प्रतिधायि) हस्त से वज्र प्रतिधान करना (महान् दर्शतः-देवः-न सूर्यः) दर्शनीय महान् देव सूर्य के समान है सूर्य अन्धकार को नष्ट करता और प्रकाश को फैलाता है ऐसा परमात्मा उपासक की वासना को मिटाता है और शान्ति को बढ़ाता है ॥ २ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (पापवासना में न बंधा हुआ या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

---

† "शुम्भ भाषणे" [भ्वादि०]

छन्दः—गायत्री।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३क २र ३ २
परि प्रियाः दिवः कविर्वयाꣳसि नप्त्यो हितः।
३ १ २ ३ १ २
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९३)

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
महान् मही ऋतावृधा ॥२॥

(सः-महान् सूनुः-शुचिः-जातः) वह महान् शान्तस्वरूप परमात्मा उत्पत्तिकर्ता प्रकाशमान † प्रसिद्ध हुआ (मही-ऋतावृधा मातरा जाते-अरोचयत्) महती सत्यनियम के प्रसारक जगत् के माता पिता के समान उत्पन्न हुआ द्युलोक पृथिवीलोक को‡ प्रकाशमान कर रहा है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र प्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः।
३क २र ३ १ २
वीत्यर्ष पनिष्टये ॥३॥

(प्र प्र क्षयाय) उत्तरोत्तर प्रकृष्ट निवास※ मोक्षधाम प्राप्ति के निमित्त (अद्रुहः पन्यसे जनाय) द्रोह न करने वाले° अपितु स्तुतिकर्ता जन के लिए (पनिष्टये जुष्टः) स्तुति के लिए सेवित

† "शोचति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]
‡ ("द्यौर्मे पिता""माता पृथिवी महीयम्" [ऋ० १।१६४।३३]
※ "क्षि निवासे" [तुदादि०]
° चतुर्थ्यर्थे षष्ठी।

हुआ—उपासित हुआ (वीति-अर्ष) प्राप्ति के लिए अर्थात् अभीष्ट प्राप्ति के लिये प्राप्त हो ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—वासिष्ठः शक्तिः (परमात्मा में वसने वाले से सम्बद्ध समर्थ उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

२ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
त्वं ह्यार्ङ्ग दैव्यः पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १२ ३१२
अमृतत्वाय घोषयन् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७८॥)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ २
येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२॥

(येन) जिस शान्तस्वरूप परमात्मा के द्वारा (नवग्वाः-दध्यङ्-अप-ऊर्णुते) नव गति अध्यात्म प्रवृत्ति जिनकी या नव-प्राप्त गति अध्यात्म में प्रवेश जिनका है ऐसे पूर्ण खोज से अध्यात्मप्रवेश वाले† तथा ध्यान को प्राप्त जन‡ अध्यात्मावरक पट को खोल देते हैं (येन विप्रासः-आपिरे) जिस परमात्मा के आश्रय से उपासक जन अध्यात्मफल मोक्ष प्राप्त करते हैं (देवानां सुम्ने) जीवन्मुक्तों के सुख में* (अमृतस्य च) मुक्त के सुख में

---

† "नवग्वा नवगतयो नवनीतागतयो वा" [निरु० ११।१६]

‡ "दध्यङ् प्रत्युक्तो ध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" [निरु० १२।२३]

* "सुम्नं सुखनाम" [निघ० ३।६]

(अरुणः) आरोचन परमात्मा साक्षात् होता है (येन श्रवांसि-आशत) जिस परमात्मा के आश्रय से उपासकजन विविध यश† प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (साक्षात् द्रष्टा अग्रणेता)

देवताः—पूर्ववत् ।

छन्दः—ककुप् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं विधावति ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७०)

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥२॥

(मतयः) अर्चना‡ स्तुति करने वाले मेधावी❀ उपासक (अत्यविम्) अवि—पृथिवी° पार्थिव शरीर को अतिक्रान्त किए हुए—शरीरबन्धन से रहित (वने क्रीडन्तम्) वननीय संसार में क्रीड़ा करते हुए जैसे (वाजिनम्) अमृत अन्न भोग वाले*

---

† "श्रव श्रवणीयं यशः" [निरु० ११।९]

‡ "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

❀ "मतय -मेधाविनाम" [निघ० ३।१५]

° "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६।१।२।३२]

* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (धीभिः-मृजन्ति) ध्यानक्रियाओं के द्वारा प्राप्त करते हैं† (त्रिपृष्ठम्-अभि समस्वरन्) तीन दिशाओं स्तुति प्रार्थना उपासना को या 'अ उ म्' को सम्मुख रख कर सम्यक् अर्चना‡ करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
अस्सर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
३ १र २र ३ १ २
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥३॥

(वाजयुः) उपासकों के लिए अमृत अन्न भोग को चाहता हुआ (मीढ्वान्-सप्तिः-न) वीर्यसिञ्चन समर्थ घोड़े के* समान उछलता हुआ सा (कलशान्-अभि-असर्जि) उपासकों के कल कल शब्द वाले हृदयों के प्रति—में निष्पन्न साक्षात् किया जाता है (पुनानः) उपासकों को पवित्र करता हुआ (वाचं जनयन्-असिष्यदत्) आशीर्वचन बोलता हुआ आनन्दधारा में बहता है ॥३॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—प्रतर्दनः (कामादि दोषों का निराकरणकर्ता)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू पृ० ४२९)

† "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
‡ "स्वरति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]
* "सप्तिः-अश्वनाम" [निघ० १।१४]

३ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगानाम्।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्येनो गृध्राणाᳬं स्वधितिर्वनानाᳬं सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥२॥

यहाँ लुप्तोपमावाचकालङ्कार है।

(देवानां ब्रह्मा) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा हम उपासकों का मानस्थान ऐसा है जैसे विद्वानों में* ब्रह्मा ज्ञानवृद्ध मान्य होता है (कवीनां पदवीः) क्रान्तदर्शी जनों में पदवेत्ता (विप्राणाम्-ऋषिः) मेधावी जनों शिक्षकों में ऋषि (मृगाणां महिषः) जङ्गली पशुओं में महिष पशु है (गृध्राणां श्येनः) पक्षियों में श्येन—भास—बाज पक्षी है (वनानां स्वधितिः) शब्दकारी पदार्थों में† वज्र—विद्युत् का निर्घोष‡ (सोमः-रेभन् पवित्रम्-अत्येति) इस प्रकार शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक को आशीर्वाद देता हुआ हृदयावकाश में प्रशस्तरूप से प्राप्त होता है॥२

२ २ ३ १ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान् पवमानो मनीषाः।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
अन्तः पश्यन् वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥३॥

(पवमानः-मनीषाः-वाचः प्रावीविपत्) धारारूप में प्राप्त हुआ अन्तर्यामी परमात्मा उपासक की वाणियों को प्रेरित करता है (सिन्धुः-ऊर्मिं न) समुद्रतरङ्ग को प्रेरित करता है (गिरः-स्तोमान्) स्तुतियां स्तोमों—स्तुतिसमूहों को भी स्वदर्शनानुरूप करता है (इमा-अवराणि वृजना-अन्तः पश्यन्) उपासक के इन अल्प-

* "विद्वांसो हि देवा": [श० ३।७।३।१०]

† "वन शब्दे" [भ्वादि०]

‡ "स्वधितिः-वज्रनाम" [निघ. २।२०] "वज्रः स्वधितिः" [मै. ३।९।६]

बलों को* अन्दर देखता हुआ (वृषभः-जानन् गोषु-आतिष्ठति) सुख की वर्षा करने वाला इन्द्रियों में—को समर्थ बनाता हुआ साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रयोगो भार्गवः (ज्ञान से भृज्यमान के प्रयोग का कर्ता)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
२ ३ २ ३ १ २
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २०)

३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
३ २३ ३ १ २
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥२॥

(अयम्) यह अग्रणेता ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (नः-आभुवत्) हम पर अधिकार करता है (यथा त्वष्टा) तक्षक—बढई (तक्ष्या रूपा-इव) घड़ने योग्य वस्तुओं पर अधिकार करता

---

* "वृजनं बलनाम" [निघ० २।९]

है (अस्य यशस्वतः) इस यशस्वी परमात्मा के (क्रत्वा) प्रज्ञान—आदेश के अनुसार हम चलें ॥ २ ॥

३ १र   २र ३ २उ   ३   २ ३ १ २
अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
२उ   ३ १ २
आ वाजैरुप नो गमत् ॥३॥

(अयम्-अग्निः) यह अग्रणेता परमात्मा (विश्वाः-श्रियः) सारी श्री—लक्ष्मी शोभाओं का (देवेषु) देवों—मुमुक्षुओं के निमित्त (अभिपत्यते) स्वामित्व करता है * (नः-वाजैः-उपागमत्) वह हमें अमृत अन्न भोगों के साथ पास आवे—प्राप्त हो ॥३

द्वितीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति प्रवृत्ति वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ १ २   ३ १ २ ३   २ ३ १ २ ३   १ २
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १   २   ३क २र ३   १ २   ३ २   ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २८५)

२ ३   २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३   १ २
न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
२ ३   १ २ ३ १ ३ २   ३   १ २
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥२॥

* "पत्यते ऐश्वर्यकर्मा" [निघ० २।२१]

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वत्-रथीतरः-न किः) तुझ से भिन्न मोक्षरथ—रमणस्थान का स्वामी कोई नहीं (हरीयत्-यच्छसे) ऋक् साम स्तुति—उपासना को तू ही अपने में स्थान देता है (मज्मना त्वा-अनु न किः) बल से* भी तेरे समान कोई नहीं (स्वश्वः न किः-आनशे) शोभन व्यापन धर्म वाला भी तेरा जैसा कोई संसार भर में नहीं व्यापता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥३॥

(इन्द्राय नूनम्-अर्चत) हे उपासको ! तुम ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये निश्चय† अर्चना करो (च) और (उक्थानि) ब्रवीतन) प्रशंसावचन बोलो (ज्येष्ठं सहः-नमस्यत) अतिमहान् तथा बलवान्‡ को नमस्कार करो—नम्रभाव आत्मा में लाओ (सुताः-इन्दवः-अमत्सुः) इस प्रकार तुम्हारे द्वारा निष्पादित या सम्पन्न किए उपासनारस तुम्हें आनन्दित करें ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अनिर्दिष्ट होने से पूर्ववत् ।

देवता—दृष्टलिङ्ग इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषम अनुष्टुप् ।

---

* "मज्मना बलनाम" [निघ० २।९]

† "नूनं निश्चये" [अव्ययार्थनिबन्धने]

‡ "सहः-बलनाम" [निघ० २।९] मतुबर्थप्रत्ययस्य लुक् छान्दसः ।

१ २ ३२ ३ २·३ १ २ ३ १ २
इन्द्र जुषस्व प्रवहायाहि शूर हरिह ।
१ २ ३ १ २ ३१र २र ३ २उ ३ १ २
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥

(शूर हरिह-इन्द्र) हे शक्तिमन् ! स्तुति—उपासना के द्वारा उपासक को प्राप्त होने वाले* ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (जुषस्व) हम से प्रीति कर (प्रवह) हमें आगे ले जा (आयाहि) हमारे पास आ (मतिः-न सुतस्य पिब) मान करने वाले की भांति निष्पन्न उपासनारस को† पान कर—स्वीकार कर (मधोः-चकानः) हमारे लिए मधु की कामना करता हुआ (मदाय चारुः) आनन्द प्राप्ति के लिए सुन्दर बन ॥ १ ॥

छन्दः—अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
३ २ ३२ ३ २ १२ ३ १ २ ३ १ २
अस्य सुतस्य स्वार्णोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (नव्यं जठरं न पृणस्व) स्तुत्य—समर्थ जठर उदर के समान मुझ उपासक को दर्शनामृत से तृप्त कर, तथा (दिवः-मधोः-न) जैसे आकाश के जल‡ से तू प्राणियों को तृप्त करता है (अस्य सुतस्य) इस हमारे द्वारा निष्पन्न उपासनारस के (मदाः स्वः-न) हर्षतरङ्ग तेरे दिए सुख के समान (सुवाचः) सुन्दर वाणियों वाले (त्वा-उपस्थुः) तुझे—तेरे लिए उपस्थित हैं ॥ २ ॥

---

* "हन हिंसागत्योः" [अदादि०] सम्बुद्धो छान्दसः प्रयोगः ।

† द्वितीयार्थे षष्ठी

‡ "मधु-उदकनाम" [निघ० १।१२]

छन्दः— त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २३ ३ १ २ ३ २३ ३ २
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
३ १ २ ३ २३ ३ १ ३ २३ ३ २ ३ १ २
विभेद बलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥३॥

(इन्द्रः-तुषाट्-मित्रः-न) परमात्मा उपासित हुआ उपासक के काम आदि को तुरन्त दबा देने वाला है सूर्य* की भांति जैसे सूर्य प्रकाशित होते ही अन्धकार को दबा देता है (वृत्रं जघान यतिः-न) परमात्मा उपासक के भविष्य में होने वाले पापों को नष्ट कर देता है यति—ब्रह्मचारी जैसे पाप को नष्ट करता है ॥३॥

इति पञ्चमोऽध्यायः ।

—()-:०:-()—

* "मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्" [काठ० २३०।१२]
"पाप्मा, वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

अथ षष्ठ अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रय ऋषिगणाः (तीन ऋषिगण—मन वाणी प्राण के द्रष्टा ज्ञाता)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला सोम)

छन्दः—जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गोवित् पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ २३ १२ ३ १र २र
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते॥१॥

(इन्दो सोम) हे आनन्दरसपूर्ण शान्त परमात्मन् ! तू (गोवित्) वाणी—वेदवाणी को प्राप्त कराने वाला (वसुवित्) मोक्षवास प्राप्त कराने वाला (हिरण्यवित्) अमृत को प्राप्त कराने वाला* (रेतोधा) प्राण का धारण कराने वाला† (भुवनेषु-अर्पितः) सब लोकों—पिण्डों में प्राप्त है (त्वम्) तू (सुवीरः-असि) उपासक जन उत्तम वीर जिसके आश्रय से बन जाते हैं ऐसा है (विश्ववित्) सर्वज्ञ है (इमे नरः-तं त्वा गिरा-उपासते)

---

* "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० स० ५।२।७।२]

† "प्राणो रेतः" [ऐ० २।३८]

ये मुमुक्षु जन स्तुति से उस तुझे उपासित करते हैं तेरी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता विधावसि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥२॥

(पवमान सोम) धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (वृषभ) सुखवर्षक (नृचक्षाः-असि) मुमुक्षुजनों को देखता है—जानता है कौन से हैं (ता त्वं विश्वतः-विधावसि) तू उन सुखों को प्राप्त कराने सब ओर विविध गुणों से जाता है प्राप्त होता है (सः) वह तू (वसुवित्-हिरण्यवित् पवस्व) मोक्ष-वास प्राप्त कराने वाला अमृत प्राप्त कराने वाला हमें प्राप्त हो (वयं भुवनेषु जीवसे स्याम) हम लोकों में जीने के लिए समर्थ होवें ॥ २ ॥

३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
१ २ ३ १ २ ३२३ ० १ २ ३ १ २ ३ १ २
तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः॥३

(इन्दो सोम) हे आनन्दरसरसीले शान्त परमात्मन् ! तू (इमा भुवनानि-ईशानः-ईयसे) इन लोकों का स्वामित्व करने के हेतु इन्हें प्राप्त है इनमें व्याप्त है (हरितः सुपर्ण्यः-युजानः) आनन्द की हरणशील* स्तुतिवाणियों† से युक्त हुआ रह (ताः-ते मधुमत्-घृतं पयः क्षरन्तु) वे तेरे मधुर तेज‡ को और रस को

* "हरितः-हरणाः" [निरु० ४।१०]

† "वागेव सुपर्णी" [श० ३।६।२।२]

‡ "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८].

ले लेती हैं (तव व्रते कृष्टयः-तिष्ठन्तु) तेरे व्रत में—वरणीय आदेश में उपासक जन* रहते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कश्यपः (पश्यक—ज्ञानी ब्रह्मदर्शी)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—गायत्री ।

१ २ १ २ ३ १ २
e५२ पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥१॥ ऋ० ९-६४-७

(विश्ववित्) हे विश्ववेत्ता सर्वज्ञ परमात्मन् ! (ते पवमानस्य सर्गाः) तुझ धारारूप में प्राप्त होते हुए के आनन्दप्रवाह (प्रासृक्षत) प्रवाहित हो रहे हैं (सूर्यस्य-इव न रश्मयः) सूर्य की रश्मियों के समान सूर्य की रश्मियां जैसे सूर्य से चली आ रही होती हैं ऐसे† ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
e५२ केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
३ १ २
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥२॥ ऋ० ९-६४-८

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (दिवः-परि) अपने द्योतनात्मक स्वरूप में होता हुआ (केतुं कृण्वन्) उपासकों के निज प्रज्ञान—ज्ञानधारा को करता हुआ (विश्वा रूपा-अभ्यर्षसि) सब निरूपणीय वस्तुओं को प्रकाशित करता है (समुद्रः पिन्वसे) तू आनन्दसागर बना उपासकों को तृप्त करता है ॥२॥

---

* 'कृष्टयो मनुष्याः' [निघ० २।३]
† "इव-अनर्थकः" ।

'इव'

३ १र २र ३ १२ ३ १२
जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
१ २ ३ १र २र
क्रन्दन् देवो न सूर्यः ॥३॥

(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तू (विधर्मणि जज्ञानः) विशेष उपासनाधर्मी उपासक के हृदय में प्रकट हुआ (वाचम्-इष्यसि) स्तुति वाणी को प्राप्त होता है ❀ (क्रन्दन् देवः-न सूर्यः) मानो सूर्य अपने को प्रकाश से घोषित करता हुआ आता है ऐसे तू भी आनन्दधारा द्वारा घोषित करता हुआ आता है ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—असितो देवलो वा (बन्धरहित—रागरहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१र २र ३ १ २ ३ १ २
प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
३ २ ३ १ २
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥१॥

(पवमानासः-इन्दवः सोमासः) 'बहुवचन आदरार्थं' धारारूप में प्राप्त होता हुआ आनन्दरसपूर्ण शान्त परमात्मा (प्राधन्विषु) उपासक के हृदय में प्रगति कर रहा है—प्रवाहित हो रहा है (श्रीणानाः) आत्मा से मिश्रण कर संयुक्त हो (अप्सु वृञ्जते) प्राणों के अन्दर† अपने आनन्दरस छोड़ता है, इस

❀ "इष गतौ" [दिवादि०]

† "प्राणा वा आपः" [तां० ६।९।४]

उपासक का आत्मा हृदय और प्राण परमात्मा के आनन्दरस से पूर्ण हो जाते हैं।। १ ॥

३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
१र २र
पुनाना इन्द्रमाशत ॥२॥

(गावः-अभि-अधन्विषुः) इस प्रकार गतिशील शान्तस्वरूप परमात्मा सर्वत्र गति करता है (यतीः-आपः-न प्रवताः) जैसे चलते हुए बहते हुए जल नीचे नीचे चले जाते हैं (पुनानाः—इन्द्रम्-आशत) पवित्रता करते हुए—काम मलों को शोधता हुआ आत्मा को प्राप्त होता है ।। २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
१ २ ३ १र २र
नृभिर्यतो विनीयसे ॥३॥

(पवमान सोम) धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (मादनः) हर्षित करता हुआ (इन्द्राय प्रधन्वसि) उपासक आत्मा के लिए प्रकृष्ट रूप से प्राप्त होता है (नृभिः-यतः) मुमुक्षुजनो॰ से संयत—योगसाधन द्वारा अभ्यस्त किया हुआ (विनीयसे) अपनी ओर प्राप्त किया जाता है—साक्षात् धारण किया जाता है ॥ ३ ॥

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरामिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥

॰ "नरो ह वै देवविशः" [जै॰ १।८९]

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! तू (अद्रिभिः सुतः) श्लोककर्त्ताओं स्तुतिकर्ता जनों से* उपासित किया हुआ (पवित्रं परिदीयसे) निर्वासन हृदय† में परिप्राप्त होता है‡ [(इन्द्रस्य धाम्ने-अरम्) उपासक आत्मा के अभीष्ट धाम—मोक्षधाम प्राप्ति के लिए समर्थ ° है ॥४

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥५॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (नृमादनः) मुमुक्षुजनों का हर्षदाता (चर्षणीधृतः) साक्षात् करनेवाले उपासकों द्वारा धारण करने योग्य (यः-सस्निः-अनुमाद्यः) जो कि शुद्ध या उपासकों का स्नानाधार* अर्चनीय उपासनीय* है ॥५॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः ।
१ २ ३ १२ २२
शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥

---

* "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५]

† "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥" [कठो० वल्ली ६।१४]

‡ "दीयति गतिकर्मा" [निघ० १।१४]

° "अरम्—अलम्-समर्थादौ" [अव्ययार्थनिबन्धने]

* "सस्नि संस्नातम्" [निरु० ५।१]

* "मदति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

(वृत्रहन्तमः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू मेरे अन्दर के पापों का अत्यन्त हननकर्ता (उक्थेभिः-अनुमाद्यः) प्रशस्त वचनों द्वारा निरन्तर स्तुति करने योग्य (शुचिः) स्वयं पवित्र (पावकः) उपासक को पवित्र करने वाला (अद्भुतः) विरला—अपूर्व है॥ ६॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान्।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा॥७॥

(सोमः सुतः) शान्तस्वरूप परमात्मा उपासना द्वारा निष्पन्न किया हुआ—साक्षात् किया हुआ (शुचिः पावकः) निर्मल निःसङ्ग केवल दोषशोधक (मधुमान्) मधुर रस वाला (उच्यते) कहा जाता है (देवावीः) मुमुक्षुओं का रक्षक (अघशंसहा) पापप्रशंसक विचारों का नाशक है॥ ७॥

—:o:—

द्वितीय खण्ड

प्रथम सूक्त

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागादि बन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत।
३ १र २र ३ १र २र
साह्वान् विश्वा अभि स्पृधः॥१॥

(कविः) क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (देववीतये) देवों मुमुक्षु उपासकों की कमनीया※ मुक्ति के लिए (अव्याः-वारैभिः-अव्यत) देवों मुमुक्षु उपासकों को अवि—पृथिवी—पार्थिव देह को† वरणीय मन श्रोत्र नेत्र वाणी आदि साधनों अङ्गों के द्वारा—मनन श्रवण दर्शन स्तवन करा कर प्रेरित करता है‡ (विश्वाः स्पृधः-अभि) उपासक की सारी स्पर्धा—संघर्ष करने वाली° वासनाओं को अभिभूत कर दबा कर (साह्वान्) सहन कराने वाला—सहन करने में प्रतिरोध कराने समर्थ बनाने वाला है ॥ १ ॥

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥२॥

(सः-पवमानः-हि स्म) वह धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा ही (जरितृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिए* (सहस्रिणम्) सहस्रों में ऊंचा (गोमन्तम्) स्तुति वाला—स्तुति प्रतिफल (वाजम्) अमृत अन्नभोग को* (आ-इन्वति) प्राप्त कराता है ॥ २ ॥

※ "वी गति······कान्त्य····" [अदादि०] "वेति कान्तिकर्मा" [निघ० २।६]

† "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६।१।२।३३]

‡ "वेति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

° "स्पर्ध संघर्षे" [भ्वादि०]

* "जरिता स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
९६० परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।
१ २ ३ १ २
स नः सोम श्रवो विदः ॥३॥ ऋ० ९.२०.२

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (चेतसा) चित्त को लक्ष्य बना कर—चित्त की पवित्रता तथा चिन्तनशीलता को लक्ष्य बना कर या चित्त से किए (विश्वानि परिमृज्यसे) समस्त चिन्तनों को परिप्राप्त होता है※ तथा (मती पवसे) वाणी से† की गई स्तुति को लक्ष्य कर या द्वारा हम तक पहुंचता है तब तो (सः) वह तू (नः-श्रवः-विदः) हमारे लिए अपने यशोरूप को‡ प्राप्त करा ॥ ३ ॥

३क२र ३१र २र ३१२ ३ २ ३ २
९६१ अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवꣳरयिम् ।
१२ ३ २ ३ १ २
इषꣳस्तोतृभ्य आभर ॥४॥ ऋ० ९.२०.४

(मघवद्भ्यः स्तोतृभ्यः) अध्यात्मयज्ञानुष्ठानी° स्तोताओं के लिए (बृहद् यशः-ध्रुवं रयिम्) अपने महत् यशोरूप को* तथा मोक्षैश्वर्य को (अभ्यर्ष) प्राप्त करा, एवं (इषम्-आभर) तदनुकूल कामना को आभरित कर—पूरा कर* ॥ ४ ॥

※ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
† "वाग् वै मतिः" [श० ८।१।२।७]
‡ "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० १२।९]
° "यज्ञेन मघवान् भवति" [तै० सं० ४।४।८।१]
* "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२।३]
* "इषवान् कामवान्" [निरु० १०।४२]

१२ २र ३ १र २र ३ १ २
त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाऽऽविवेशिथ ।
३ १ २
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

(अद्भुत वह्ने सोम) हे विरले अपूर्व उपासकों के निर्वाहक शान्तस्वरूप परमात्मदेव ! (त्वम्) तू (राजा-इव सुव्रतः) राजा के समान अच्छे सङ्कल्प तथा कर्म करने वाला है, जैसे राजा प्रजा का हितकर चिन्तन और कर्म करता है, ऐसा तू (पुनानः-गिरः-आविवेशिथ) पवित्र करता हुआ हम उपासक प्रजाओं में* आवेश करे—प्राप्त हो ॥ ५ ॥

१र २र३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २
सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

(सः-वह्निः सोमः) वह उपासकों का निर्वाहक सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अप्सु दुष्टरः) कामनाओं में† फँसे रहने में तो दुष्प्राप्य है—अप्राप्य है (गभस्त्योः-मृज्यमानः) गभ—प्रजा—सन्ततिभाव‡ को फेंक हटाने मिटाने वाले अभ्यास और वैराग्य में प्राप्त होता हुआ (चमूषु सीदति) विषय वासनाओं के चमनों भक्षणों°—मन बुद्धि चित्त अहङ्काररूप पात्रों में बैठ जाता है इन ही में परमात्मा का मनन विवेचन स्मरण व ममत्व होता रहता है ॥ ६ ॥

---

* "विशो गिरः" [श० ३।६।१।२४]
† "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०।५।४।१५]
‡ "विड् वै गभः" [श० १३।२।६।६]
° "चमु अदने" [भ्वादि०, स्वादि०]

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
२६४ क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
१ २ ३ २ ३ १ २
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥ ऋ० ९-२०-६

(सोम क्रीडुः-मखः-न मंहयुः) शान्तस्वरूप परमात्मन् ! यज्ञ के समान* खेलता हुआ सा—चलता हुआ, महत्त्व को प्राप्त होने वाला उपासक के अन्दर महिमा को प्राप्त हुआ (पवित्रं गच्छसि) हृदय को प्राप्त होता है (स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्) स्तुतिकर्ता के अन्दर अच्छे ज्ञानबल को धारण कराता हुआ ॥ ७ ॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षा करते हुए परमात्मा के आदेश के अनुसार चलता हुआ)
देवता छन्दसी—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
२६५ यवं यवं नो अन्धसा पुष्टं पुष्टं परिस्रव ।
१ २ ३ १ २
विश्वा च सोम सौभगा ॥१॥ ऋ० ९-५५-१

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (अन्धसा) अपने आध्यानीय स्वरूप से† (नः) हमारे लिए (यवं यवम्) पाप और द्वेष भावना को हम से पृथक् करने वाले‡ तथा (पुष्टं पुष्टम्) सद्गुण पोषण करने वाले आनन्दरूप को नित्य (परिस्रव) बहा दे (च) और (विश्वा सौभगा) सारे सौभाग्यकारक गुणों को प्राप्त करा ॥ १ ॥

* "यज्ञो वै मखः" [तै० स० ५।१।६।३]
† "अन्धः-आध्यानीयं भवति" [निरु० ५।२]
‡ "यव यवयास्मद्घा द्वेषांसि" [तै० आ० ६।६।२]

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! (यथा तव स्तवः) जैसे तेरा स्तुतियोग्य स्वरूप (यथा ते-अन्धसः-जातम्) जैसा तुझ आध्यानीय का प्रत्यक्ष हुआ आनन्दरस है (प्रिये बर्हिषि नि-सदः) वैसा तू हृदयावकाश में विराजमान हो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा ।
३ १ २ ३ १ २
मक्षूतमेभिरहभिः ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (नः) हमारे लिए (उत) अवश्य (अन्धसा) अपने आध्यानीय स्वरूप से (गोवित्) हमारी स्तुति वाणी को जानने वाला (अश्ववित्) व्यापनशील मनन करने वाला मन को जानने वाला (मक्षूतमेभिः-अहभिः) अत्यन्त शीघ्र साधक※ दिनों के द्वारा (पवस्व) आनन्दधारा में प्रवाहित हो ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
१ २
स पवस्व सहस्रजित् ॥४॥

(यः-जिनाति) जो सारे संसार को अभिभूत करता है† स्वायत्त करता है (न जीयते) अन्य किसी से अभिभूत नहीं होता

※ "मक्षु क्षिप्रनाम" [निघ० २।१५]
† "जि अभिभवे" [भ्वादि०]

है (शत्रुम्-अभीत्य हन्ति) अन्य शातयिता—उसके आदेशों के नाशक को स्वाधीन कर नष्ट करता है (सः-सहस्रजित् पवस्व) वह सर्वजित्* सब को स्वाधीन करने वाला तू आनन्दधारा में प्राप्त हो ॥ ४ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
८७९ यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।
१र २ ३ २ ३ १ २
ताभिः पवित्रमा सदः ॥१॥ ऋ० ९-६२-६

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! (ते) तेरी (याः-मधुश्चुतः-धाराः) जो मधुर आनन्दरस वहाने वाली धाराएं (ऊतये-असृग्रन्) रक्षा के लिए—स्वात्मा रक्षा के लिए छूट रही हैं—वह रही हैं (ताभिः पवित्रम्-आसदः) उनके साथ पवित्र हृदय को प्राप्त हो—हृदय में विराज ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
८८० सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥ ऋ० ९-६२-८

(सः) वह तू हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिए (पीतये) पान करने के लिए (अव्यया वाराणि तिरः) पार्थिव देह के आवरकस्थानों—अङ्गों को लांघ

* "सर्वं वै सहस्रम्" [श० ४।६।१।१५]

कर (अर्ष) प्राप्त हो (ऋतस्य योनिम्-आसीदन्) अध्यात्मयज्ञ को* विराजमान होने के हेतु ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं सोम परिस्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
३ २ ३१२ २२
वरिवोविद् घृतं पयः ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तू (स्वादिष्ठः) अत्यन्त स्वादु रस वाला (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गी परमात्मा को उपासना द्वारा जो रिझाते हैं† उन अध्यात्मवीर उपासक मुमुक्षु जनों के लिए (वरिवोवित्) उनके अभीष्ट अध्यात्म धन को‡ जानने वाला (घृतं पयः परिस्रव) तेजस्वी° रस को बहा ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वैतहव्योऽरुणः (समाप्ताग्निहोत्र विरक्त से सम्बद्ध तेजस्वी उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

---

* "यज्ञो वा ऋतस्य योनिः" [श० १।३।४।१६[

† "वीरा वै तदजायन्त यदङ्गिरसः" [जै० ३।२६४]

‡ "वरिवः-धननाम" [निघ० २।१०]

° "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८]

३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥१॥

(तव-अग्नेः श्रियः) तुझ ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणायक परमात्मा के धर्म—गुण या ज्ञानरश्मियां❀ (वर्ष्यस्य-इव विद्युतः) पर्जन्य—मेघ की† विद्युतों के समान (उषसाम्-इव-इतयः) प्रभातकालीन उषाओं की गतिधाराओं जैसी‡ (चिकित्र) जानी जा रही हैं प्रत्यक्ष हो रही हैं (यत्) जब कि तू (ओषधीः) जगती धरती की सब चर अचर वस्तुओं को° (च) और (वनानि) अन्तरिक्ष के जलादि* को और द्युलोक के रश्मि आदि§ को (स्वयम्-आसनि-अन्नं परि चिनुषे) स्वकीय मुख में या मुखसमान मृत्यु में∷ अन्नरूप में समेट लेता हैꣳ अनन्तर (अभिसृष्टः) उन्हें अभिसृष्ट करता उत्पन्न करता है तो उस तुझ परमात्मा के धर्म गुण विभूतियां प्रलय के अनन्तर ऐसे ही प्रतीत होते हैं जैसे मेघ के अन्धकार में बिजलियां रात्रि के अन्धकार में उषा के गतिप्रवाह प्रतीत हो रहे हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद् वितिष्ठसे ।

❀ "श्रीर्वै धर्मः" [जै० ३।२३१]
† "पर्जन्यो वर्षा" [जै० २।५१]
‡ "इतिश्च मे गतिश्च मे" [तै० सं० ४।७।५।२]
° "जगत्य ओषधयः" [श० १।२।२।२]
* "वनम्-उदकनाम" [निघ० १।१२]
§ "वनं रश्मिनाम" निघ० १।५]
∷ "मुखं मृत्युः" [काठ० २१।७]
ꣳ "अत्ता चराचरग्रहणात्" [वेदान्तदर्शन० १।२।६]

१ २ ३ २ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते यतन्ते रथ्यो३यथा पृथक् शर्धांꣳस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥२

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मन् ! (वातोपजूतः) मन से प्रीत—चाहा हुआ* (इषितः) स्तुति वाणी से प्रेरित (वशान्-अनु) वशवर्ती उपासकों के अनुकूल (तृषु) शीघ्र† (यत्-अन्ना वेविषत्-वितिष्ठसे) जो कि जड़ जङ्गम प्रजाओं को‡ व्याप कर विशेषरूप से विराजमान है (ते-अजरस्य धक्षतः) तुझ जरारहित पाप दग्ध करते हुए के समागमार्थ (आयतन्ते) उपासक जन पूर्ण यत्न करते हैं—या अपने अन्दर आयतन बनाते हैं (यथा रथ्यः पृथक् शर्धांसि) जैसे रथस्वामी—यात्री अपने अपने गन्तव्य प्राप्ति के लिए बलों का प्रयोग करते हैं° ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निꣳ होतारं परिभूतरं मतिम् ।
१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वा महो वृणते नान्यं त्वत् ॥३॥

(मेधाकारम्) मेधाजनक* (विदथस्य प्रसाधनम्) वेदन—अध्यात्मानन्दलाभ का प्रधान साधन§ (होतारम्) दिव्य गुणों

* "न वै वातात् किञ्चनाशीयोऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयोऽसि तस्मादाह वातो वा मनो वा" [श० ५।१।४।८] "देवजूतं.... देवप्रीतम्" [निरु० १०।२८]

† "तृषु क्षिप्रनाम" [निघ० २।१५]

‡ "अन्नं विशः" [श० २।१।३।८]

° "शर्धः-बलनाम" [निघ० २।६]

* "यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ॥" [यजु० ३२।१४]

§ "विदथा वेदनेन" [निरु० ३।१२]

के लाने वाले सब पर स्वामित्व करने वाले (मतिम्) उपासकों के मानकर्ता (अग्निम्) ज्ञानप्रकाशस्वरूप (त्वाम्) तुझ परमात्मा को (अर्भस्य हविषः) थोड़े हाव भाव के भेंट करने को (महः) बहुत भेंट करने को (समानम्-इत्) समानरूप में (त्वा वृणते) तुझे वरते हैं (त्वत्-अन्यं न) तुझ से भिन्न को नहीं ॥३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—उरुचक्रिः (महती योगक्रिया वाला)

देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरक और अपनी ओर वरणकर्ता परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२ १ २ ३ १२ २२ ३१
पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
१ ३ १ २ ३२
मित्र वꣳसि वाꣳ सुमतिम् ॥१॥ ऋ०-५-६०-१

(वरुण मित्र) मुझे अपनी ओर वरण करने वाले मुक्ति प्राप्ति के लिए, मुझे संसार में तदर्थ कर्म करने भुक्ति—भोग पाने के लिए प्रेरित करने वाले परमात्मन् ! (नः) हमारे लिए (पुरु-उरुणा) बहुत बहुत करके (अवः-नूनं चित्-हि वाम्-अस्ति) रक्षण जो है निश्चित तेरा है (सुमतिं वंसि) मुझ उपासना वाले को चाहता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ता वाꣳ सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च ।
३ १ २
वयं वां मित्रा स्याम ॥२॥ ऋ०-५-६०-२

(अद्रुह्वाणा) द्रोह न करते हुए (× × ×

उस (इषम्) मनोभाव को कामना को (च) और (धाम) धाम—मोक्षधाम को (अश्याम) प्राप्त करूं (वयम्) हम (मित्रा स्याम) मित्र हो जायें ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २
पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
साह्याम दस्यूं तनूभिः ॥३॥

(मित्रा) हे मित्र—प्रेरक तथा वरुण—वरने वाले परमात्मन् ! (नः) हमारी (पायुभिः) रक्षा साधनों से (पातम्) दोषों से बचाओ (उत) तथा (सुत्रात्रा) उत्तम त्राणसाधन से (त्रायेथाम्) त्राण कर (तनूभिः) अपने अङ्गों से (दस्यूम्) क्षय करने वाले दोषों को (साह्याम) सहन करें—दबा सकें ॥३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—कुरुसुतिः (अध्यात्मयज्ञ के ऋत्विजों की विभूति वाला*)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः ।
१ २ ३ २ ३ २
सोममिन्द्र चमूसुतम् ॥१॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (चमूसुतं सोमं पीत्वा)

* "कुरवः-ऋत्विङ् नाम" [निघ० ३।१८]

योग की भूमि और मूर्धा अभ्यास वैराग्य के आधार पर* सम्पन्न उपासनारस को पान कर स्वीकार कर (ओजसा सह-उत्तिष्ठन्) स्वकीय ओज तेज के साथ उठाता हुआ† (शिप्रे-अवेपयः) नासिका के दोनों छिद्र‡—प्राण उदान को चलादे—प्रशस्तरूप से चला दे। हमारे उपासनारस को पान कर हमें जीवनरस—दीर्घ जीवनरस—स्थिर जीवनरस मोक्ष का प्रदान कर ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमान मददेताम्।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (यत्-दस्युहा-अभवः) जब हमारे क्षय करने वालों—काम आदि दोषों का हननकर्ता होता है तो (त्वा स्पर्धमान-अनु मददेताम्) तुझे स्पर्धमान—संघर्ष—परास्त करते हुए को° लक्ष्य कर (उभे रोदसी) मानो दोनों आकाश और पृथिवी हर्षित होते हैं* आकाशचारी पक्षी और पृथिवीवासी प्राणी हर्षित होते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम्।
२ ३ १ २ ३क२र
इन्द्रात् परितन्वं ममे ॥३॥

* "चम्वौ द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०] "भूमिः प्रमा..... दिवं यश्चक्रे मूर्धानाम्" [अथर्व० १०।७।३२]

† अन्तर्गतणिजर्थः

‡ "क्षिप्रे हनू-नासिके वा" [निरु० ६।१६]

° "सुपां सुलुक्......" [अष्टा० ७।१।३९] इति अमो लुक्।

* दकारोपजनश्छान्दसः।

(ऋतावृधम्) अमृतवर्धक* (अष्टापदीम्) स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जप† ये चार पाद तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार साधनरूप पाद इन आठों पाद वाली (नवस्रक्तिम्) नौ दिशाओं‡—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार, कोण दिशा चार, ऊपर दिशा में व्यापने वाली (वाचम्) वाणी को (इन्द्रात्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के आश्रय से (तन्वं परिममे) सूक्ष्मा परिष्कृत करूं—बनाऊं ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न भोग को धारण करने वाला)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ २ १र २र
इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत ।
१ २ ३ २
पिबत२ शम्भुवा सुतम् ॥१॥

(शम्भुवा-इन्द्राग्नी युवाम्) हे कल्याण को भावित करने वाले ऐश्वर्यवन् तथा प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तुम्हें (इमे स्तोमाः—अभि-अनूषत) ये स्तुतिसमूह बहुत स्तुतिरूप में प्रस्तुत हैं° (सुतं पिबतम्) निष्पन्न उपासनारस को पान करो—स्वीकार करो ॥१॥

* "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६]

† "ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति अथर्वभिर्जपन्ति" [काठ० संक० २७।१]

‡ "दिशः स्रक्तयः" [का० श० ५।८।१।६]

° कर्मणि कर्तृप्रत्ययः, पुरुषव्यत्ययश्छान्दसः ।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
९९२ या वाꣳ सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥२॥ ऋ० ६-६०-८

(नरा इन्द्राग्नी) हे नायक ऐश्वर्यवन् और ज्ञानप्रकाशवन् परमात्मन्! (वाम्) तुम्हारे (याः) जो (पुरुस्पृहः) बहुत स्पृहणीय (नियुतः सन्ति) नियमनीय—निरन्तर या अन्दर धारण करने योग्य अध्यात्मसम्पदाएं ज्ञानप्रकाशधाराएं* हैं (दाशुषे) अपने को—अपना समर्पण करने वाले के लिए (ताभिः-आगतम्) उनके साथ आओ ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
९९३ ताभिरागच्छतं नरोपेदꣳ सवनꣳ सुतम्।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥३॥ ऋ० ६-६०-९

(नरा-इन्द्राग्नी) हे जीवननेता ऐश्वर्यवन् और ज्ञानप्रकाश-स्वरूप परमात्मन्! (इदं सवनं सुतम्-उप) इस निष्पादनस्थान हृदय तथा निष्पन्न उपासनारस की ओर (ताभिः-आगच्छतम्) उन अपनी अध्यात्मसम्पदाओं और ज्ञानप्रकाशधाराओं के साथ आओ (सोमपीतये) उपासनारस पान करने स्वीकार करने के लिए ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भृगुर्जमदग्निर्वा (ज्ञान में भृज्यमान† पक्व या प्रज्वलित ज्ञान अग्नि वाला)

---

* "नियुतो नियमनात्" [निरु० ५।२७]

† "भृगुर्भृज्यमानो न देहे" [निरु० ३।१७]

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
२ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन् योनौ वनेष्वा ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४२०)

३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
१ २ ३ १ २
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥२॥

(अप्साः सोमाः) व्यापक शान्तस्वरूप परमात्मा† (इन्द्राय) आत्मा के लिए (वायवे) मन के लिए‡ (वरुणाय) प्राण के लिए° (मरुद्भ्यः) ओज वीर्य के लिए* (विष्णवे) श्रोत्र के लिए❀ (अर्षन्तु) प्राप्त हो, इन सब के अन्दर शान्ति का प्रवाह चले ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यँ सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २
आ पवस्व सहस्त्रिणम् ॥३॥

---

† "अप्सो नाम व्यापिनः" [निरु० ५।१३] बहुवचनमादरार्थम् ।

‡ "मनो वायुः" [काठ० १३।१]

° "यः प्राणः स वरुणः" [गो० २।४।११]

* "ओजो वै वीर्यं मरुतः" [जै० ३।३०९]

❀ "यच्छ्रोत्रं स विष्णु" [गो० २।४।१२]

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (नः-तोकाय-इषं दधत्) हमारे सन्तान के लिए लौकिक कमनीय वस्तु को धारण कराता हुआ (अस्मभ्यं सहस्रिणं विश्वतः-आपवस्व) हम उपासकों के लिए सहस्रगुणित—सहस्रों में ऊंची कमनीय वस्तु मोक्ष-ऐश्वर्य सब प्रकार से समस्त क्रियाकलाप के फलरूप प्राप्त करा। मोक्ष-सुख या अध्यात्मसम्पदा तभी प्राप्त होती है जब पुत्र की लौकिक कमनीय निर्वाहक वस्तु पिता प्रदान कर जावे उसके लिए प्रार्थना है॥ ३॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—बृहती।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
९९८ सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधिष्णुभिरवीनाम्।
५१५ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १२
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥१॥
ऋ॰ ९-१०६-८

(देखो अर्थव्याख्या पू॰ पृ॰ ४१९)

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९९९ अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः। (अक्षाः-अश्नुते, क्षरति-क्षियति निघण्टु॰)
३ २उ ३ १ २ ३ १२ २२
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते॥२॥
ऋ॰ ९-१०७-९. नि॰ ५-२

(गोमान् गोभिः-अनूपे-अच्छाः) गौओं वाला गोपाल गौओं के साथ जैसे अनूप देश—जलाधान स्थान की ओर प्रस्थान करता है* ऐसे (सोमः-दुग्धाभिः-अच्छाः) शान्तस्वरूप परमात्मा उपासकों द्वारा प्रपूरित की हुई उपासनारस धाराओं के साथ व्याप्त होता है प्राप्त होता है (संवरणानि समुद्रं न-अग्मन्) जैसे रिक्त स्थान को भरने वाले जल अन्त में समुद्र की ओर चले जाते हैं ऐसे (मन्दी मदाय तोशते) हर्ष आनन्ददाता परमात्मा हर्ष आनन्दप्रवाह पहुँचाने के लिए सन्तोषयितव्य उपासक के अन्दर† ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (राग वन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३क२ ३ २र ३ १र २र ३ १ २
यत् सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
१ २ ३ १र २र
तन्नः पुनान आभर ॥१॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (यत्) जो (चित्रम्) चायनीय, जीवन में, या अन्तरात्मा में, धारण करने योग्य

* लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

† 'तोशते—तोष्टयितव्ये' तुश सन्तोषे वैदिकधातुः, यद्वा वर्णव्यत्ययश्छान्दसः ।

(उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (दिव्यं पार्थिवं वसु) दिव्य भी है, पार्थिव भी है मोक्ष में प्राप्त होने योग्य अमृतधन तथा पार्थिव—इस पृथिवी से उत्पन्न शरीर में प्राप्त होने वाला अध्यात्मधन ध्यान से प्राप्त होने योग्य है (तत्-नः) उसे हमारे लिए (पुनानः-आभर) पवित्र करता हुआ आभरित कर ॥ १ ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा पुनान आयूꣳषि स्तनयन्नधि बर्हिषि ।
२ ३ २उ ३ १ २
हरिः सन् योनिमासदः ॥२॥

(वृषा हरिः पुनानः सन्) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू कामनावर्षक दुःखापहारी सुखाहारी शोधक होता हुआ (बर्हिषि-अधि-आयूंषि स्तनयन्) आयुओं जीवन के दिनों को, सारे दिनों में अध्यात्मप्रवचन करता हुआ प्रवृद्ध अन्तःस्थल में (योनिम्-आसदः) हृदय घर में आ विराज ॥ २ ॥

देवता—सोमेन्द्रा (शान्तस्वरूप और ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
युवꣳ हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
३ १ २ ३ १ २
ईशाना पिप्यतं धियः ॥३॥

(सोम-इन्द्रः-च) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् और इन्द्र ऐश्वर्यवान् भी (युवं हि) तुम दोनों नामों से भी (स्वःपती) सुख के स्वामी (गोपती) स्तुति वाणी के पात्र (ईशाना) और स्वामी (स्थः) हो (धियः पिप्यतम्) कर्मों—अध्यात्मकर्मों का* विस्तार करो ॥ ३ ॥

* "धी कर्मनाम" [निघ० २।१]

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के अन्दर अधिक गतिमान्)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
२उ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३३८)

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥२

(वीर) हे वीर्यवान् स्वाधारबलसम्पन्न परमात्मन् ! ❀ तू (सेन्यः-हि-असि) अकेला हि सेना जितना बल वाला है अथवा कामादि विरोधी सेना को विजय करने में समर्थ है (भूरि परादादिः) अत्यन्त पर—अभीष्ट अनुकूल गुणों का आदान करने वाला—अपनाने वाला है† अत एव (दभ्रस्य चित्-वृधः-असि) अल्प—थोड़े अभीष्ट गुण वाले का भी बढ़ाने वाला है (सुन्वते यजमानाय) उपासनारस निष्पन्न करने वाले उपासक आत्मा के

❀ "स ह वीरो य आत्मन एव वीर्यमनुवीरः" [जै० २।२८२]

† 'पर-आददिः' आङ्पूर्वकाद् दाधातोः किः प्रत्ययः "आदृगमहन-जनः किकिनौ लिट् च" [अष्टा० ३।२।१७१]

लिए (ते भूरि वसु) तेरा जो बहुत धन मोक्षैश्वर्य है उसे भी (शिक्षसि) दे देता है* ॥ २ ॥

३ ३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् । युङ्क्ष्वा मदच्युता
२ ३ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दध ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३४१)

द्वितीय तृच

ऋष्यादयः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३क २र १र २र ३ १
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः । या इन्द्रेण सया-
२ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३३७)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः । प्रिया इन्द्रस्य
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥

(अस्य इन्द्रस्य) इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा की उसके सम्बन्ध की (ताः पृशनायुवः पृश्नयः) वे स्पर्श को चाहने वाली† वाणियां‡ (सोमं श्रीणन्ति) उपासनारस को पक्व करती—सम्पन्न करती हैं क्योंकि (प्रियाः-धेनवः) प्यारी धेनु हैं उसे दुहने वाली हैं जो

---

* "शिक्षति दानकर्मा" [निघ० ३।२०]

† स्पृशधातोः क्युः प्रत्ययः औणादिकः सकारलोपश्च छान्दसः ।

‡ "वाग् वै पृश्निः" [काठ० ३४।१]

कि (वज्रं सायकं हिन्वन्ति) उपासक के लिए वज्र दोष वर्जित भोग के अन्त करने वाले अध्यात्म मार्ग की ओर ले जाती हैं॥ (वस्वीः-अनु स्वराज्यम्) उपासक आत्मा के स्वराज्य के अनुकूल ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

(अस्य) इस इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा की (ताः प्रचेतसः) वे प्रगति देने वाली वाणियां (नमसा सहः सपर्यन्ति) परमात्मा का नम्रभाव से स्तवनरूप सेवन करती हैं (अस्य पुरूणि व्रतानि पूर्वचित्तये सश्चिरे) इस परमात्मा के बहुत नाना नियमों को पूर्वकर्म के लिए—प्रथम ही श्रेष्ठ कर्म करने के लिए† प्राप्त करते हैं—सेवन करते हैं‡ (वस्वीः-अनुस्वराज्यम्) बसाने वाली है आत्मा के स्वराज्य के अनुकूल होती है ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

॥ "वज्रः कस्माद् वर्जयतीति सतः" [निरु० ३।११]

† "चित्तिभिः कर्मभिः" [निरु० २।९]

‡ "सश्चाति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

१ २ ३ १२ १२ ३ १२ २२ ३ २
प्रत्नान्यᳪ᳭शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
३१२ ३ १ २
श्येनो न योनिमासदत् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९०)

३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥२॥

(नृभिः सुतम्) मुमुक्षु जनों* द्वारा सोतव्य उपासना द्वारा निष्पन्न करने योग्य (शुभ्रम्) प्रकाशमान (अन्धः) आध्यानीय—चिन्तनयोग्य (देववातम्) विद्वानों उपासकों से प्राप्त होने योग्य (अप्सु धौतम्) श्रद्धा† से निर्मल किए हुए सोम—शान्त स्वरूप परमात्मा को (गावः) स्तोता—उपासकजन‡ (पयोभिः स्वदन्ति) आन्तरिक साधनों मन बुद्धि चित्त अहङ्कार से° स्वाद लेते हैं ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय ।
२ ३ १ ३ ३ १ २
मधो रसᳪ᳭ सधमादे ॥३॥

(आत्) अनन्तर—पुनः (सधमादे) साथ होकर—परमात्मा के साथ होकर जहां माद—हर्ष आनन्द अनुभव किया

* "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८६]
† "श्रद्धा वा आपः" [तै० ३।२।४।१]
‡ "गौ स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]
° "अन्तर्हितमिव वा एतद् यत् पयः" [तां० ६।६।३]

जाता है उस हृदयप्रदेश में (मधोः) मधुमय—सोम—शान्त परमात्मा के (रसम्-अश्वं हेतारं न) व्यापनशील तथा प्रेरणा देने वाले आनन्दरस को सम्प्रति* (अमृताय) अमृत—मोक्ष पाने के लिए (अशूशुभन्†) प्राप्त कर प्रशंसित करते हैं स्तुत करते हैं।

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—ऊर्ध्वसद्मा (ऊंचे—मोक्ष को सदन बनाने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—कुकप्-बृहती।

३ २ ३२ ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
१२ २२ ३ १ २
विकोशं मध्यमं युव ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७५)

छन्दः—सतो बृहती।

१ २ ३क २२ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १२
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १२ ३ १२
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥२॥

(सुदक्ष) हे श्रेष्ठ बल वाले शान्तस्वरूप परमात्मन्! (चम्वोः सुतः) योग की भूमिरूप अभ्यास और द्यौः—मूर्धारूप वैराग्य

---

* "न सम्प्रत्यर्थे" [निरु० ६।८]

† "शुम्भ भाषणे" [भ्वादि०]

में सम्पन्न हुआ—साक्षात् हुआ (विशां वह्निः-न विश्पतिः) उपासकरूप प्रजाओं का निर्वाहक प्रजापालक राजा के समान होता हुआ (आवच्यस्व) आ जा—प्राप्त हो* (दिवः-वृष्टिं पवस्व) अपने अमृतधाम से आनन्दवृष्टि को प्रेरित कर (अपः-रीतिं जिन्वन्) कामनाओं† की गति को प्रेरित करता हुआ (गविष्टये धियः) स्तोता की इष्टि—इच्छापूर्ति के लिए धारणाएं साधित कर ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (परमात्मा को तीन ढङ्ग से प्राप्त करने में कुशल)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

३ १र २उ३ १ २ ३ ३२ ३ १२
प्राणा शिशुर्महीनाᳩं हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४६९)

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १र २र ३ २
उप त्रितस्य पाष्योरभक्त यद् गुहा पदम् ।
३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
यज्ञस्य सप्तधामभिरध प्रियम् ॥२॥

(यत् पदं गुहा) जो सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्रापणीय पद हृदय गुहा में है (त्रितस्य पाष्योः) स्तुति प्रार्थना

* "वञ्चति गतिकर्मा" [निघ० २।१४] नकारलोपश्छान्दसः ।

† "आपो वै सर्वे कामाः" [का० १०।४।५।१५]

उपासना तीनों का विस्तार करने वाले योग के गतिक्रमों※ अभ्यास और वैराग्य में (उप-अभक्त) सेवन करता है (यज्ञस्य सप्तधामभिः) ज्ञान यज्ञ के सात धामों सात छन्दों के द्वारा† (अध प्रियम्) अनन्तर प्रिय परमात्मा को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१०१५ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद् रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥ ऋ० ९-१०२-२

(त्रितस्य) स्तुति प्रार्थना उपासना को तानने वाले उपासक के (त्रीणि) तीन कर्मों को (धारय) धारण कर (पृष्ठेषु रयिम्-ऐरयत्) सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा इन्द्रियों के अन्दर‡ वीर्य° संयमबल को प्रेरित करता है (सुक्रतुः) सम्यक् कर्ता उपासक (अस्य) इस परमात्मा के (योजना) योग साधनों को (विमिमीते) विशेष सम्पादन जब करता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—रेभः (स्तोता*)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

※ "पष गतौ" [चुरादि०]

† "छन्दांसि वा अस्य सप्त धाम प्रियाणि" [श० ९।२।३।४४]

‡ "इन्द्रियाणि वै पृष्ठानि" [जै० १।२५४]

° "वीर्यं वै रयिः" [श० १३।४।२।१३]

* "रेभः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६]

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥१॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (वाजसातये) अमृत अन्न भोग† सम्भक्ति प्राप्ति के लिए (पवित्रे) हृदयस्थान में (धारया सुतः) धारणा ध्यान से निष्पन्न साक्षात् (इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः) आत्मा के लिए व्यापनशील मन के लिए और इन्द्रियों के लिए (मधुमत्तरः पवस्व) अत्यन्त मधुमय हो कर प्राप्त हो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वाꣳ रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
३ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥२॥

(पवमान त्वां हरिम्) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ दुःखापहर्ता सुखाहर्ता को (धीतयः) प्रज्ञाएं–उपासना-प्रज्ञाएं (अद्रुहः) सब द्रोहरहित सङ्गत होकर (पवित्रे) हृदय के अन्दर (रिहन्ति) अर्चित करतीं हैं पूजती हैं—सम्मानित करती हैं‡ (जातं वत्सं न मातरः-विधर्मणि) नवजात बच्चे—पुत्र को जैसे माताएं आदि विविधधर्म में वर्तमान हुई—माता, चाची, ताई, बुआ, मौसी, मामी आदि भिन्न भिन्न बाह्य वस्तुओं से तथा स्नेह से स्वागत करती हैं ॥ २ ॥

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]
‡ ऋतस्य धीतिः-ऋतस्य प्रज्ञा" [निघ० ३।१४]
० "रिहति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

२र २र ३१र २र
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥३॥

(महिव्रत पवमान) हे महान् कर्मशील परमात्मन् ! (त्वम्) तू (द्यां च पृथिवीं च) द्युलोक और पृथिवीलोक को (अति जभ्रिषे) अत्यन्त धारण करता है (महित्वना) अपनी महिमा से (द्रापिम्-अपि-अमुञ्चथाः) समस्त संसार की रक्षा के लिए परिमण्डलरूप कवच—दृढ़ घेरे को भी धारण किए हुए है ॥३॥

पञ्चम तृच—

ऋषिः—मन्युः (परमात्मा की अर्चना करने वाला*)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४४२)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१र २र ३ १ २
अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३१र २र
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥२॥

(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (अध) अनन्तर (मध्वा

* "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

धारया) मधुर ध्यान धारणा से (पृचानः) सम्पर्क करता हुआ (अद्रिदुग्धः) स्तुतिकर्ता उपासक* के हृदय में निष्पादित (तिरः-रोम पवते) हृदय के सूक्ष्म तन्तुओं को† लांघ कर हृदय-आकाश में प्राप्त होता है (इन्द्रस्य देवस्य सख्यं जुषाणः-देवः) दिव्य गुणवाले आत्मा से मित्रभाव को प्रिय करता हुआ—चाहता हुआ परमात्मदेव (मत्सरः-मदाय) हर्षप्रद हर्ष आनन्द देने के लिए प्राप्त होता है ॥ २ ॥

अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥३॥

(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (व्रतानि-अभि पवते) अपने नियत कर्मों को अभिप्राप्त होता है—पूर्ण करता है (पुनानः-देवः) प्राप्त होता हुआ परमात्मदेव (देवान्-स्वेन रसेन पृञ्चन्) इन्द्रियों को अपने आनन्दरस से सम्पृक्त करता हुआ—सयुक्त करता हुआ (ऋतुथा धर्माणि वसानः) समय समय पर धारणसामर्थ्यों को आच्छादित करने का हेतु हुआ (दश क्षिपः) विषयों में क्षिप्त—जाने वाली दश इन्द्रियों के सम्भजन स्थान मन में पहुंच जाता है ॥ ३ ॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसुश्रुतः (सबके बसाने वाले परमात्मा का श्रवण जिसने किया ऐसा उपासक)

---

* "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५]

† "लोमानि हृदये श्रितानि" [तै० ३।१०।८।८]

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पंक्तिः ।

१०२२ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

ऋ० ५.६.४

(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव ! (ते द्युमन्तम्-अजरम्-आ-इधीमहि) तुझ* दीप्तिमान् अजर देव को हम अपने अन्दर पूर्णरूप से प्रकाशित करें—साक्षात् करें (यत्-ह ते स्या पनीयसी समित्) पुनः तेरी जो अत्यन्त स्तुत्य दीप्ति है (द्यवि दीदयति) द्युलोक मोक्षधाम में प्रकाशित है चमकती है† (इषं स्तोतृभ्यः-आभर) उस कमनीया को स्तुतिकर्ता उपासकों के लिए आभारित करदे ॥ १ ॥

१०२३ आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते । सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यꣳ हूयत इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥२॥

ऋ० ५.६.५

(ज्योतिषः-पते) हे ज्योति के स्वामिन् ! (सुश्चन्द्र) उत्तम आह्लादक—हर्षान्दकारी (दस्म) दर्शनीय‡ (विश्पते) समस्त प्राणी प्रजा के पालक (हव्यवाट्) हमारी भेंट को प्राप्त करने वाले स्वीकार करने वाले (ते शुक्रस्य) तुझ निर्मल की (ऋचा

---

* 'ते—त्वाम्' विभक्तिव्यत्ययः ।

† "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

‡ "दस दर्शने" [चुरादि०]

हविः) स्तुति के साथ स्वात्मा† (तुभ्यं हूयते) तेरे लिए दिया जाता है समर्पित किया जाता है (स्तोतृभ्यः-इषम्-आभर) हम स्तुतिकर्ताओं के लिये कमनीय स्वरूप को आभरित कर ॥ २ ॥

१२ २२ ३ १२ ३ १२
ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आभर ॥३॥

(सुश्चन्द्र विश्पते) हे उत्तम आह्लादक जड़ जङ्गम प्रजाओं के स्वामी ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (उभे दर्वी) दोनों दर्वियां—दारण करने वाली नष्ट करने वाली इन्द्रिय विषयभुक्ति और मनोवासना को जो दो चक्की के पाटों के समान चकनाचूर करने वाली हैं‡ उन्हें (आसनि-आ श्रीणीषे) अपने स्वरूप में पका देता गला देता या आश्रय दे देता है° (उत-उ) और (शवसः पते) हे बल के स्वामिन्! (उक्थेषु) प्रशंसावचनों में स्तुतियों के प्रतीकार में (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओं के लिए (इषम्-आभर) कमनीय मुक्ति शान्ति को आभरित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधा वाला)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)
छन्दः—उष्णिक् ।

† "आत्मा वै हविः" [काठ० ८।५]
‡ "निर्ऋतिगृहीता वै दर्विः" [मै० १।१०।१६]
° "न घा त्वद्रिगपवेति मे मनः त्वमिष्टकामं पुरुहूत शिश्रिये" [ऋ० १०।४३।२]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३२२)

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वꣳ सूर्यमरोचयः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (अभिभूः-असि) तू संसार पर या सब पर अधिकारकर्ता है (त्वं सूर्यम्-अरोचयः) तू सूर्य—जगत् प्रकाशक पिण्ड को चमकाता है—प्रकाशित करता है† (विश्वकर्मा) विश्व—संसार को रचने—घड़ने वाला‡ (विश्वदेवः) सब का इष्टदेव (महान्-असि) तू महान् सर्व-महान् है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
३ २ ३ १ २
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (ज्योतिषा विभ्राजन्) अपने प्रकाश से प्रकाशित हुआ (दिवः-रोचनम्) द्युलोक का रोचन° प्रकाशक हुआ (स्वः-आगच्छः) मोक्षधाम को प्राप्त है,

† "इन्द्रः सूर्यमरोचयत्" [ऋ० ८।३।६]

‡ किं स्विद् वनं क उ स वृक्षो यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः" [ऋ० १०।८१।४]

° 'रोचनः' विभक्तिव्यत्ययेन अम् ।

वहां तेरा ही प्रकाश है* (देवा:) मुमुक्षु जन (ते सख्याय येमिरे) तेरी मित्रता के लिए अपने को संयम में ढालते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति प्रवृत्ति रखने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

१ २ ३   १ २   ३ १ २   ३ १ २
अस्तावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २   ३ २उ   ३   २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियँ रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २८७)

१ २   ३   १ २   ३ २   ३ १ २ ३ १ २
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
३   २ ३   २ ३ २ ३   १ २   ३ १ २
अर्वाचीनँ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२॥

(वृत्रहन्) हे पापनाशक† ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (रथम्-आतिष्ठ) रमणीय निष्पाप मन में आ विराज (ते हरी ब्रह्मणा युक्ता) तेरे प्रिय तुझ को लाने वाले ऋक् और साम‡ स्तुति और उपासना वेद द्वारा जोड़ दी हैं (ते मनः) तेरे मन को (ग्रावा)

---

* "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति" [मुण्डको० २।१०]

† "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

‡ "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [मैं० ३।१०।६]

स्तुति करने वाला विद्वान्* (वग्नुना) स्तुति वाणी† से (अर्वाचीनं सुकृणोतु) मुझ उपासक की ओर भली भांति कर दे ॥ २ ॥

१०३० इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणाᳪं सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ ३ ॥

ऋ० -१-८४-२

(अप्रतिधृष्टशवसम्-इन्द्रम्) अन्य से प्रतिघात को न प्राप्त होने योग्य बल वाले परमात्मा को (हरी-इत्) हरियां ही—ऋक् साम—स्तुति उपासना ही (उप वहतः) वहन करती हैं (ऋषीणां स्तुतीः) ऋषियों—मन्त्रद्रष्टाओं की मन्त्रस्तुतियों को (च) और (मानुषाणां यज्ञम्) मनुष्यों के अध्यात्मयज्ञ को लक्ष्य कर परमात्मा प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ।

—()-:०:-()—

---

* "विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३।९।३।१४]

† "वग्नुः-वाङ्नाम" निघ० १।११]

अथ सप्तम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—अकृष्टमाषाः (बिना बोए स्वतः प्राप्त माष खाने वाले उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

१०३) १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
१ १ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
दधाति रत्नँ स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१

(मदिन्तमः) अत्यन्त हर्षस्वरूप—अत्यानन्दस्वरूप (मत्सरः) हर्षप्रद सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (यज्ञस्य ज्योतिः) अध्यात्म-यज्ञ का प्रकाशक (प्रियं मधु पवते) उपासक को प्रिय मधुर रसमय रूप में प्राप्त होता है (देवानां पिता जनिता) दिव्य गुणों का रक्षक और उत्पन्न करने वाला (विभूवसुः) सर्वत्र वास करने वाला महाव्यापक है (स्वधयोः-अपीच्यं रत्नं दधाति) द्युलोक पृथिवीलोक के अन्दर* अन्तर्हित† अपने विभूतिरूप रमणीय धन को धारण कराता है (इन्द्रियः-रसः) वह ऐसा परमात्मा इन्द्र—उपासक आत्मा का हितकर रस है॥ १ ॥

---

* "स्वधे द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]

† "अपीच्यम्-अन्तर्हितनाम" [निघ० ३।२५]

अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२॥

(वाजी) अमृत अन्न भोग वाला (दिवः पतिः) अमृतधाम-मोक्ष का स्वामी (शतधारः) असंख्य आनन्दधारा वाला (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा—सर्वद्रष्टा सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अभिक्रन्दन् कलशम्-अर्षति) साक्षात् उपदेश देता मधुर संवाद करता हुआ पात्र* उपासक को प्राप्त होता है, पुनः (हरिः) वह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (मित्रस्य सदनेषु) मित्रभूत उपासक आत्मा के शक्तिस्थानों में—मन आदि में (सीदति) बैठ जाता है ऐसा वह (वृषा) कामनावर्षक (सिन्धुभिः-अविभिः) स्यन्दनशील—आगे बढ़ती हुई योगभूमियों के साथ निरन्तर गति करता हुआ प्राप्त होता है ॥ २ ॥

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि।
अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (पवमानः) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला (सिन्धूनाम्-अग्रे-अर्षसि) मेरे शरीर में स्यन्दमान होती हुई या शरीर को बांधने सम्भालने वाली प्राणनाडियों† को पूर्व आत्मा में प्राप्त है (वाचः-अग्रे-अग्रियः-गोषु गच्छसि) तू वाणी के प्रथम ही अग्रिय—अगवा

* 'कलशः' इति सामान्यपात्रार्थवाची।

† "प्राणो वै सिन्धुः" [श० ८।५।२।४] "तद् यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० उ० १।६।२।६]

स्तोताओं* के निमित्त प्राप्त होता है जो मैं तुझे कहना चाहता हूँ तू प्रथम ही समझ लेता है (वाजस्य अग्रे महद् धनं भजसे) अमृत अन्न भोग के प्रथम ही मुझे उसं उत्कृष्ट धन का भागी बनाता है (स्वायुधः सोतृभिः सूयसे) अच्छी आयु—मोक्ष के जीवन को धारण कराने वाला तू उपासना द्वारा निष्पादन करने वाले उपासकों के द्वारा साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कश्यपः (नियन्त्रित मन से परमात्मा के आनन्द-रस का पान करने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१०२४ / ५२२ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥१॥ ऋ० ९-६४-४

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९६)

१०२५ शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
पवन्ते वारे अव्यये ॥२॥ ऋ० ९-६४-५

(ऋतायुभिः) अमृतधाम† को चाहने वाले उपासकों द्वारा (गभस्त्योः) प्रजा—सन्ततिकर्म‡ त्याग वाले अभ्यास और

* "गौः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

† "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०]

‡ "विड् वै गभः" [श० १३।२।९।६]

वैराग्य के अन्दर (मृज्यमानाः) प्राप्यमाण साक्षात् किया जाता हुआ* (शुम्भमानाः) शोभमान परमात्मा (वारे-अव्यये पवन्ते) वरणीय रक्षणीय हृदय में प्राप्त होता है ॥ २ ॥

1025 १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
१ २ ३ १र २र
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥३॥ ऋ० ९.६४.६

(ते सोमाः) वह शान्तस्वरूप परमात्मा (दाशुषे) स्वात्मा को देने समर्पित करने वाले उपासक के लिये (विश्वा) सारे (दिव्यानि-आन्तरिक्ष्या पार्थिवा वसु पवन्ताम्) द्युलोक वाले अन्तरिक्ष लोक वाले पृथिवीलोक वाले ज्ञानधनों या वाससाधनों प्राणों को† प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

तृतीय दशर्च

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

1026 १ २ ३ १र २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व देववीरति पवित्रꣳ सोम रꣳह्या ।
१ २ ३ १र २र
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१॥ ऋ० ९.२.१

(सोम-इन्दो) हे शान्तस्वरूप आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (देववीः) देवों—मुमुक्षु जनों को प्राप्त होने वाला (रंह्या)

* "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।२४] बहुवचनमादरार्थम् ।

† "प्राणा वाव वसवः तेषां देवानां वायं वसासीत्" [जै० १।१४२]

वेग से (पवित्रम्-अतिपवस्व) पवित्र हृदय को सुन्दर रूप में प्राप्त हो (वृषा) कामवर्षक (इन्द्रं विश) उपासक आत्मा में प्रवेश कर ॥ १ ॥

1038 आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥२॥ ऋ० ९-2-2

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (वृषा) सुखवर्षक (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त यशस्वी (प्सरः) भोगप्रद* (महि-आ वच्यस्व) महत्त्व आदेश दे† (धर्णसिः) बलवान्‡ (योनिम्-आसदः) हृदयगृह में° आ विराज ॥ २ ॥

1039 अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥३॥ ऋ० ९-2-3

(सुतस्य वेधसः) उपासक अन्तरात्मा में निष्पादित—साक्षात् किए जगद्विधाता परमात्मा के (धारा) धारणा ध्यान से (प्रियं मधु-अधुक्षत) प्रिय अमृत को दुहता है (सुक्रतुः-अपः-वसिष्ट) जो सुप्रज्ञान वाला श्रद्धा में* बस जाता है ॥ ३ ॥

※ "प्सा भक्षणे" [अदादि०] ततो मत्वर्थीयो 'रः' प्रत्ययः, यथा मधुरः ।

† 'आवचयस्व'—"वच परिभाषणे" [चुरादि०]

‡ "धर्णसिः-बलनाम" [निघ० २।९] मतुब्लोपश्छान्दसः ।

° "योनिः-गृहनाम" [निघ० ३।४]

* "आपो वै श्रद्धा" [श० ७।५।२।१८]

३ १ २   ३ १र   २र   ३ १ २
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
१र   २र   ३ १ २
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥४॥

(त्वा महान्तम्-अनु) तुझ महान् शान्तस्वरूप परमात्मा की ओर (महीः-आपः सिन्धवः-अर्षन्ति) भारी संख्या में बहुतेरे उपासक जन※ स्यन्दमान—दौड़ते हुए प्राप्त होते हैं (यद्) जब तू (गोभिः-वासयिष्यसे) वाणियों से उपदेशवचनों से या स्तुतिवाणियों से—उनके प्रतिफल आनन्द से उन्हें वासित कर देता है ॥ ४ ॥

३   २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ २
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
१ २ ३ १ २   ३ २
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥५॥

(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (विष्टम्भः) जगत् का सम्भालने वाला, तथा (दिवः-धरुणः) मोक्षधाम की प्रतिष्ठा†—प्रतिष्ठान है (अस्मयुः) हम उपासकों को चाहने वाला (समुद्रः) आनन्दरसभरा—आनन्द को उछालने बखेरने वाला‡ वह परमात्मा (अप्सु मामृजे) उपासकजनों में प्राप्त होता है° ॥ ५ ॥

१ २ ३   २ ३ १ २ ३ २   ३ १र   २र ३ २
अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः ।
१र   २र
सꣳ सूर्येण दिद्युते ॥६॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४०६)

※ "मनुष्या वा आपः" [श० ७।३।१।२०]

† "प्रतिष्ठा वै धरुणम्" [श० ७।४।२।५]

‡ "समुद्रमनु प्रजाः प्रजायन्ते" [तै० सं० ५।२।६।१]

° "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

१०४२ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १२
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥७॥ ऋ० ९.२.६

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! (अपस्युवः गिरः) कर्म—वैदिक कर्म को चाहती हुई विधान के अनुसार चलती हुई वाणियां—स्तुतिवाणियां (ते) तेरे लिए (ओजसा) आत्मीय बल से हमारे द्वारा (मर्मृज्यन्ते) प्रेरित की जाती हैं* (याभिः) जिन से प्रेरित हुआ या जिनके द्वारा (मदाय शुम्भसे) हमारे हर्ष आनन्द देने के लिए तू शोभित हो रहा है—सत्कृत हो रहा है ॥७॥

१०४३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
२ ३ १ २ ३ २
तव प्रशस्तये महे ॥८॥ ऋ० ९.२.८

(घृष्वये मदाय-उ) काम आदि दोषों को धर्षित करने वाले दबा देने वाले आनन्द पाने के लिए (तं त्वा लोककृत्नुम्-ईमहे)† उस तुझ लोकों के कर्ता—रचयिता को प्रार्थित करते हैं तथा (तव) तेरी (महे प्रशस्तये) महती प्रशंसा स्तुति के लिए । तुझ से बलशाली आनन्द पाना और तेरी स्तुति करना यह लक्ष्य हम उपासकों का है और होना चाहिये ॥ ८ ॥

१०४४ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
३ २ ३ १ २ ३ २
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥९॥ ऋ० ९.२.१०

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (गोषाः) वाणी

* "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

† "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१९]

वेदवाणी का सेवन कराने वाला (नृषाः) जीवन्मुक्तों को※ सेवन कराने वाला (अश्वसाः) व्यापनशील मन का† सेवन कराने वाला (उत) और (वाजसाः) अमृत अन्नभोग का‡ सेवन कराने वाला (असि) है (यज्ञस्य पूर्व्यः-आत्मा) अध्यात्मयज्ञ—देवपूजा का° शाश्वतिक आत्मा—आधार है ॥ ९ ॥

३ २ ३ १र २र ३ १२
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया ।
३ १ २ ३ १ २
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥१०॥

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (मधोः-धारया) आनन्दरस की* धारा से (अस्मभ्यम्) हमारे※ (इन्द्रियं पवस्व) प्राण को§ प्राप्त हो—तृप्त कर (वृष्टिमान् पर्जन्यः-इव) जलवृष्टि करने वाले मेघ के समान—जैसे मेघ जलवृष्टि कर प्राण को तृप्त करता है ऐसे तू आनन्दवृष्टि करके तृप्त करा ॥ १० ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम दशर्च

ऋषिः—हिरण्यस्तूपः (सुनहरे स्तूप—लक्ष्य वाला या अमृत लोक∷ मोक्ष उच्च लक्ष्य जिसका है ऐसा उपासक)

※ "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

† "अश्वोऽसि…नृमणा असि" [तै० सं० ७।१।१२।१]

‡ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

° "यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" [भ्वादि०]

* "अन्तो वै रसानां मधु" [जै० १।२२४]

※ "षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि" [अष्टा० २।३।६२ वा.]

§ "प्राणा इन्द्रियाणि" [काठ० ८।१]

∷ "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० सं० ५।२।७।२]

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१॥

(पवमान सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्त-स्वरूप परमात्मन् ! तू (महि श्रवः) ऊंचे यश को (सन) सेवन करा—प्राप्त करा (च) और (जेषि) विरोधी भाव पर विजय करा (अथ) अनन्तर (नः-वस्यसः-कृधि) हमें श्रेष्ठ करो—बनाओ ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
सना ज्योतिः सना स्वाꣳर्विश्वा च सोम सौभगा ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (ज्योतिः सन अपनी ज्योति को सेवन करा—प्रदान कर (स्वः सन) अपने मोक्ष को सेवन करा—प्रदान कर (च) और (विश्वा सौभगा) सारे सौभाग्य इहलोक परलोक के सौभाग्य भी हमें सेवन करा (अथ नः-वस्यसः-कृधि) पूर्ववत् ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।
१ २ ३ १
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (दक्षम्-उत क्रतुं सन) आत्मबल को मानस सङ्कल्प को प्रदान कर (मृधः-अप-जहि) काम आदि घातकों को नष्ट कर । शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

१ २ ० ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४॥

(पवीतारः) हे मनन विवेचन स्मरण आत्मभाव द्वारा सम्मुख लाने वाले मन बुद्धि चित्त अहङ्कार ! तुम (सोमं पुनीतन) शान्तस्वरूप परमात्मा को विशुद्ध केवलरूप में लाओ (इन्द्राय पातवे) आत्मा के लिए रसरूप में पान करने को। शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वꣳ सूर्ये न आभज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥

(त्वम्) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (तव क्रत्वा) तेरे—अपने प्रज्ञान से (तव-ऊतिभिः) तेरी—अपनी रक्षाओं से (नः) हम उपासकों को (सूर्ये-आभज) अपने सूर्यस्वरूप स्वर्ग* मोक्षधाम में अपना ले पहुँचादे। शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

(तव क्रत्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरे—अपने प्रज्ञान से (तव-ऊतिभिः) तेरी—अपनी रक्षाओं से (सूर्यं ज्योक् पश्येम) उक्त तेरे—अपने सूर्यस्वरूप—स्वर्ग मोक्षधाम को चिर तक देखते रहें। मोक्ष में देर तक रहने की आकांक्षा है। शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

* "स्वर्गो वै लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमम्" [श० १२।६।२।८]

१०४३ ३क २र ३ १२ ३१२ ३१
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
१ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥ ऋ० ९.४.७

(स्वायुध सोम) हे सु—शोभन—सर्वोत्तम आयु—मोक्ष की आयु को धारण कराने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू उपासकों के लिए (द्विबर्हसं रयिम्) दो लोकों में बढ़ कर ऐश्वर्य—अभ्युदय और निःश्रेयस को (अभ्यर्ष) प्रेरित कर—प्राप्त करा। शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥ दोनों लोकों को बढ़ाने वाले

१०४४ ३ २ १२ ३ १२ ३१ २ ३२
अभ्यार्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥ ऋ० ९.४.८

(वाजिन्) हे अमृत अन्नभोग के स्वामिन्—दाता (अनपच्युतः) एक रस रहने वाला तथा जिससे उपासक अपच्युत नहीं होता तथा (सासहिः) स्वयं सहनशील तथा उपासकों को सहनशील बनाने वाला (समत्सु) तू हमें काम आदि के साथ संघर्ष अवसरों पर अध्यात्म हर्ष आनन्द प्रसङ्गों में* (अभ्यर्ष) प्राप्त हो। शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

१०४५ २ ३१२ ३ १२ ३ १ २
त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥ ऋ० ९.४.९

(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! (विधर्मणि) विशेष धर्म—अध्यात्म गुण लाभ के निमित्त

* "समदो वा मदतेः" [निरु० ९।१६]

(यज्ञैः) अध्यात्मयज्ञों के यम नियम आदि अङ्गों द्वारा (त्वाम्-अवीवृधन्-) तुझे उपासक जन अपने अन्दर प्रवृद्ध करते हैं। शेष पूर्ववत् ॥ ९ ॥

३ २ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमाभर।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (नः) हमारे लिए (चित्रम्) अद्भुत चायनीय अपूर्व सर्वोत्तम (अश्विनम्) अचल (विश्वायुं रयिम्)† पूर्णायुवाला पोष पुष्टि को (आभर) आभरित कर। शेष पूर्ववत् ॥ १० ॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षा करते हुए परमात्मा के आदेशानुसार चलने वाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २
तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।
२ ३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४०८)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः।
२ ३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥२॥

---

† "रयिं देहि पोषं देहि" [काठ० १।७]

(देवी-उस्रा) सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा की दिव्या आनन्दधारा ऊंचे प्रेरित करने वाली* उन्नति पथ पर ले जाने वाली (मर्तस्य वसूनाम्) उपासक मनुष्य के प्राणों को† (अवसः) रक्षण को (वेद) प्राप्त कराती है, अतः (मन्दी) परमात्मा की उस आनन्दधारा का पान करने वाला (सः) वह स्तुतिकर्ता (तरत्) पापों को तरता हुआ (धावति) प्रगति करता है ॥२॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।
२ ३ २ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥३॥

हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरे (ध्वस्रयोः) पापध्वंसकों (पुरुषन्त्योः) तुझ पुरुष—परमात्मा के समीप ले जाने वाले जप और अर्थभावन की (सहस्राणि-आदद्महे) सहस्रों आवृत्तियां करूं। ऐसा करने वाला संसार को तरता हुआ दौड़ा जा रहा है ॥ ३ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ ययोस्त्रिँ शतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥३॥

(ययोः-त्रिंशतम्) जिनके तीस—तीसों दिन रात (तना) धनों को‡ (सहस्राणि-आदद्महे) आवृत्तियां करता हूं। शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

---

* "उस्रा-उत्स्राविणो भोगा अस्याम्" [निरु० ४।१९)

† "प्राणा वै वसवः" [तै० ३।२।३।३]

‡ "तना धननाम" [निघ० २।१०]

तृतीय तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाला)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

३२र २र ३ १र २र ३ २
एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे ।
३ १ २ ३ १२
मदिन्तमस्य धारया ॥१॥

(एते सोमाः-गृणानाः-असृक्षत) यह स्तुति किया जाता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा* साक्षात् किया जाता है (महे शवसे) महान् आत्मबल प्राप्ति के लिए (मदिन्तमस्य धारया) अत्यन्त हर्षप्रद परमात्मा की धारणा से या स्तुतिवाणी से ॥ १ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २
अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
३ १ २ ३ १ २
सनद्वाजः परिस्रव ॥२॥

(पुनानः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू उपासकों को पवित्र करता हुआ (सनद्वाजः) शाश्वतिक अमृत अन्नभोग वाला (वीतये) तृप्ति के लिए (गव्यानि) स्तुति वाणी से सिद्धि वाले (नृम्णा) यशोभोग (अभि-अर्षसि) प्रेरित करता है, अतः तू (परिस्रव) हमारी ओर प्राप्त हो ॥ २ ॥

३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
३ २ ३ १ २
गृणानो जमदग्निना ॥३॥

* बहुवचनमादरार्थम् ।

(उत) अपि च—तथा (नः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् तू मेरे लिए (ष्टुभः-गोमतीः-विश्वाः-इषः) स्तुत्य—प्रशंसनीय प्रार्थना वाली सारी कामनाएं (जमदग्निना गृणानः) मुझ प्रज्वलित ज्ञानाग्नि वाले उपासक के द्वारा स्तुत किया जाता हुआ—स्तुति को प्राप्त हुआ (परि-अर्ष) परिपूर्ण कर ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतिकर्ता उपासकः*)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१

(इमं स्तोमम्-अर्हते जातवेदसे) इस स्तुतिसमूह को प्राप्त करने योग्य उत्पन्नमात्र को जानने वाले सर्वज्ञ परमात्मा को† (रथम्-इव) रमण साधन रथ के समान (मनीषया सम्महेम) हार्दिक भावना से सत्कृत करते हैं (अस्य संसदि प्रमतिः-नः-भद्रा हि) इस की सङ्गति में प्रकृष्ट मति—स्थिर बुद्धि कल्याणकारी हो जाती है, अतः (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् तेरी मित्रता में हम हिंसित न हो सकें ॥ १ ॥

---

* "कुत्सः कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३।११]

† द्वितीयार्थे चतुर्थी।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
भरामेध्मं कृणवामा हवीᳬंषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
वयम् । जीवातवे प्रतराᳬंसाधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा
३ १र २र
वयं तव ॥ २ ॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (पर्वणा पर्वणा) प्रति पर्व प्रति प्रातः सायं (वयम्) हम (चितयन्तः) सावधान होते हुए (ते) तेरे अन्दर (इध्मं भराम) अपने आत्मा को* समर्पित करें (हवींषि कृणवाम) मनःकामनाओं को† तेरे प्रति नमा दें (जीवातवे) दीर्घ जीवन—अमर जीवन—मोक्ष के लिए (धियं प्रतरां साधय) अध्यात्म कर्मों को प्रकृष्ट बना दे (ते सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता में न हिंसित हों ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
शकेम त्वा समिधᳬं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्या-
२ १ २ ३ १र २ ३ २ १र २र ३ १र २र
हुतम् । त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यूश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा
३ १र २र
वयं तव ॥ ३ ॥

(अग्ने त्वा समिधं शकेम) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! अपने अन्दर तुझ सम्यक् दीप्त—सम्यक् प्रकाशमान हुए को धारण करने में हम समर्थ हैं (त्वे धियः साधय) तू‡ हमारे अध्यात्मकर्मों को सिद्ध कर (देवाः-आहुतं हविः-अदन्ति) जीव-

---

* "आत्मा वा इध्मः" [तै० ३।२।१०।३]

† "मनो हविः" [तै० आ० ३।६।१]

‡ 'त्वम्-त्वे' "सुपां सुलुक्.....शे.....आलः" [अष्टा० ७।१।३९] इति सुस्थाने शे ।

न्मुक्त या मुक्त आत्माएं तुझ होमी हुई आत्महवि को—उसके प्रतिफल को मुक्ति में खाते हैं भोगते हैं (त्वम्-आदित्यान्-आवह) तू हमें अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति में रहने वाले अधिकारी सम्पादन कर—बना (तान्-उश्मसि) हम उन अपने मुक्त रूपों को चाहते हैं। शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—आदित्यः (अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति का स्वामी परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।
३ १ २ ३ १ २
अर्यमणं रिशादसम् ॥१॥ ऋ॰ ७.६६.७

(सूरे-उदिते) सूर्य* उदय होने पर (वां प्रति) तुझ प्रत्येक नाम से कहे जाने वाले (मित्रम्) संसार में प्रेरक (वरुणम्) अपनी ओर वरने वाले (रिशादसम्-अर्यमणम्) हिंसक—घातकों के फेंकने—भगाने वाले हिंसकों के क्षीण करने वाले हिंसकों को खा जाने वाले† सर्व स्वामी आदित्य‡ अखण्ड सुखसम्पत्ति के स्वामी परमात्मा को (गृणीषे) स्तुत करूं स्तुतिपात्र बनाऊ ॥१॥

---

* "सजूः सूरः·····सूर्यमेव प्रीणाति" [मै॰ ३।४।४]

† "रिशादसः-रेशयादासिनः" [निरु॰ ६।१४]

‡ "अर्यमाऽऽदित्योऽरीन्नियच्छति" [निरु॰ ११।३]

३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २
राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे ।
३ १र २र ३ १ २
इयं विप्रा मेधसातये ॥२॥

(विप्राः) हे विशेष कामनापूरक मित्र वरुण अर्यमा 'आदित्य' प्रेरक वरण करने वाले अखण्ड सुखसम्पत्ति के स्वामी परमात्मन्! (इयं मतिः) यह तेरी स्तुति* (हिरण्यया राया) सुनहरी धन—अध्यात्मज्ञान धन के साथ (अवृकाय शवसे) अहिंसक बल—शान्तिप्रसारक बल—अध्यात्मबल के लिए† (इयं मेधसातये) यह स्तुति अध्यात्मयज्ञ की‡ सम्पन्नता के लिए सिद्ध हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह ।
३ ३क २र
इषꣳ स्वश्च धीमहि ॥३॥

(देव वरुण ते स्याम) हे अपनी ओर वरने वाले परमात्मदेव! हम तेरे हों—तुझ से अलग न हों (मित्र ते) हे प्रेरक परमात्मन्! हम तेरे हों—तुझ से अलग न हों (सूरिभिः सह) स्तुतिकर्त्ताओं° के साथ हम से पूर्व स्तुतिकर्ता जैसे तेरे हो गये उनके साथ हम भी तेरे हो जावें उनकी श्रेणी में तेरे बन जावें ॥ ३ ॥

* "मन्यते-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]
† "शवः-बलनाम" [निघ० २।६]
‡ "मेधो यज्ञनाम" [निघ० ३।१७]
° "सूरिः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

तृतीय तृच

ऋषिः—त्रिशोकः (तीन ज्योतियों वाला मन, आत्मा, परमात्मा का ज्ञानी उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

1060
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदाभर ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पृ० पृ० ११४)

1061
यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसुं स्पार्हं तदाभर ॥२॥

(ते) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तेरे (यस्य भूरेः-दत्तस्य) जिस भारी दातव्य—देने योग्य 'धन' को ॐ (विश्वम्-आनुषक् वेदति) सब मनुष्य आनुपूर्व्य से† परम्परा से जानता है (तत् स्पार्हं वसु-आभर) उस स्पृहणीय स्वसमीप में बसाने वाले धन को हमारे लिए आभरित कर—दे दे—प्रदान कर ॥ २ ॥

1062
यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदाभर ॥३॥
(देखो अर्थव्याख्या पृ० पृ० १६५)

ॐ सर्वत्र षष्ठी द्वितीयार्थे ।

† "आनुषगिति नामानुपूर्व्यस्य" [निरु० ६।१४]

चतुर्थ तृच

ऋषिः—श्यावाश्वः (उच्च गतिशील या निर्मल इन्द्रियरूप घोड़े जिसके हों ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३१ ३२३ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (यज्ञस्य) अध्यात्मयज्ञ के (सस्नी) विशुद्ध (ऋत्विजा) याजक—यज्ञ कराने वाले (स्थः) हो (वाजेषु कर्मसु) वाज—अमृत अन्न भोगवाले* अध्यात्मकर्मों में वर्तमान (तस्य बोधतम्) उस अध्यात्मयज्ञ को जान—अपना ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२॥

(तोशासा) हे तुष्ट करने वाले ! (रथयावाना) संसाररथ पर आरूढ—संसाररथ के स्वामी—संसाररथ के चालक (वृत्रहणा) पापहन्ता (अपराजिता) किसी पराजित करने वाले से रहित (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (तस्य बोधतम्) उस अध्यात्मयज्ञ को जान—अपना ॥ २ ॥

* अकारो मत्वर्थीयः ।

1062 ३ १ २ ३१२ २२ ३ १ २ ३ १ २
इदं वा मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३॥ ऋ० ८-२८-२

(अद्रिभिः-नरः) 'श्लोककृद्भिः' प्रशंसा करने वाले स्तुति करने वाले* मुमुक्षुजन† (वाम्) तेरे लिए (इदं मदिरं मधु-अधुक्षन्) इस हर्षकर मधुर उपासनारस को दूहते हैं—प्रस्तुत करते हैं (इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्) हे ऐश्वर्यवन् ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! उस अध्यात्मयज्ञ को जान—अपना ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—कश्यपः (शासन में‡ आने योग्य मन से पान करने वाला अभ्यासी उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्त परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

1066 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
४७२ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥१॥ ऋ० ९-६४-२२

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९०)

---

* "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५]

† "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

‡ "कश शासने" [अदादि०]

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।
१ २ ३ १ २
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२॥

(तं त्वा धर्णसिम्) उस तुझ बलवान्‌ॐ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (वचोविदः-विप्राः) स्तुतिप्रकारवेत्ता विशेष प्रीति प्रदर्शित करने वाले विद्वान् (परिष्कृण्वन्ति) साक्षात् करते हैं (त्वा) तुझे (आयवः सं मृजन्ति) साधारण मनुष्य† अलंकृत—सत्कृत करते हैं अतः सर्वोपास्य है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे ।
१ २ ३ १ २
पवमानस्य मरुतः ॥३॥

(कवे) हे क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (ते पवमानस्य रसम्) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले के रस को (मित्रः-अर्यमा वरुणः-मरुतः पिबन्तु) मित्र—सर्व-मित्र—सब से स्नेह करने वाला‡ विशेषतः तेरे से स्नेह करने वाला, अर्यमा—तुझे स्वामी मानने वाला तेरे प्रति अपने को दे देने वाला समर्पणकर्ता°, वरुण—तुझे पूर्णरूप से वरने वाला अन्य से राग छोड़ देने वाला तथा मुमुक्षुजन* पीवें—पीते हैं पीने के अधिकारी हैं हम अधिकारी बनें ॥ ३ ॥

ॐ "धर्णसिः-बलनाम" [निघ० २।६] मतुप्प्रत्ययस्य लोपश्छान्दसः ।

† "आयवः-मनुष्याः" [निघ० २।३]

‡ "सर्वस्य ह्येव मित्रो मित्रम्" [श० ५।३।२।७]

° "यो ददाति सोऽर्यमा" [मै० २।३।६]

* "मरुतो देवविशः" [श० २।५।१।१२]

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवताः—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

३ १ २ ३१२ २२
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २२
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४२०)

३ २उ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद् वने ।
३ १ २ ३१२ २२ ३ १ २
देवानाꣳसोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२॥

(पवमान सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्त-स्वरूप परमात्मन् ! तू (गोभिः-अञ्जानः) स्तुतिवाणियों से सम्मुख झलकता हुआ (देवानां निष्कृतम्-अर्षसि) उपासकजनों के निर्मल हृदयस्थान को प्राप्त होता है (पवमानः पुनानः-वृषा-उ) धारारूप में आता हुआ पवित्रकारक सुखवर्षक बना (अव्यये वारे वने-अचिक्रदत्) अनश्वर वरने वाले सम्भजन करने वाले आत्मा में प्राप्त होता है ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं मोक्ष को चाहने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३-२ ३ १ २
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
१ २ ३ १ २
समादित्येभिरख्यत ॥१॥

(उ-एतं त्यम्) निश्चय उस इस (सिन्धुमातरम्) स्यन्दन-शील पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक की पदार्थशक्तियों के❁ मातृरूप या निर्माता को† (दश क्षिपः-मृजन्ति) दश फिंकी हुई फैली हुई दिशाएं प्राप्त हैं‡ वह ऐसा परमात्मा (आदित्येभिः-अख्यत) अदिति—अखण्डिता मुक्ति के साधनधर्मों शम, दम, योगाभ्या-सादि के द्वारा अन्तरात्मा में दृष्ट होता है साक्षात् होता है ॥ १ ॥

१२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।
१२ २२ ३ १ २
सꣳ सूर्यस्य रश्मिभिः ॥२॥

(सुतः) उपासना द्वारा निष्पन्न—साक्षात् हुआ सोम—शान्त-स्वरूप परमात्मा (पवित्रे) प्राप्तिस्थान हृदय में (इन्द्रेण-उत वायुना सम्-आ-एति) आत्मा से समागम करता है पुनः आयु° के साथ भी (सूर्यस्य रश्मिभि' सम्०) हृदय के* प्राणों के* साथ

❁ जिन से सारा संसार बंधा है "तद् यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० १।६।२।६]

† माता निर्माता भवति "माता निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि" [निरु० २।८]

‡ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० १०।१४]

° "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २।४।३]

* "असौ वा आदित्यो हृदयम्" [श० ६।१।२।६०]

* "प्राणा रश्मयः" [तै० ३।२।५।२]

समागम करता है। आत्मा में परमात्मा का समागमलाभ हुआ तो आत्मा की अमर आयु मुक्ति की आयु और सांसारिक जीवन की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।
१ २ ३ १२ २२
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥३॥

(सः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (नः) हमारे (भगाय) आध्यात्मिक ऐश्वर्य या आत्मिक तेज※ के लिए (वायवे) मन† या मनोविकास के लिए (पूष्णे) शारीरिक पुष्टि‡ के लिए (मधुमान् पवस्व) मधुररूप होकर प्राप्त हो (मित्रे वरुणे च चारुः) प्राण°, श्वास और अपान* उच्छ्वास के निमित्त भी अनुकूल रूप हो, प्राप्त हो ॥ ३ ॥

—:o:—

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

※ "भगश्च मे द्रविणं च मे यज्ञेन कल्पेताम्" [तै० सं० ४।७।३।१]

† "मनो वायुः" [काठ० १३।१]

‡ "पुष्टिर्वै पूषा" [काठ० ३१।१]

° "प्राणो वै मित्रः" [श० ६।५।१।५]

* "अपानो वरुणः" [श० ८।४।२।६]

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १२७)

आ घ त्वावां त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।
ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥२॥

(धृष्णो) हे काम आदि दोषों के धर्षक—धकेलने वाले इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वावान् घ) तुझ जैसा† तू ही है (स्तोतृभ्यः-ईयानः) स्तुतिकर्ताओं द्वारा प्राथ्र्यमान—प्रार्थना किया जाता हुआ उनके लिए उनके साथ (त्मना युक्तः) अपने स्वरूप से युक्त हुआ (चक्रयोः-अक्षं न) रथ के पहियों में अक्ष—धुरा दण्ड के समान (आ-ऋणोः) समन्तरूप से उन्हें गति दे‡ मोक्ष की ओर ले जा ॥ २ ॥

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३॥

(शतक्रतो) हे बहुत—अनन्त ज्ञानकर्मवन् परमात्मन् ! तू

† "युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसंख्यानम्" [अष्टा० ५।२।३९ वा.] इति मतुप्]

‡ "ऋणोति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

(जरितृणाम्) स्तुतिकर्त्ताओं के* (यत्-दुवः कामम्-आ-ऋणोः) जो परिचरणीय† सेवनीय सुख है उसे कामनानुसार प्राप्त करा (शचीभिः-अत्यं न-आ) कर्मों से‡ गतिक्रियाओं से जैसे अश्व—रथस्वामी के गन्तव्य प्राप्तव्य को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

३ २३१२ ३१ ३ ३१ २
सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
३ २ ३ १ २
जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥१॥

(देखो अथव्याख्या पू० पृ० १३२)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उप नः सवनागहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
३ २र ३ २ ३ १ २
गोदा इद्रेवतो मदः ॥२॥

(सोमपाः) हे सोम—उपासनारस के पीने वाले—स्वीकार करने वाले इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (नः) हमारे (सवना-उप-आगहि) उपासनावसरों में उपगत होओ—प्राप्त होओ (सोमस्य पिब) उपासनारस को* पान कर—स्वीकार कर

---

* "जरिता स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

† "दुवस् परिचरणे" [कण्ड्वादि०] ततः क्विप् ।

‡ "शची कर्मनाम" [निघ० २।१]

* द्वितीयार्थे षष्ठी ।

(रैवतः-मदः-गोदाः-इत्) तुझ रेवान्—ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए* समर्पित उपासनारस मुझ उपासक के लिए ज्ञानप्रद और हर्षकारी हो—है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
मा नो अतिख्य आगहि ॥३॥

(अथ ते) और हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तेरे (अन्तमानाम्) अत्यन्त समीपी† (सुमतीनाम्) उत्तम मति वालों—सुमेधावियों—जीवन्मुक्तों के‡ समान° (विद्याम) हम तुझे जानें (मा नः-अतिख्य) मत हमें अपने दर्शन से वञ्चित कर, अतः (आ गहि) तू हम तक आ—यह गहरी आकांक्षा है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मान्धाता (मान्-मिति स्थिति को धारणकर्ता)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—महापंक्तिः ।

३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनाꣳ सम्राजं चर्षणीनाम् ।

---

* "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" [अष्टा० २।३।६२]
† "अन्तमानाम्-अन्तिकनाम" [निघ० २।१६]
‡ "मतयः-मेधाविनाम" [निघ० ३।१५]
° अत्र लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

३ १२ २२ ३ १२ २२
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥ ऋ० १०.१३४.१

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३१५)

१७०७ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
दीर्घं ह्यङ्कुशं यथाशक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १२ २२
पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः ।
३ १२ २२ ३ १२ २२
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥ ऋ० १०.१३४-६

दण्डधार परमात्मा.

(मन्तुमः-मघवन्) हे ज्ञानवन्—सर्वथा ज्ञानवन्† ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (दीर्घम्-अंकुशं यथा) बड़े अंकुश की भांति (शक्तिं बिभर्षि) शक्ति को तू धारण करता है (पूर्वेण पदा वयाम्-अजः-यथा यमः) अगले पैर से बकरा शाखा को‡ स्वायत्त करता है ऐसे तू प्रकृति को स्वायत्त करता है, वह (जवित्री देवी-अजीजनत्) उत्पादिका देवी संसार को उत्पन्न करती है (भद्रा जनित्री-अजीजनत्) कल्याणकारिणी उत्पादिका उत्पन्न करती है ॥ २ ॥

जनित्री

१७०८ १ २ ३ १२ २२ ३ २
अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ।
३ १२ २२ ३ १२ २२
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥ ऋ० १०.१३४-२

मर्तस्य) मनुष्य के (दुर्हणायतः स्थिरम्) दुराधर्ष—गहन

† "मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि" [अष्टा० ८।५।१]
‡ "वयाः शाखाः" [निरु० १।४]

दबाने वाले काम आदि दोष के* सत्त्वस्वरूप को (अव तनुहि स्म) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! निर्बल करदे (तम्-इम्-अधस्पदं कृधि) उसको अवश्य नीचे कर दबा दे (यः-अस्मान्-अभिदासति) जो हमें क्षीण करता है या दबाता है। आगे पूर्ववत् ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

१०९३ ८६४ — १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥१॥ ऋ० ९.१८.१.

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९२)

१०९४ — २उ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २र
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्रजातमन्धसः।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥२॥ ऋ० ९.१८.२

(त्वं विप्रः) हे सोम-शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू विशेष रूप से तृप्त करने वाला (त्वं कविः) तू क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (अन्धसः)

---

* "दुर्हणायून् दुराधर्षान्" [निरु० १४।२६]

तुझ अध्यात्नीय उपासनीय का (मधु प्रजातम्) मधुर रस प्रसिद्ध है (मदेपु सर्वधा-असि) हर्ष आनन्द देने वालों में—का सर्वधारक आधार तू है ॥ २ ॥

१०९४ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
१ २ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥३॥ ऋ० ९.१८.३

(विश्वे देवासः सजोषसः) सारे मुमुक्षु विद्वान् तुझ से समान प्रीति रखने वाले (त्वे पीतिम्-आशत) तेरे आधार पर अमृतपान का स्वाद लेते हैं। आगे पूर्ववत् ॥ ३॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—ऋणञ्चयः (तीनों ऋण चुकाने वाला)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१०९५ ५८३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ १ १र २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
२ ३ १ २ ३ १
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१॥ ऋ० ९.१०८.१३

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७८)

१०९६ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
१र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥
ऋ० ९.१०८.१४ पाठ-भेद

(यस्य ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन्! जिस तेरे आनन्दरस को (इन्द्रः पिबात्) उपासक आत्मा पीता है (यस्य

मरुतः) जिस तेरे आनन्दरस को मुमुक्षुजन* पीते हैं (वा) और† (अर्यमणा भगः) आत्मसमर्पणकर्ता जन‡ तथा साथ ही भाग्यशाली आत्मतेजवाला पीता है (महे-अवसे येन मित्रा-वरुणा-आकरामहे) महती रक्षा के लिए जिस तुझ परमात्मा के द्वारा प्राण अपान को स्वच्छ प्रबल बनावें (इन्द्रम्-आ) जिस तुझ परमात्मा के द्वारा स्वात्मा को भी स्वच्छ प्रबल बनावें बनाते हैं उस तेरा समागम स्तवन करते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (अध्यात्म पर्व वाला और नर-सम्बन्धी सुख—अध्यात्म उपदेश देने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

१०८८ ५६८

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१॥ -११२६ ऋ० ९-१०५-१

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४६८)

१०८९ ११२८

२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
३ १२ २२ ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२॥ ऋ० ९-१०५-२

(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मा ! (देवावीः)

* "मरुता देवविशः" [श० २।५।१।१२]
† "अथापि वा समुच्चयार्थे भवति" [निरु० १।५]
‡ "यो ददाति सोऽर्यमा" [मै० २।३।६]

मुमुक्षु उपासकों का रक्षक (मदः) हर्षकारी (मतिभिः परिष्कृतः सम् अज्यते) स्तुतिवाणियों के द्वारा※ परिपुष्ट हुआ सम्मुख आता है† साक्षात् होता है (मातृभिः-हिन्वानः-वत्सः-इव) दूध पिलाने वाली माताओं के द्वारा वर्धित‡ पोषित हुए बच्चे के समान ॥२॥

३ १२ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
अयं दक्षाय साधनोऽयꣳ शर्धाय वीतये ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥३॥

(अयं सुतः) यह साक्षात् हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा (देवेभ्यः-मधुमत्तरः) मुमुक्षुजनों के लिए अत्यन्त मधुररसरूप है (अयं दक्षाय साधनः) यह समृद्धि* का° साधने वाला है (अयं शर्धाय वीतये) यह बल—आत्मबल⁕ का साधने वाला और कामपूर्ति का साधने वाला है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—मनुः (परमात्मा का मनन करने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

※ "वाग् वै मतिर्वाचा हीदं सर्वं मनुते" [श० ८।१।२।७]

† "अञ्जु व्यक्ति·····" [रुधादि०]

‡ "हि वृद्धौ" " [स्वादि०]

* "अथ यदस्मै तद् समृध्यते स दक्षः" [श० ४।१।४।१]

° "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" [अष्टा० २।३।६२] इति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी।

⁕ "शर्धः बलनाम" [निघ० २।९]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४४९)

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३२
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२॥

(ते सोमासः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा* (विपश्चितः) मेधावी जनों को चेताने वाला, महामेधावी (दध्याशिरः) ध्यान से† मिश्रण करने वाले उपासक के ध्यान से मेल करने वाला (सूरासः-न दर्शतासः) सूर्य‡ के समान दर्शनीय (जिगत्नवः) सर्वत्र गतिमान् (घृते ध्रुवा) स्वतेज में° स्थिर—कभी तेजोहीन न होने वाला है उसकी उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥३॥

(गोः-अधित्वचि) स्तुतिवाणी के* प्रस्ताव में§—प्रवल स्तुति-

* बहुवचनमादरार्थम् ।

† "दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" [निरु० १२।३]

‡ "सजूः सूरः·····सूर्यमेव प्रीणाति" [मै० ३।४।४]

° "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।७]

* "गौः वाङ्नाम" [निघ० १।११[

§ "त्वक् प्रस्तावः" [ज० उ० १।१२।२।६]

प्रसङ्ग में (अद्रिभिः) श्लोकः*—प्रशंसा—स्तुति करने वालों के द्वारा† (सुष्वाणासः) सम्यक् उपासित किया हुआ (विचितानः) विशेष चेताने वाला (वसुविदः) ऐश्वर्यप्राप्त—सकलैश्वर्यवान् परमात्मा (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिए (अभितः) सब ओर से‡ (इषं समस्वरन्) कामना को सम्प्रेरित कर—प्रदान कर° ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतिकर्ता)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

अया पवा पवस्वैना वसूनि माꣳश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४४३)

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिꣳ सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥२॥

(श्रवाय्यस्य श्रुते-अधि तीर्थे) हे सोम—धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तुझ श्रवणीय के प्रसिद्ध तराने के साधनस्थान

* "स्वरश्च मे श्लोकश्च मे यज्ञेन कल्पताम्" [तै० सं० ४।७।१।८]
† "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५]
‡ "अभितः सर्वतोभावे" [अव्ययार्थ निबन्धने]
° "स्वरति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

में—अध्यात्मस्थल हृदय में (उत) अपि—अवश्य (नः) हमारे लिए (एना पवया) इस पावनधारा से (पवस्व) प्राप्त हो (नैगुतः) निगुत—अपने अन्दर आमन्त्रण शब्द करने वाले का इष्टदेव* तू सोम—परमात्मा (षष्टिं सहस्रा वसूनि) साठ हजार असंख्य प्रकार वाले† बसाने वाले अध्यात्म सुखैश्वर्यों को (रणाय) रमण के लिए प्रदान कर (वृक्षं न पक्वं धूनवत्) वृक्ष जैसे पके फल को नीचे झाड़ देता गिरा देता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २
महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥३॥

(अस्य) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के (इमे मही वृष नाम) महान् कामवर्षण—उपासकों के लिए कमनीय पदार्थों की वृष्टि करना और नास्तिकों को नमाना—दबाना दण्ड देना ये दो धर्म‡ (शूषे) सुखरूप—सुखकर° और बलरूप* हैं (मांश्चत्वे) मननीय (वा) और (पृशने) स्पर्शनीय—स्मरणीय और (वधत्रे) वध से त्राण करने वाले हैं (निगुतः) आन्तरिकभाव से तुझे आमन्त्रित करने वालों को (अस्वापयत्-च) और शान्ति की नींद सुलाता है (स्नेहयत्) स्नेह करता है (अमित्रान्-अप-

* नि—निहितो भूत्वा शब्दयति-आमन्त्रयति यस्त्वां स 'निगुतः' "गुङ् शब्दे" [भ्वादि०] तस्य इष्टदेवो नैगुतः ।

† जसे लोक में कहा जाता है 'सौ वर्ष तक जीवे एक एक वर्ष के दिन हों साठ हजार' ।

‡ 'वृषा च नाम च-वृषनाम' "सुपां सुलुक्...." [अष्टा० ७।१।३९]

° "शूषं सुखनाम" [निघ० ३।६]

* "शूषं बलम्" [निघ० २।९]

अचेतः) शत्रुओं—नास्तिकों को मूढ बनाता है (अचितः-अप) धर्मकर्मरहितों को मूढ बनाता है ॥ ३ ॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—बन्धुवर्गः (परमात्मा के स्नेह में बँधने वाला उपासक वर्ग)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मा)

छन्दः—द्विपदा निचृद् विराट् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३२ ३१ २ ३क २२
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३६७)

१ २३१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२॥

(अग्निः) अग्रणी परमात्मा (वसुः) उपासक को अपने में वास देने वाला (वसुश्रवाः) वसाने वाला धन† जिसके पास है (द्युमत्तमः) अत्यन्त प्रकाशवान्—सर्वप्रकाशक (अच्छ नक्षि) तू भली प्रकार व्याप्त है (रयिं दाः) मोक्षैश्वर्य को प्रदान कर ॥२॥

१ २ ३ १२ ३१२ ३ १ २
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥

(शोचिष्ठ) हे अत्यन्त दीप्तिमन् ! (दीदिवः) तेजस्वी पर-

† "श्रवः-धननाम" [निघ० २।१०]

मात्मन्! (तं त्वा) उस तुझे (सखिभ्यः) 'सखायः'† हम तेरे सखि मित्र उपासक (सुम्नाय) सुख के लिए‡ (नूनम्-ईमहे) निश्चय प्रार्थित करते हैं—प्रार्थना में लाते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—भौवन आप्त्यः (विश्वविज्ञान में स्वयं आप्त)

देवता—विश्वेदेवा इन्द्रश्च (सर्व दिव्य गुण वाला परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३२उ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३६९)

३ १ २ ३क २र २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥२॥

(नः) हमारे (यज्ञं च) आत्मा को° और (तन्वं च) शरीर को (प्रजां च) और प्रजा पुत्र शिष्य को (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (आदित्यैः सह) अदिति—मुक्ति के अधिकारी मुमुक्षु जीवन्मुक्तों के द्वारा सिद्ध बनावे ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥३॥

(आदित्यैः) अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति के अधिकारी जीवन्मुक्तों (मरुद्भिः) मुमुक्षु जनों के साथ (सगणः)

---

† विभक्तिव्यत्ययः ।

‡ "सुम्नं सुखनाम" [निघ० ३।६]

° "आत्मा वै यज्ञः" [श० ६।२।१।७]

गणवान् होता हुआ (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (भेषजा करत्) सुखों को† प्रदान करे ॥ ३ ॥

ऋषि:—सम्पातः (स्तुति प्रार्थना उपासना का मेल करने वाला)

देवता—उषाः (परमात्मा की ज्योति—झलक झांकी)

छन्दः—द्विपदा त्रिष्टुप् प्रतीकपृष्ट्या ।

१ २र
प्र वोऽर्चोप ॥

(वः) हे उपासक जनो ! तुम‡ जिस परमात्मा की ज्योति सब ज्योतियों की ज्योति है उस परमात्मा की (प्र) प्रार्थना करो (अर्च) 'अर्चत' अर्चना—स्तुति करो (उप) उपासना करो ॥

यह सायणमत में एक मन्त्र है। परन्तु माधव ने अपने विवरण में पूर्वाचिक में आये तीन मन्त्रों का प्रतीक रूप माना है जो मन्त्र निम्न हैं :—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३६५)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १र २र
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३६५)

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्रः ॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३६४)

इति सप्तमोऽध्यायः ॥

---

† "भेषजं सुखनाम" [निघ० ३।६]

‡ 'वः' विभक्तिव्यत्ययः ।

अथ अष्टम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम द्वादशर्च

ऋषिः—वासिष्ठो वृषगणः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले से सम्बद्ध, वृषा—सुखवर्षक सोम†—शान्त परमात्मा के लिए गणा‡—स्तुतिवाणी जिसकी है वह ऐसा उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः— त्रिष्टुप् ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क२र ३ १ २
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पू० ४२६)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
प्र हꣳसासस्तृपलावग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
अङ्गोषिणं पवमान सखायो दुर्मर्षं वाणं प्रवदन्ति साकम् ॥२॥

(हंसासः-तृपला वृषगणाः) वासनाओं को हनन किए हुए

---

† "वृषा वै सोमः" [जै० ३।२४]

‡ "गणा वाङ् नाम" [निघ० १।११]

ब्राह्मण❀ तृप्त—आप्तकाम† सुखवर्षक सोम—परमात्मा के उपासक जन (वग्नुम्-अच्छ) स्तुतिवाणी को‡ लक्ष्य कर—स्तुति करने° (अमात्-अस्तं प्र-अयासुः) रागभय से:: बचने को ध्यान स्थान पर§ प्राप्त होते हैं—पहुंचते हैं (सखायः) वे परमात्मा के सखि—मित्र उपासक (अङ्गोषिणम्) आङ्गूष—स्तोम* स्तुति-समूह जिसका है जिसके लिए है उस आङ्गूषी* (दुर्मर्षम्) दुःखनाशक (वाणीम्) आश्रयरूप (पवमानम्) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा को (साकं प्रवदन्ति) सङ्ग हो—पास हो प्रार्थना प्रस्तवन—प्रकृष्ट स्तवन—बढ़ कर स्तुति करते हैं ॥२॥

स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३॥

(सः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (उरुगायस्य) बहुत स्तुतिकर्ता कीꣵ (जूतिम्) प्रीति कोऽ (योजत) युक्त होता है—

❀ "ब्राह्मणा है वै हंसाः तृपलाः" [जै० ३।१७४]

† "कलस्तृपश्च" [उणा० १।१०४] 'तृप तृप्तौ' [तुदादि०] ततः कलः कर्तरिभूते ।

‡ "वग्नुः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]

° "अच्छाभेराप्तुमिति शाकपूणिः" [निरु० ५।२८]

:: "अमं भयम्" [निरु० १०।२१]

§ "अस्तं गृहनाम" [निघ० ३।४]

* "आङ्गूषः स्तोमः" [निरु० ५।११]

* आकारस्य ह्रस्वत्वम्, उकारस्य-ओत्वं च छान्दसम् ।

ꣵ "गायति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

ऽ "जूतिः प्रीतिः" [निरु० १०।२८]

अपनाता है (गावः) स्तोता—स्तुति करने वाले* (वृथा क्रीडन्तम्) निष्काम जगद्रचनारूप क्रीड़ा करते हुए† परमात्मा को (मिमते न) माप नहीं सकते हैं परिमित नहीं करते हैं (परीणसं कृणुते) क्योंकि बहुविध अन्नभोग्य‡ या जगत् को रचता है अतः उसे परिमित नहीं करते (तिग्मशृङ्गः) उत्साहक° शृङ्ग—ज्ञान-ज्वलन—ज्वालाएं रश्मियां वेदरूप जिसकी हैं* (दिवा नक्तम्) दिन रात (हरिः-ऋज्रः-ददृशे) वह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता एवं प्रेरक ऋजुमार्ग नायक उपासक को साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
सोमासो राये अक्रमुः ॥४॥

(स्वानासः) निष्पद्यमान—उपासित हुआ उपासना में लाया हुआ (श्रवस्यवः) उपासक को सुनाना चाहता हुआ (सोमासः) शान्तस्वरूप परमात्मा (राये) उपासक को मोक्षैश्वर्य प्रदान करने के लिए (रथाः-इव) रथ के समान (अर्वन्तः-न) घोड़ों के समान (प्र-अक्रमुः) प्रगति से प्राप्त होता हैऽ ॥ ४ ॥

---

* "गौ स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

† "लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्" [वेदान्त० २।१।३३]

‡ अन्नं वै परीणसम्" [जै० ३।१७४] "परीणसा बहुनाम" [निघ० ३।१]

° "तिग्मं तेजतेरुत्साहकर्मणः" [निरु० १०।६]

* "शृङ्गाणि ज्वलतोनाम" [निघ० १।१७] "चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः" [काठक सं० २५।१]

ऽ बहुवचनमादरार्थम् ।

३ २ ३ १ २ ३१र २र
११२० हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २
भरासः कारिणामिव ॥५॥ ऋ० ९-१०-२

(हिन्वानासः-रथाः-इव) आगे बढ़ते हुए रथ वाले घोड़ों के समान या (कारिणां भरासः-इव) शिल्पकारी कारीगरों के भरण करने वाले चलते हुए कला भागों के समान (गभस्त्योः-दधन्विरे) सन्तानत्याग*—गृहस्थत्याग भावना करने वाले या अज्ञानान्धकार को हटाने वाले अभ्यास और वैराग्य में सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
११२१ राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
३ १उ ३ २ ३ १ २
यज्ञो न सप्तधातृभिः ॥६॥ ऋ० ९-१०-३

सप्त ऋत्विग्भिः सप्तभाग भूमिभिः

(प्रशस्तिभिः-राजानः-न) प्रशस्त वाणियों—प्रशंसाओं से राजा लोग जैसे प्रसन्न होते हैं (सप्तधातृभिः-यज्ञः-न) सात होताओं ऋत्विजों के द्वारा† यज्ञ जैसे सम्पन्न या सुसिद्ध होता है ऐसे ही (गोभिः सोमासः-अञ्जते) स्तुतियों से शान्तस्वरूप परमात्मा प्रसन्न—साक्षात् होता है ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
११२२ परिस्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा। मधो अर्षन्ति धारया॥७
४८२ ऋ० ९-१०-४ (देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९२)

---

* "विड् वै गभः" [तै० ३।९।७।३] 'गभमन्धकारमस्यति—गभस्तिः' [उणा० ४।१८०-दयानन्दः]

† "धाता होता" [तै० २।२।८।४] "ते वै सप्त होतारो....होता, अध्वर्युः अचित्तपाजा, अग्नीध्—अग्नीध्रः, उपवक्ता, अभिगराः, उद्गाता" [मै० १।९।५]

३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम्।
२ ३ २ ३ १ २
सूरा अरवं वि तन्वते ॥८॥

(आपानासः) सर्वत्र व्यापक—सब को प्राप्त हुआ※ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (विवस्वतः-उषसः-भगं जिन्वन्तः) सूर्य के उषा के तेज और शोभा को† प्रेरित करता हुआ—सूर्य में तेज और उषा में शोभा को देता हुआ (सूराः) उपासना द्वारा निष्पन्न—साक्षात् हुआ परमात्मा (अरवं वितन्वते) अणु परिमाण वाले उपासक आत्मा को‡ विशेष उपकृत करता है° ॥ ८ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णो हरस आयवः ॥९॥

(प्रत्नाः कारवः) मुमुक्षु* स्तुति करने वाले§ (वृष्णः-हरसः-आयवः) सुखवर्षक सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के अपने अन्दर ग्रहण करने वाले जन ऽ (मतीनां द्वारा-अप-ऋण्वन्ति) अपनी मतियों बुद्धियों के द्वारों को हटा देते हैं खोल देते हैं:: ॥ ९ ॥

※ "व्याप्तिकर्माणः......आपान-आप्नुवानः" [निरु० ३।१०]

† "भगश्च मे द्रविणं च मे यज्ञेन कल्पेताम्" [तै० सं० ४।७।३।१]

‡ "तमणुमात्रमात्मानम्" [योगद० १।३६ पर व्यासभाष्यम्]

° "तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि०]

* "देवा वै प्रत्नम्" [मै० १।५।५]

§ "कारुः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

ऽ आयवः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३]

:: "ऋणु गतौ" [तनादि०]

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समीचीनास आशत होतारः सप्त जानयः ।
३ १२ २२ ३ १ २
पदमेकस्य पिप्रतः ॥१०॥

(सप्त जानयः) सात जाया—पत्नियां*—पत्नी की भांति रक्षणीय तथा हित साधने वाली मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, श्रोत्र, नेत्र और वाणी। परमात्मा का मन से मनन, बुद्धि से विवेचन, चित्त से स्मरण, अहङ्कार से अपनाना, श्रोत्र से श्रवण, नेत्र से विभूतिदर्शन, वाणी से स्तवन हितकर होता है, ऐसे (समीचीनासः) परमात्मा को सम्यक् प्राप्त करने वाले या योगयुक्त (होतारः) परमात्मा को आमन्त्रित करने वाले मुमुक्षु उपासक जन (पिप्रतः-एकस्य) विश्व को पूर्ण करने वाले महान् व्यापक अकेले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के (पदम्-आशत) स्वरूप या प्रापणीय मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
नाभा नाभिं न आददे चक्षुषा सूर्यं दृशे ।
३ १ २ २ २ ३ १ २
कवेरपत्यमादुहे ॥११॥

(नाभिं नः-नाभा-आददे) विश्व को अपने साथ बांधने वाले† विश्वकेन्द्रभूत तथा विश्व के मध्यरूप‡ सोम शान्तस्वरूप

---

* "पतिर्जनीनां पालयिता जायानाम्" [निरु० १०।२३] "ऋतुर्जनीनां कालो जायानाम्" [निरु० १२।४६] "देवानां वै पत्नीर्जनयः" [काठ० १९।७] 'जानिः' अकारस्य दीर्घत्वं छान्दसम्, लोकेऽपि भवति दीर्घप्रयोगः—युवतिर्जाया यस्य स युवजानिः ।

† "नाभिः सन्नहनात्" [निरु० ४।२१]

‡ "मध्यं वै नाभिः" [श० १।१।२।२]

परमात्मा को हमारे—अपने मध्य में—अन्दर ग्रहण करें अपनावें या आधान करें* (चक्षुषा सूर्यम्-आदृशे) पुनः ज्ञाननेत्र से सरणशील सर्वत्र व्यापनशील सोम—शान्त परमात्मा को समन्तात् देख सकूं साक्षात् कर सकूं (कवेः-अपत्यम्-आदुहे) स्तुतिकर्ता उपासक के न गिराने वाले†—रक्षक सोम—परमात्मा को समन्तरूप से दुह लूं—अपने अन्दर समा लूं या क्रान्तदर्शी परमात्मा के अपत्यरूप—उससे प्रादुर्भूत आनन्दरस को दुह लूं ॥ ११ ॥

1126

३ २ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।
१ २ ३ १ २
सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२॥ ऋ० ९.१०.९

(दिवः पदं प्रियम्) द्यौ—मोक्ष जिससे प्राप्त किया जावे उसके प्राप्तिनिमित्त सोम—शान्तस्वरूप प्रिय परमात्मा को (अध्वर्युभिः) मनोभावनाओं से‡ (गुहा हितम्) गुहा निहित कर दिये जैसे (सूरः-चक्षसा-अभि पश्यति) सेवन करने वाला उपासक अपनी ज्ञानदृष्टि से सम्मुख देखता है—साक्षात् करता है ॥ १२ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम द्वादशर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला)

---

* "दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः" [निरु० २।२]

† "अपत्यं नानेन पततीति" [निरु० ३।१]

‡ "मनो वा अध्वर्युः" [श० १२।३।१।५]

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २
असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
३ १ २ ३ १ २
विदाना अस्य योजना ॥१॥

(सुश्रियः) उत्तम शोभित करने वाले (इन्दवः) आनन्दरस-पूर्ण परमात्मा (ऋतस्य धर्मन्) अध्यात्मयज्ञ के धर्म में—आचरण में (पथा-असृग्रम्) योगाभ्यास मार्ग से प्राप्त होता है (अस्य योजना विदानाः) इस अध्यात्ममार्ग के युक्तिक्रमों को जनाता हुआ* ॥ १ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो विगाहते ।
३ २ ३ २ ३ १ २
हविर्हविःषु वन्द्यः ॥२॥

(मधोः-अग्रियः-धाराः) मधुर सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा की श्रेष्ठ आनन्दधाराएं (महीः-अपः-विगाहते) महन्त आप्त जनों† की ओर विगाहन करती हैं प्राप्त होती हैं (हविःषु हविः-वन्द्यः) सब हवियों में यह हवि स्तुतियोग्य है ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र ३र ३ १ २
प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद् वने ।
२ ३ २ ३ १ २ ३२
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥

---

* "योगो योगेन ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्तते" "तस्य भूमिषु विनियोगः" [योग द० ३।६ व्यासभाष्यम्]

† "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

(वृषा-उ) कामवर्षक (सत्यः-अध्वरः) सत्यस्वरूप और यज्ञरूप* सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अग्रियः-युजाः-वाचः) अग्र—आरम्भसृष्टि की युक्त—आनुपूर्वीरूप मन्त्रवाणियों को (वने सद्म) 'सद्मनि' सम्भजनस्थान ऋषियों के अन्तःकरण में (अभि प्र-अचिक्रदत्) साक्षात् हो प्रवचन करता है ॥ ३ ॥

१२१ परि यत् काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति ।
स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥ ऋ॰ ९-६-४

(कविः) क्रान्तदर्शी सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (यत्) कि जब (नृम्णा पुनानः) मन्त्ररूप ज्ञानधनों को भिराने हेतु (परि-अर्षति) सम्भजन स्थान ऋषियों के अन्तःकरण को परिप्राप्त होता है तब (स्वर्वाजी काव्या सिषासति) स्वः—मोक्ष भोग वाला—मोक्ष चाहने वाला उपासक आत्मा उन काव्यधनों मन्त्र-ज्ञानों को सम्भजन करना चाहता है ॥ ४ ॥

१२२ पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५॥ ऋ॰ ९-६-५

(वेधसः-यत्-ईम्-ऋण्वन्ति) उपासक मेधावी आत्माएं जब इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करते हैं† कर लेते हैं तो (पवमानः स्पृधः-अभि सीदति) आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा उनके साथ संघर्ष करने वाले पाप काम आदि दोषों को

---

* "तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" [ऋ०१०।९०।९]

† "ऋण्वन्ति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

दबा देता है (राजा-इव विशः) जैसे राजा प्रजा पर अधिकार करता है उनके उपद्रवों को दबा देता है ॥ ५ ॥

२ ३१२ ३ १२ ३ २उ ३ १ २
1123 अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
३ १ २ ३ २
रेभो वनुष्यते मती ॥६॥ ऋ० ९.७.६

(प्रियः-हरिः) प्रिय दुःखापहर्ता सुखाहर्ता परमात्मा (वनेषु) वनन—सम्भजनस्थलों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार अन्तःस्थलों में (अव्याः-वारे परि) पृथिवी के वारण—पार्थिव शरीर* से परे—उसे पार कर (सीदति) प्राप्त होता है, तब (मती रेभः-वनुष्यते) स्तुति से स्तुतिकर्ता सेवन करता है प्राप्त करता है ॥६॥

२ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १२ २र
1124 स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
२ ३ १ २ ३ १ २
रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥ ऋ० ९.७.७

(यः) जो उपासक (अस्य धर्मणा) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के धर्म—मद—हर्षानन्द प्राप्त करने से 'अस्मिन्'† इस ही सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा में (रण) रमण करता है‡ (सः) वह ऐसा उपासक (वायुम्) आयु को° (इन्द्रम्)

---

* "इयं पृथिवी वा अविः [श० ६।१।२।३३]

† 'अस्मिन्' इति पदमाकांक्ष्यते ।

‡ "रणाय रमणीयाय" [निरु० ९।२७] "नाहमिन्द्राणि रारण"" नाहमिन्द्राणि रमे" [निरु० ११।३९]

° "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २।४।३]

वाणी को* (अश्विना) श्रोत्रों को† (मदेन) उस हर्षानन्द को ले कर (गच्छति) प्राप्त होता है, उसके जीवन में हर्ष, वाणी में हर्ष, श्रवण में हर्ष रहता है ॥ ७ ॥

आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः ।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

(शक्मभिः) यम, नियम, आसन, प्राणायामादि, शम, दम आदि अध्यात्मकर्मों द्वारा‡ (अस्य) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (विदानाः) जाननेवाले हैं उन उपासकों के (मित्रे) प्राण में° (वरुणे) अपान में* (भगे) मस्तिष्कस्थ ओज मेंऽ (मधोः) मधुमय परमात्मा की (ऊर्मयः) आनन्दतरङ्गे—धाराएं (आ पवन्ते) समन्तरूप से पहुँच जाती हैं बस जाती हैं ॥ ८ ॥

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥

(रोदसी) हे विश्व के रोध—तट समान द्युलोक और पृथिवी लोक§ तुम अपने व्यापक रचयिता (मध्वः-वाजस्य सातये)

* "य इन्द्रः सा वाक्" [जै० १।१११।१२]
† "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० १२।६।१।१३]
‡ "शक्म कर्मनाम" [निघ० २।१]
° "प्राणो वै मित्रः" [श० ६।५।१।५]
* "अपानो वरुणः" [श० ८।४।२।६]
ऽ "भगश्च मे द्रविणं च मे यज्ञेन कल्पताम्" [तै० सं० ४।७।३।१]
§ "रोदसी रोधसी द्यावापृथिव्यौ" [निरु० ६।१[

मधुर सोम* शान्तस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिए (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिए (रयिं श्रवः-वसूनि) पोष—पोषण करने योग्य आहार† श्रवणीय ज्ञान और बसाने वाले साधनों को (सञ्जितम्) अपने अन्दर सम्पन्न करो ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥

(ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरे (मयोभुवम्) सुख को भावित करने वाले (वह्निम्) निर्वाहक (पान्तम्) पालन रक्षण करने वाले (पुरुस्पृहम्) बहुत स्पृहा योग्य चाहने योग्य (दक्षम्) बलस्वरूप को (अद्य) आज—अभी तुरन्त (आवृणीमहे) अपने अन्दर समन्तरूप से वरते हैं—धारण करते हैं ॥ १० ॥

२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥

(मन्द्रम्-आ) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तुझ हर्षकर‡ आनन्दप्रद को हम समन्तरूप से वरते हैं—अपने अन्दर धारण करते हैं° (वरेण्यम्-आ) वरने योग्य—अवश्य वरणीय

---

* "सोमो वै वाजः" [मै० ४।५।४]

† "रयिं देहि पोषं देहि" [काठ० १।७] "पुष्टं वै रयिः" [श० २।३।४।१३]

‡ "मदि स्तुतिमोदः·····" [भ्वादि०]

° 'आ' उपसर्ग पूर्वमन्त्र से 'वृणीमहे' क्रिया को आकर्षित करता है।

को अपने अन्दर समन्तरूप से धारण करते हैं (विप्रम्-आ) विशेष कामनापूरक को अपने अन्दर धारण करते हैं (मनीषिणम्-आ) स्वतः ज्ञानवान् को अपनाते हैं (पान्तम्-आ पुरुस्पृहम्) रक्षक को तथा बहुत चाहने योग्य को अपनाते हैं ॥ ११ ॥

११३९ आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥ ऋ० ९.६५.३०

(सुक्रतो) हे उत्तम प्रज्ञान कर्म वाले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (रयिम्-आ) तुझ धनरूप को अपनाते हैं (सुचेतुनम्-आ) तुझ सम्यक् चेताने वाले को अपनाते हैं (तनूषु-आ) अपने अङ्गों—अङ्ग अङ्ग में अपनाते हैं (पान्तं पुरुस्पृहम्-आ) तुझ रक्षक बहुत स्पृहणीय को अपनाते हैं ॥ १२ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को धारणकर्ता उपासक)

देवता—वैश्वानरोऽग्निः (विश्वनायक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

११४० मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पृ० ५८)

ऋ० ६-७-१

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
त्वां विश्वे अमृत जायमानꣳ शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥२॥

(अमृत वैश्वानर) हे अमृतस्वरूप या मरणरहित एकरस विश्वनायक परमात्मन् ! (विश्वे देवाः) ब्राह्मण—ब्रह्मज्ञानी—मुमुक्षुजन※ (त्वां जायमानम्-अभि सं नवन्ते) तुझे हृदय में प्रसिद्ध हुए—साक्षात् हुए परमात्मा को अभिसङ्गत होते हैं आलिङ्गित करते हैं† (शिशुं न) जैसे नव बालक को लोग आलिङ्गित करते हैं (तव क्रतुभिः) तेरे प्रज्ञानों—मन्त्रज्ञानों से‡ (अमृतत्वम्-आयन्) अमृतत्व—अमरत्व को प्राप्त हो जाते हैं (यत्) जब कि (पित्रोः-अदीदेः) मनों में—मन और बुद्धि में° प्रकाशमान हो जाता है* ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
नाभिं यज्ञानाꣳ सदनꣳ रयीणां महामाहावमभि सं नवन्ते ।
३ २ ३क२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वैश्वानरꣳ रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३॥

(यज्ञानां नाभिम्) श्रेष्ठतम कर्मों केऽ केन्द्र—जिसे लक्ष्य कर श्रेष्ठ कर्म किए जाते हैं उसे (रयीणां सदनम्) विविध ऐश्वर्यों

※ "विश्वे ह्येतद् देवा....यद् ब्राह्मणाः" [तै० सं० ३।१।१।४]

† "नवते गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

‡ "क्रतुः प्रज्ञाननाम" [निघ० ३।९]

° "मनः पितरः" [श० १४।४।२।१३] द्विवचनाद् द्वे मनोबुद्धी गृह्येते ।

* "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

ऽ "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" [काठ० ३०।१८]

के स्थान को (महाम्-आहावम्) महान् अध्यात्म रसपान॰ आनन्दसरोवररूप परमात्मा को (अभि सं नवन्ते) मुमुक्षु उपासक जन अभिसङ्गत होते हैं तथा (अध्वराणां रथ्यं यज्ञस्य केतुं वैश्वानरम्) प्राणों के इन्द्रियों के† विषयरस वाहक‡ अध्यात्मज्ञापक विश्वनायक परमात्मा को (देवाः-जनयन्त) मुमुक्षु उपासक प्रसिद्ध करते हैं अपने अन्दर साक्षात् करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—यजतः (अध्यात्मयाजक)

देवता—मित्रावरुणौ (उपयोगी कार्य में प्रेरक और अपनी और वरने वाला परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

११४२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
१ २ ३ २
महित्क्षत्रावृतं बृहत् ॥१॥ ऋ० ५-६८-१

(वः) हे उपासको तुम° (मित्राय) अभ्युदयकार्य में प्रेरक परमात्मा के लिए (वरुणाय) मोक्षप्राप्ति के लिए अपनी और वरने वाले परमात्मा के लिए (विपा गिरा) विशेष स्तुति करने

॰ "निपानमाहावः" [अष्टा० ३।३।७४]

† "प्राणोऽध्वरः" [श० ७।३।१।५] "प्राणा इन्द्रियाणि" [काठ० ८।१]

‡ "तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते" [गो० १।२।२१]

° विभक्तिव्यत्ययः ।

वाली† वाणी से (ऋतं बृहत्-गायत) सत्य और महत्—अच्छा मधुर गाओ बखान करो (महिक्षत्रौ) जो महान् धन वाले हैं ॥१॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥१॥

(या) जो (सम्राजा) सम्यक् राजमान—प्रकाशमान (घृत-योनी) तेज का आश्रय— महातेजस्वी‡ (च-उभा) ये दोनों धर्म वाला (देवा) देव (देवेषु प्रशस्ता) मुमुक्षु उपासकों में प्रशंसनीय है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
१२ ३ २ ३ १२
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३॥

(ता) वह अभ्युदय का प्रेरक मोक्षार्थ अपनी ओर वरने वाला परमात्मा (नः) हम उपासकों के लिए (पार्थिवस्य महः-रायः) पृथिवी सम्बन्धी महान् पोष अभ्युदय साधन के (दिव्यस्य) मोक्षधाम सम्बन्धी महान् आनन्दधन निःश्रेयस रूप के प्रदान करने में (शक्तम्) समर्थ है (वाम्) तुम्हारा (क्षत्रं देवेषु महि) यह धनदान या बल मुमुक्षु उपासकों में महनीय—प्रशंसनीय है॥३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)

---

† "पन स्तुतौ" ततो विपूर्वाद् डः ।

‡ "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८] "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" [मै० १।६।८]

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१र २र ३ २३२ ३१२
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
१ २ ३ १२ ३१२
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥

(चित्रभानो-इन्द्र) हे अद्भुत दीप्ति वाले इन्द्र परमात्मन् ! तू (आयाहि) आ (त्वायवः-इमे सुताः) तू जिन्हें चाहता है ऐसे ये निष्पन्न उपासनारस (अण्वीभिः-तना) सूक्ष्म गहन आन्तरिक श्रद्धाओं से* (पूतासः) अध्येषित—प्रस्तुत हैं† इन्हें स्वीकार कर ॥ १ ॥

१र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (धिया-इषितः) ध्यान की साधनभूत स्तुतिवाणी से‡ प्राप्तव्य (विप्रजूतः) ब्राह्मण—ब्रह्मचिन्तनकर्ता के द्वारा° प्रीत—प्रसन्न होने वाला* (सुतावा-

---

* "तनु श्रद्धायायम्" [चुरादि०] तनाभिः "सुपां सुलुक्" [अष्टा० ७।१।३९]

† "पवस्व अध्येषणाकर्मा" [निघ० ३।२१]

‡ "धीरसि ध्यायते हि वाचा" [काठ० २४।१]

° "ब्राह्मणा हवै विप्रः" [जै० ३।८४]

* "देवजूतं देवप्रीतम्" [निरु० १०।२८]

घत:-वाघत:) उपासनारसवाले मेधावी* उपासक के (ब्रह्माणि-उप) मन्त्रस्तवनों को उपेत हो—प्राप्त हो ॥ २ ॥

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
११५- इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
३ १ २ ३ १२
सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥ ऋ० - १.३.६
अथर्व० - २०.८४.२

(हरिव:-इन्द्र) हे ऋक् साम—स्तुति उपासना वाले ऐश्वर्य-वन् परमात्मन् ! (तूतुजान:) शीघ्रता करता हुआ† (ब्रह्माणि-उप-आयाहि) मन्त्रस्तोत्रों की ओर (सुते न:-चन:-दधिष्व) उपासनारस सिद्ध होने पर हमारे लिये अपना अमृत—आनन्द-रूप अन्न‡ धारण करा ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषि:—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को धारण करने वाला उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
११६- तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
३ २ ३ १ २ २ १ २
कृष्णा कृणोतु जिह्वया ॥१॥ ऋ० . ६. ६०. १०

(तम्-ईडिष्व) हे उपासक जन ! तू उस प्रकाशस्वरूप पर-

* "वाघत:-मेधाविनाम्" [निघ० ३।१५]

† "तूतुजान:-त्वरमाणः" [निरु० ६।२०]

‡ "चन इत्यन्ननाम" [निरु० ३।१५]

मात्मा की स्तुति कर (यः) जो (अर्चिषा) अपनी प्रकाशशक्ति से* (विश्वा वना परिष्वजत्) सारे रश्मिमान्† ज्योतिष्मान् सूर्य आदि को (परितः) प्राप्त होता है—उन्हें ज्योति देता है—प्रकाशित करता है (जिह्वा कृष्णा कृणोति) पुनः अपने अन्दर ग्रहण शक्ति से‡ अन्धकार बना देता है* प्रलय में° एवं जगद्रचयिता प्रलयकर्ता परमात्मा है उपास्य है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥२॥

(यः-मर्त्यः) जो मनुष्य (इद्धे-इन्द्रस्य 'इन्द्रे') दीप्त ऐश्वर्यवान् परमात्मनिमित्तऽ (सुम्नम्-आविवासति) अपने को साधु§ सुन्दर हविरूप में समर्पित करता है* (द्युम्नाय) उस द्योतमान—यशोरूप—यशस्वी बने मनुष्य के लिये* (अपः सुतराः) प्राण॥ सागर को सुख से तराने वाले हो जाते हैं ॥ २ ॥

---

* "अर्चिः-ज्वलतोनाम" [निघ० १।१७]
† "वनं रश्मिनाम" [निघ० १।५] तद्वान्-मतुब्लोपश्छान्दसः ।
‡ "जिह्वा जोहुवा" [निरु० ५।२७] "अत्ता चराचरग्रहणात्" [वेदान्त०]
* "तमो वै कृष्णम्" [मै० २।१।६]
° "तम आसीत् तमसा गूढमग्रे" [ऋ०१०।१२९।३]
ऽ निमित्तसप्तम्यां विभक्तिव्यत्ययः ।
§ "सुम्ने मा धत्तम्-साधौ माधत्तमित्येवैतदाह" [श० १।८।५।२७]
* "विवासति परिचर्याकर्मा" [निघ० ३।५]
* "द्युम्नं द्योत यशो" [निरु० ५।५]
॥ "प्राणा वा आपः" [तां० ८।९।४] विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः ।

२ ३ १२ ३१२ ३१ २ ३१२
ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः ।
१ २ ३२ ३ १२
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥३॥

(इन्द्राग्नी) तौ पिपृतम् ११४७) ऋ० ६.६०.१२

(ता) वह तू ज्ञानप्रकाशस्वरूप बलैश्वर्यवान् परमात्मन् ! (वाजवतीः-इषः) अमृत अन्नभोगवाली† एषणाओं—कामनाओं को (आशून्-अर्वतः) व्यापनशील ईरणवाले‡—प्रेरणा करने वाले मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार को (पिपृतम्) अपने विचारों से पूरण कर—भरदे, जिससे (इन्द्रम्-अग्निं च वोढवे) तुझ आत्मबलैश्वर्यवान् ज्ञानप्रकाशवान् परमात्मा को प्राप्त करने के लिये ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सिक्तानिवारी ऋषिगणः (ज्ञानसिक्त दोषनिवारक ऋषियों में गिने जाने वाले)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आने वाला शान्त-स्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३२३ ३ १ ३१२ २२
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्रमिनाति

११५२ / ५५८

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १।१९३]
‡ "अर्वा-ईरणवान्" [निरु० १०।३१]

३ १२ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १२
सञ्जिरम् । मर्यं इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना
३ २
पथा ॥१॥ (देखो अथर्वव्याख्या पृ० पृ० ४५७)

२ ३ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १२ ३ १२
प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।
२ ३ १२ ३क २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १२
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२॥

(वः) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तुम्हे* (मन्द्रयुवः) हर्ष-प्रद को चाहनेवाले (पनस्युवः) स्तुति चाहने वाले (विपन्युवः) मेधावी उपासक (संवरणेषु) गुप्त स्थानों—हृदय आदि प्रदेशों में (धियः-प्र-अक्रमुः) धारणा आदि योगाङ्गों का प्रारम्भ अनुष्ठान करते हैं (स्तुभः) स्तुतिकर्ताजनो† (क्रीडन्तं हरिम्-अनूषत) संसार रचनारूप क्रीडामात्र सा करते हुए दुःखापहरणकर्ता सुखा-हर्ता परमात्मा की स्तुति करो (धेनवः) तुम्हारी स्तुतिवाणियां‡ (पयसाइत्-अभि-आशिश्रयुः) अन्तर्हित श्रद्धारस से ही° आश्रित हों ॥ २ ॥

१२ ३ १२ ३ १ ३ १ ३ १ ३ १२ ३ १२
आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान
३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १२ १ २ ३ १ २ ३
ऊर्मिणा । या नो दोहत त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सु-
१२
वीर्यम ॥३॥

* वचनव्यत्ययः ।

† "स्तुभ् स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

‡ "धेनु -वाङ्नाम" [निघ० १।११]

° "अन्तर्हितमिव वा पयः" [तां० ६।६।३]

"रसो वै पयः" [श० ४।४।४।८]

(इन्दो सोम) हे आनन्दरसपूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (ऊर्मिणा पवमानः) धारारूप से होता हुआ (नः) हमारे लिये (संयतं पिप्युषीम्-इषम्-आ पवस्व) स्थायी समृद्ध करने वाली एषणीय—कमनीय स्वसङ्गति को प्राप्त करा (या) जो (अह न-त्रिः) प्रतिदिन तीन क्रमवाली—स्तुति प्रार्थना उपासना वाली (असश्चुषी) अचल—अविनाशी—प्रतिबन्धरहित (नः) हमारे लिये (क्षुमत्-वाजवत्-मधुमत् सुवीर्यं दोहते) निवासवाले* अमृत अन्नवाले† मधुर शोभन आत्मबल को दूहती है—प्राप्त करती है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—पुरुहन्मा (दोषों का बहुत हन्ता)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—बृहती।

२ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
1144 न किष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम्।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
282 इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥ अथर्व २० 92/12
ऋ. 2-60. 2 (देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९४)

१ २ ३१र २र ३१र २र ३ १ २ ३ १ २
1145 अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः।
२ ३ २ ३ १२र ३ २ ३ १ २
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥ २॥ अथर्व २०.९२.१० ऋ. ८.६०.४

---

* "क्षि निवासे" [तुदादि०] ततोडुक्-औणादिको बाहुलकात् क्षुः, मतुपि क्षुमत्।

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

(अषाढम्-उग्रम्) न सह सकने वाले ऊंचे बलवाले (पृतनासु) संघर्षों—विषयों में (सासहिम्) अत्यन्त सहज स्वभाव की स्तुति करें (यस्मिन् जायमाने महीः-उरुज्रयः-धेनवः) जिस अन्तःस्थल हृदय में प्रसिद्ध हो जाने पर महती बहुत वेगवाली वाणियां (अनोनवुः) स्तुतिकर्ता है (द्यावः क्षामीः-अनोनवुः) द्युलोक की और पृथिवी की* प्रजाएं भी उसकी स्तुति करती हैं ॥२॥

—:०:—

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—पर्वतनारदौ (आत्मतृप्तिमान् नरविषयक ज्ञानदाता उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—उष्णिक् ।

११५६ / ५६८ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २
सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत ।
२ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रियें ॥१॥ ऋ० ९-१०४-१.

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४३८)

११५८ १ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
३ २ १ १ २ ३ १२ २२
देवाव्यां३मदमभि द्विशवसम् ॥२॥ ऋ० ९-१०४-२

---

* क्षमा पृथिवी" [निघ० १।१]

(गयसाधनम्) प्राणों† के साधने—उन्नत करने वाले—(देवाव्यम्) मुमुक्षुजनों द्वारा कमनीय—(मदम्) हर्ष आनन्द के देनेवाले—(द्विशवसम्) दो बलों वाले सृष्टिरचन और जीवों के कर्मफल देने का बल रखने वाले, ऐसे (तम्) उस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (वत्सं न मातृभिः-अभि सं सृजत) बछड़े को जैसे माताओं—गौओं से मिलाते हैं ऐसे मान करने वाली देववृत्तियों से मिलाओ ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥३॥

(दक्षसाधनं पुनात) उस आत्मबल के साधन शान्तस्वरूप परमात्मा को अपने अन्दर प्राप्त करो—धारण करो (यथा शर्धाय) जैसे आत्मबल के लिये (वीतये) तृप्ति के लिये (यथा मित्राय-वरुणाय) जैसे प्राण के लिये अपान के लिये (शन्तमम्) अत्यन्त कल्याणकर हो सके ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—अग्नयो धिष्ण्याः (धिषणा‡—स्तुतिवाणी के साधक उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—द्विपदा विराट् ।

२ ३क २र ३ १ २ ३२ ३ २ ३ ३ १ २
प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं विवारमव्ययम् ॥१॥

† "प्राणा वै गयाः" [श० १४।८।१५।७]

‡ "धिषणा वाक्" [निघ० १।११]

(वाजी सहस्रधारः) बलवान् सोम—परमात्मा बहुत आनन्दधारावाला (पवित्रं तिरः) पवित्र आत्मा के अन्दर※ (प्र-अक्षाः) प्रक्षरित होता है—पहुंचता है—प्राप्त होता है (अव्ययं वार वि) पृथिवी के बने—पार्थिव देह आवरक को विगत करके—हटाकर ॥ १ ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥२॥

(सः-वाजी) वह तेजवान् सोम—परमात्मा (सहस्ररेताः) बहुत शक्तिवाला† (अद्भिः-मृजानः) आप्तजनों‡ मनस्वी उपासकों द्वारा चिन्त्यमान हुआ, तथा (गोभिः-श्रीणानः) स्तुतिवाणियों से संयुक्त हुआ (अक्षाः) हृदय में प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ २
प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमाणो अद्रिभिः सुतः ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (नृभिः-येमाणः) मुमुक्षुजनों से° साधना में—उपासना में लाया जाता हुआ (अद्रिभिः सुतः) श्लोक कर्ता—स्तुति कर्ताओं के द्वारा साक्षात् हुआ* (इन्द्रस्य कुक्षा) उपासक आत्मा के हृदय में (प्र याहि) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

※ "तिरोऽन्तर्धौ [अष्टा० १।४।७०] "तिरोदधे-अन्तर्धत्ते" [निरु०

† "कामस्तदग्रे समवर्तते मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्"
[अथर्व० १९।५२।१]

‡ "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

° "अद्रिरसि श्लोककृत्" [जै० १।८९]

* "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९[

तृतीय तृच

ऋषिः—भृगुर्जमदग्निर्वा (तेजस्वी या प्रज्वलित ज्ञान अग्नि-वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१२ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
ये वादः शर्यणावति ॥१॥
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३क २र
य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२॥
१ २ ३ २ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्वाना देवास इन्दवः ॥३॥

इन तीनों मन्त्रों की एक वाक्यता है अतः एकवाक्यतारूप में अर्थ दिया जाता है—

(ये सोमासः परावति) 'बहुवचनमादरार्थम्' जो सोम शान्त-स्वरूप परमात्मा दूर* परे—मोक्षधाम में (ये अर्वावति) जो समीप—स्वात्मा में† (वा) और‡ (अदः शर्यणावति) उस

---

* "परावतः-दूरनाम" [निघ० ३।२६]
"अन्तो वै परावतः" [ऐ० ५।२]

† "य आत्मनि तिष्ठन्" [श० १४।६।७।३०]

‡ "वा समुच्चयार्थः" [निरु० १।५]

प्रणव धनुष पर* (सुन्विरे) साक्षात् होता है (ये-आर्जिकेषु) जो ऋजुगामी परमाणुओं में सूक्ष्म भूतों में (कृत्वसु) कार्य-द्रव्यों—पृथिवी आदि स्थूल भूतों में (ये पस्त्यानां मध्ये) जो परमात्मा पशुपक्षी वनस्पतियों के अन्दर (वा) और (ये) जो (पञ्चसु जनेषु) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद—वन वासी मनुष्यों में साक्षात् होता है रचनादृष्टि से (ते स्वाना:-इन्दव:-देवास:) वह साक्षात् हुआ रसपूर्ण देव (न:) हमारे लिये (दिव:) अपने अमृत लोक से (वृष्टिं सुवीर्यम्-आ) सुख वृष्टि और शोभन आत्मबल को (परि पवन्ताम्) परिसिक्त कर—वर्षा दे ॥ १-३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषि:—काण्वो वत्स: (मेधावी से सम्बद्ध वक्ता-स्तुतिकर्ता)

देवता—अग्नि: (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्द:—गायत्री ।

११६८

१ २ ३ १२ २२ ३१ २ ३ १ २
आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥१॥ ऋ० ८-११.८

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ९)

---

* "शर्या:-इषव: शरमय्य:" [निरु० ५।४] शर्या-शरमयीषम् [निरु० १०।२९] इषु प्रक्षेप्तुनमति यांसा शर्यणा तद्वत् धनु:, "प्रणवो धनु: शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते" [मुण्ड० २।२।४] "[illegible] [illegible] [illegible]" [ऋ० ५।३५।२६३]

३ २उ ३ २उ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः।
३ १ २
समत्सु त्वा हवामहे ॥२॥

(पुरुत्राः-हि सदृङ्-असि) हे अग्रणी परमात्मन्! तू बहुत प्रकार से त्राणकर्ता है निश्चय समानद्रष्टा है—त्राण करने में तू समदर्शी है (विश्वाः-दिशः-अनु प्रभुः) सारी दिशाओं के प्रति—प्रभु सारी दिशाओं का स्वामी है (त्वा समत्सु हवामहे) तुझे सम्यक् मोद—आनन्द† प्रसङ्गों के निमित्त आमन्त्रित करते हैं—बुलाते हैं— तू प्रमोद आनन्द का देने वाला है ॥ २ ॥

३ २ ३ १र २र ३ १ २
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे।
१ २ ३ १ २
वाजेषु चित्रराधसम् ॥३॥

(समत्सु) सम्यक् हर्ष आनन्द प्रसङ्गों के निमित्त (अवसे) तृप्ति के लिये‡ तथा (वाजेषु चित्रराधसम्) संग्रामों आन्तरिक संग्रामों के निमित्त अद्भुत सिद्धिप्रद (अग्निं हवामहे) तुझ अग्रणी को आमन्त्रित करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु बुद्धि वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

---

† "समदो वा....सम्मदो वा मदतेः" निरु० ९।१७]

‡ "अव रक्षण गति कान्ति प्रीति तृप्ति...." [भ्वादि०]

छन्दः—ककुप् ।

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्राभर ओजो नृम्णꣳ शतक्रतो विचर्षणे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आवीरं पृतनासहम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३३४)

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
१ २ ३ १ २
अथा ते सुम्नमीमहे ॥२॥

(वसो त्वं हि नः पिता) हे बसाने वाले परमात्मन् ! तू ही हमारा पिता है—अपने आश्रय में अपने अन्दर वसाने वाला होने से (शतक्रतो त्वं माता बभूविथ) हे बहुत प्रकार से हृदय में* मन को प्रेरित करने वाले परमात्मन् ! तू माता है—सङ्कल्पों को प्रेरित करने वाला जीवन निर्माता है (अथ ते सुम्नम्-ईमहे) अधिकार के साथ तेरे—तुझ से प्राप्त होने वाले साधुभाव एवं सुख को† हम चाहते हैं‡ ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
त्वाꣳ शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुपब्रुवे सहस्कृत ।
१ २ ३ १ २
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३॥

(शुष्मिन् पुरुहूत सहस्कृत) हे बलवन् बहुत प्रकार आम-

* "हत्सु ह्ययं क्रतुर्मनोजवः प्रविष्टः" [श० ३।३।४।७]

† "सुम्ने मा धत्तं·····साधौ मा धत्तमित्येवतदाह" [श० १।८।३।७]
"सुम्नं सुखनाम" [निघ० ३।६]

‡ "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१९]

न्त्रण करने योग्य ओज—आत्मतेज से साक्षात्करणीय* (वाजयन्तं त्वाम्-उपब्रुवे) तुझ हमारे लिये अमृत अन्नभोगार्† चाहने वाले की उपस्तुति—उपासना करता हूं (सः-नः सुवीर्यं रास्व) वह तू हमारे लिये उत्तमबल—अध्यात्मबल को प्रदान कर ॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—भौमोऽत्तिः (पार्थिव शरीर में रहता हुआ तृतीय मोक्षधाम का ज्ञाता उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

यदिन्द्र चित्र म इहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वसे उभया हस्त्याभर ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २८६)

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदाभर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्-वरेण्यं द्युक्षं मन्यसे) जिसे वरण करने योग्य दीप्ति के निवास—दीप्तिवाला धन है (तत्-आभर) उसे आभरित कर (ते) तेरे (तस्य-अकूपारस्य दावनः-विद्याम) उस अपार धनदाता के* दान को हम प्राप्त करें ॥ २ ॥

---

* "ओजः-सहः-ओजः" [का० ३।५३]

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १।१९३]

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १
यत् ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
तेन दृढाचिद्द्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥

(अद्रिवः) हे आनन्दघन वाले परमात्मन् ! (दिक्षु) सब दिशाओं में, वस्तु वस्तु में (ते) तेरा (यत् प्रराध्यं श्रुतं बृहत् मनः-अस्ति) जो प्रशंसनीय प्रसिद्ध या सुनने योग्य, बड़ा मनन करने योग्य स्वरूप है (तेन) उस अपने स्वरूपदर्शन से (दृढा-चित्-वाजम्-आदर्षि) स्थिर अन्नभोग को भी हमारी ओर बखेर देता है—प्रदान करता है (सातये) हमारे लाभ के लिये, अतः तू स्तुतियोग्य है ॥ ३ ॥

इति अष्टम अध्यायः ।

* "सबते वृतस्य" [निरु०४।१८]

अथ नवम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रतर्दनः (काम आदि दोषों का ताडन करने वाला उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं जज्ञानꣳ हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
३ १ ३ १२ २र ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कविर्गीर्भिः काव्येन कविः सन्त्सोम पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥

(मरुतः) मुमुक्षुजन॰ (गणेन) स्तुतिवचन से† (विप्रम्) विविध कामनाओं के पूर्ण करने वाले—(हर्यतम्) कमनीय‡ (जज्ञानं-शिशुम्) उत्पन्न हुए बच्चे जैसे° या शंसनीय* साक्षात् हुए सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (मृजन्ति शुम्भन्ति) प्राप्त

॰ "मरुतो देवविशः" [श० २।५।१।१२]

† "गणः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]

‡ "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघ० २।६]

° लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

* "शिशुः शंसनीयः" [निरु० १०।३६]

करते❀ और प्रार्थना वचन कहते हैं† (कविः-गोभिः) क्रान्तदर्शी परमात्मा स्तुतियों द्वारा तथा (सोमः कविः सन्-काव्येन) शान्तस्वरूप परमात्मा कवि होता हुआ कलात्मक व्यवहार से (रेभन् पवित्रम्-अत्येति) प्रवचन करता हुआ—आशीर्वाद देता हुआ पवित्र उपासक आत्मा को अत्यन्त—आशिष से प्राप्त होता है॥१॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥२॥

(यः) जो शान्तस्वरूप परमात्मा (ऋषिमनाः) ऋषियों—द्रष्टा उपासकों का मन जिस में है ऐसा (ऋषिकृत्) निजदर्शन से ऋषियों का बनाने वाला (स्वर्षा) मोक्ष का सम्भागी बनाने वाला (सहस्रनीथः) सब का‡ नेता (कवीनां पदवीः) ऋषियों का पदवेत्ता* स्वरूप ज्ञाता (महिषः) महान्° (तृतीयं धाम) स्वः-मोक्षधाम को (सिषासन्) उपयुक्त करने—प्राप्त कराने की इच्छा रखता हुआ (विराजम्-अनु) स्तुति वाणी को लक्ष्य कर* उसके साथ (स्तुप् सोमः-विराजति) स्तुतियोग्यऽ शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक आत्मा के अन्दर विराजमान होता है ॥ २ ॥

❀ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

† "शुम्भ भाषणे" [भ्वादि०]

‡ "सर्वं वै सहस्रम्" [श० ४।१।५।१५]

* "ऋषयः कवयः" [मै० ४।१।२]

° "महिषो महन्नाम" [निघ० ३।१]

* "वाग्वै विराट्" [मै० २।३।१०]

ऽ "स्तोभति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१]कर्मणिक्विप् ।

३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १२
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्।
३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥

(चमूषत्) द्युलोक पृथिवीलोक में* द्यावापृथिवीमय समस्त जगत् में रहने वाला सर्वत्र व्यापक (श्येनः शकुनः) शंसनीय गतिमान्—प्रशंसनीय प्राप्ति वाला† कल्याणकारी‡ (विभृत्वा) विशेष भरण पोषण करने वाला° (गोविन्दुः) वाक् विद्याविषय को प्राप्त हुआ (द्रप्सः) अपने अन्दर भरणीय और भक्षणीय सात्मा करने योग्य* शान्तस्वरूप परमात्मा (आयुधानि बिभ्रत्) जलों कोऽ धारण करता है (अपाम्-ऊर्मिं सचमानः) आप्तजनों की* भावना—स्तुति प्रार्थना को सेवन करता हुआ (महिषः) महान् उपकारक सोम—परमात्मा (तुरीयं धाम समुद्रं विवक्ति) चतुर्थ—कार्य, कारण, जीवलोक से ऊपर मोक्ष—आनन्दसागर का विवेचन करता है—प्राप्त कराना स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय नवर्च ।

ऋषिः—असितो देवलो वा (राग बन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लेने धारण करने वाला उपासक)

---

* "चम्वौ द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]
† "श्येनः शंसनीयं गच्छति" [निरु० ४।२४]
‡ "शकुनिः सर्वत्रः शङ्करः" [निरु० ६।३]
° "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" [अष्टा० ३।२।८५] भृञ् धातोः क्वनिप्
* "द्रप्सः सम्भृतः प्सानीयो भवति" [निरु० ५।१५]
ऽ "आयुधानि-उदकनाम" [निघ० १।१२]
* "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

३ १२ २२ ३ २ ३१२ २२ ३ १२
एते सोमा अभिप्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
१ २ ३ ३क २२
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

(एते सोमाः) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अस्य इन्द्रस्य वीर्यं वर्धन्तः) इस उपासक आत्मा के उत्साह को बढ़ाने के हेतु (प्रियं कामम्-अभि-अक्षरन्) प्रिय कमनीय स्वदर्शन को प्राप्त कराता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ः १ २
पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
१ २ ३ १ २
ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥२॥

(ते चमूषदः पुनानासः) वह द्युलोक पृथिवीलोक—द्यावा-पृथिवीमय जगत् में व्यापक शान्तस्वरूप परमात्मा साक्षात् हुआ (वायुम्-अश्विना गच्छन्तः) प्राणवायु को° और दोनों कानों को* प्रेरित करता हुआ अपने आनन्दरस में और अमृतवचन से तृप्त करता हुआ (नः सुवीर्यं धत्त) हमारे लिये आत्मबल उत्तम उत्साह को धारण करावे ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवानां योनिमासदम् ॥३॥

° "प्राणो वै वायुः" [तै० सं० २।१।१।२]

* "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० १२।६।१।१३]

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (राधसे) अपनी आराधना उपासना कराने के लिये (देवानाम्-आसदं योनिं हार्दि चोदय) देववृत्तियों—सद्वृत्तियों के समन्तरूप से बैठने योग्य मुझ आत्मा के हृदयगृह को प्रेरित कर जिससे तेरी उपासना कर सकूं, हृदय की गन्ध आदि वृत्ति नहीं इन्द्रियों की असुरवृत्तियां और देववृत्तियां पर्याय से आती रहती हैं ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
२ ३ १ २
अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

(त्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तुझे (दश क्षिपः) विषयों की ओर फेंकने वाली इन्द्रिय शक्तियां, वृत्तियाँ (मृजन्ति) प्राप्त हो रही हैं॰ विषयों में न जाकर तेरी ओर प्रवृत्त हो रही हैं—अपने अपने विषयों में तुझ कलाकार को अनुभव कर रही हैं (सप्त-धीतयः हिन्वन्ति) सात प्रज्ञाएं† योग भूमियां—हेय दुख समझ लिया, क्षीण होगए हेय हेतु, ज्ञान का उपाय विवेक दर्शन सम्पादन कर लिया, सत्त्व आदि गुणों के अधिकार से बुद्धि निवृत्त होगई, गुण अपने कारण में अस्त होगए, फिर इनकी उत्पत्ति नहीं, प्रयोजन के अभाव से, तुझे आप्त हो रही हैं—समन्त-रूप से प्राप्त हो रही हैं‡—तेरे से चरित हो रही हैं, इस प्रकार (अनु-'त्वाम्-अनु' विप्राः-अमादिषुः) तुझे लक्ष्य कर उपासक ब्राह्मण° हर्षित आनन्दित हो जाते हैं ॥ ४ ॥

॰ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

† "तस्य सप्तधा प्रान्त भूमिः प्रज्ञा" [योगद० २।२७]

‡ "धीतिः प्रज्ञा" [निरु० १०।४१]

° "हिन्वन्ति आप्नुवन्ति" [निरु० १।२०]

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३क२र
देवेभ्यस्त्वा मदाय कꣳ सृजानमति मेष्यः ।
१र २र
सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥

(त्वा) हे परमात्मन् ! तुझ शान्तस्वरूप को (देवेभ्यः-मदाय) मुमुक्षुजन के* हर्ष आनन्द प्राप्ति के लिए (कं सृजानम्) सुख सर्जन करते हुए को (मेष्यः-गोभिः) सेचन करती हुई† स्तुति वाणियों द्वारा (अति वासयामसि) हम उपासक बहुत वासित कर देते हैं ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
२ ३ १ २
परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

(अरुषः-हरिः) आरोचमान दुःखापहर्ता सुखाहर्ता परमात्मा (कलशेषु) कलास्थानों में—जहां परमात्मा की कलाएं भासित होती हैं वहां स्तुत किया जाता हुआ—चिन्तन किया जाता हुआ (वस्त्राणि गव्यानि) वस्त्ररूप स्तुतिवाणियों को (परि-अव्यत) ओढता है—उस हृदयस्थान में आकर ॥ ६ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
मघोन आपवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सखायमाविश ॥७॥

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (नः-मघोनः)

---

* "ब्राह्मणा देवाः" [जै० ३।८४]

† "मिषु सेचने" [भ्वादि०]

देने योग्य धन रूप* स्तवन—स्तुतिवचन वाले हम उपासक आत्माओं को (आपवस्व) समन्तरूप से प्राप्त हो (विश्वाः-द्विषः-अपजहि) सारी द्वेष भावनाओं को नष्ट कर (सखायम्-आविश) तुझ मित्र उपासक आत्मा के अन्दर आविष्ट हो—समाजा ॥७॥

३ १ २ ३१र २र ३ १ २
११८२ नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
३ १ २ ३ १र २र
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥८॥ ऋ० ९.८.९

(त्वा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तुझ—(नृचक्षसम्) मनुष्यों के द्रष्टा—कर्मफल प्रदानार्थ अन्तः साक्षी—(इन्द्रपीतम्) आत्मा के पान—धारण करने योग्य—(स्वर्विदम्) सुख प्राप्त कराने वाले—(प्रजाम्-इषम्) प्रजारूप और अन्नरूप को (भक्षीमहि) भजें सेवन करें—स्तुति में लावें—तू ही प्रजा है, तू ही अन्न है, तू ही हमारा सब कुछ है ॥ ८ ॥

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
११८३ वृष्टिं दिवः परिस्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
१ २ ३ १ २
सहो नः सोम पृत्सुधाः ॥९॥ ऋ० ९.८.८

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (नः) हम उपासकों के लिये (दिवः-वृष्टिं परिस्रव) मोक्षधाम से‡ स्वधा°—अमृत-धारा को बहादे (पृथिव्या-अधि द्युम्नम्) पृथिवी के अन्दर—

* "मघमिति धननामधेयम्, मंहतेर्दानकर्मणः" [निरु० १।७]
"मघं धनम्" [निघ० २।१०]

† "भक्षत निभक्षमाणाः स यथा धनानि विभजति" [निरु० ६।८]

‡ "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]

° "स्वधा वृष्टिः" [जै० ३।२७]

पार्थिव※ देह में द्योतमान यश को† स्थापित कर (पृत्सुसहः-धाः) कामादि संघर्ष अवसरों पर‡ साहस—सहनबल दबानेवाले बल को धारण करा ॥ ९ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम नवर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लाने वाला उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
३ १र २र ३२
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

(सोमः सहस्रधारः पुनानः) शान्तस्वरूप परमात्मा बहुत आनन्दधाराओं वाला अध्येष्यमाण—स्तुति प्रार्थना में लाया हुआ* (इन्द्रस्य) उपासक आत्मा के (निष्कृतं वायोः) संस्कृत§

※ "ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति" [निरु० २।५]

† "द्युम्नं द्योततेर्यशः" [निरु० ५।५]

‡ पृत्सु संग्रामनाम" [निघ० २।१७]

* "पवस्व अध्येषणाकर्मा" [निघ० ३।२१]

§ "यद्वै निष्कृतं तत् संस्कृतम्" [ऐ० आ० १।१।४]
निष्कृण्वाना····निरित्येप समित्येतस्य स्थाने" [निरु० १२।८]

'वायुम्' मन को* (अत्यविः) पार्थिव देह§ को लाङ्घा हुआ (अर्षति) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
११-२ पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्रगायत ।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणं देववीतये ॥२॥ x-e-12-1

(अवस्यवः) हे रक्षण चाहने वालो ! तुम (सुष्वाणं विप्रं पवमानम्) निष्पन्न—साक्षात् हुए विविध रूप से कामनापूरक आनन्दधारारूप में प्राप्त होते हुए शान्तस्वरूप परमात्मा को (देववीतये) देवों—जीवन्मुक्तों की प्राप्त करने योग्य मुक्ति के लिये (अभि प्र गायत) निरन्तर या पुनः पुनः स्तुतिगान करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
११-८ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
३ २ ३ १ २
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥ x-e-12-3

(सहस्रपाजसः) बहुविध धनबलवाला‡ (सोमाः) शान्तस्वरूप परमात्मा (गृणानाः) स्तूयमान—स्तुति में लाया जाता हुआ† (वाजसातये) अमृत अन्नभोग प्राप्ति के लिये (देववीतये) जीवन्मुक्तों की मुक्ति प्राप्ति के लिये (पवन्ते) धारारूप में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

---

* "मनो वायुः" [काठ० १३।१]

§ "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६।१।२।२३]

‡ "पाजः बलनाम" [निघ० २।९]

† "कर्मणि कर्तृ प्रत्ययः ।

३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १२ ३२
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
३ १ २ ३ १ २
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४॥

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (उत नः-वाजसातये) हां, हमारी अमृत अन्नभोग प्राप्ति है जिसमें उस मुक्ति के लिये (बृहतीः-इषः) बड़ी ऊंची—श्रेष्ठ कामनाओं—शम दम आदि भावनाओं—(द्युमन्तं सुवीर्यम्) तेजस्वी* शोभन वीर्य—आत्मबल—आध्यात्मिक बल को (पवस्व) प्राप्त करा ॥ ४ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३१ २ ३ १ २
अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रन् वाजसातये ।
२उ ३१ २ ३ १ २
विवारमव्यमाशवः ॥५॥

(हेतृभिः-हियानाः-अत्याः-न-असृग्रन्) प्रेरकों द्वारा प्रेरे हुए घोड़े† जैसे दौड़ते चले जाते हैं ऐसे ही सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (वाजसातये) अमृत अन्नभोग की प्राप्ति सदा कराने के लिये‡ उपासकों द्वारा उपासित हुआ (आशवः) आशुकारी—शीघ्र प्रवृत्तिवाला° सोम परमात्मा (अव्या वारं वि) पार्थिव-वारण करने वाले आवरक देह को विगत करके उपासक आत्मा में प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

---

* "द्युमत्-ज्वलतोनाम" [निघ० १।६]

† "अत्यः-अश्वनाम" [निघ० १।१४]

"द्युमान् द्योतन्नवाम" [निरु० ६।१२]

‡ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १।१९३]

° "आशवः क्षिप्रकारिणः" [निरु० ६।६]

१ २ ३ १ २ ३१२ २र ३ २ ३ १ २
११८२ ते नः सहस्रिणꣳ रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्वाना देवास इन्दवः ॥६॥ ऋ० ९.१३.५

(ते स्वानाः-इन्दवः-देवासः) वह उपासना द्वारा साक्षात् हुआ आनन्दरसपूर्ण सोम प्रकाशमान परमात्मा (नः) हमारे लिये (सहस्रिणं सुवीर्यं रयिम्) सहस्र गुणित—सहस्रों में ऊंचे अध्यात्म बलरूप धन को (आपवन्ताम्) समन्तरूप से प्राप्त करावे ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २३ ३ १ २
११८३ वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभिवत्सं न मातरः ।
३ १र २र
दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥ ऋ० ९.१३.७ / ऋ० ६.८८.७

They are held with a rung [?] constancy of detachment.

(वत्सं न मातरः) बछड़े के प्रति माताओं के समान (वाश्राः इन्दवः-अभि-अर्षन्ति) स्नेह वचन बोलता हुआ परमात्मा उपासक के प्रति प्राप्त होता है, जब कि (गभस्त्योः दधन्विरे) अभ्यास और वैराग्य से स्वायत हो जाता है, आ जाता है ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २
११८४ जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् ।
२ ३ २ ३
विश्वा अप द्विषा जहि ॥८॥ ऋ० ९.१३.८

(जुष्टः) उपासना द्वारा प्रीत—प्रसन्न किया हुआ (मत्सरः) तृप्ति करने वाला* (पवमानः) धारारूप में आने वाला सोम—परमात्मा (कनिक्रदत्) मधुर प्रवचन करता हुआ (विश्वाः-द्विषः-अपजहि) सारी द्वेषभावनाओं को दूर करे—नष्ट करे ॥ ८ ॥

---

* "मत्सरः सोमो मन्दतेस्तृप्तिकर्मणः" [निरु० २।५]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
१ २ ३ १ २
योनावृतस्य सीदत ॥ ९॥

(पवमानाः) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले सोम—परमात्मन् ! तू (अराव्णः-अपघ्नन्तः) अपने को तेरे लिए न देने वाले—न समर्पित करने वाले, असत्य की प्रशंसा करने वाले—असत्य बोलने वाले को* अपने से अलग करता हुआ—उन्हें न अपनाता हुआ (स्वर्दृशः) मोक्ष सुख को दिखाने—प्राप्त कराने वाला (ऋतस्य योनौ सीदत) सत्य के स्थान सत्य-मानी, सत्यभाषी, सत्यकारी उपासक आत्मा में प्राप्त हो ॥ ९ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम नवर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लाने वाला)]

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥१॥

(इन्दवः सोमाः सुताः) आनन्दरसपूर्ण शान्तस्वरूप परमात्मा

* "अराव्णो वा एते येऽनृतमभिशंसन्ति" [तैत्ति० ६।१०।७]

हृदय से साक्षात् हुआ (ऋतस्य धारया) अमृत की* धारा से धाराप्रवाह से (असृग्रम्-'न्') छूट रहा है—प्राप्त हो रहा है (इन्द्राय मधुमत्तमाः) उपासक आत्मा के लिए अत्यन्त मधुर हुआ ॥ १ ॥

३ १२ २र ३ १ २ ३ २क ३ १ २
अभिविप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रँ सोमस्य पीतये ॥

(विप्राः-अभि-अनूषत) हे ब्राह्मणो—ब्रह्म के उपासकजनो† तुम सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा की स्तुति—उपासना‡ करो (धेनवः-गावः-वत्सं न) जैसे दुधारी गौवें बछड़े को प्रशंसित करती हैं, पास जाती हैं (इन्द्रं° 'इन्द्राय' सोमपीतये) आत्मा को सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा का पान—अनुभव कराने के लिए ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
१ २ ३ १२ २र ३ २
सोमो गौरी अधिश्रितः ॥ ३ ॥

(मदच्युत्-विपश्चित्-सोमः) हर्ष चुवाने वाला—प्राप्त कराने वाला सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, शान्तस्वरूप परमात्मा (सिन्धोः-ऊर्मा सादने क्षेति) समस्त शरीर को नाड़ी जालों में बांधने वाले§ हृदय

---

* "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०]

† "ब्राह्मणा ह वै विप्राः" [जै० ३।८४]

‡ "णु स्तुतौ" [अदादि०] "नौति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

° 'इन्द्रम्' विभक्तिव्यत्ययः ।

§ "तद्यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० १०६]

के ज्योति, तरङ्ग रूप, स्थान में प्राप्त होता है* (गौरी अधिश्रितः) स्तुति वाणी में† अधिश्रित हुआ स्तुति करते रहने से ॥ ३ ॥

३ १२ २१ ३ २ ३ १ २
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

(यः) जो (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा, अन्तर्यामी (सुक्रतुः) उत्तम कर्ता—विश्वरचयिता (कविः) क्रान्तदर्शी—सर्वज्ञ (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा है, वह (दिवः-नाभा) द्युलोक के,—मोक्ष के‡ मध्य में° (अव्याः-वारे) पृथिवी के वरने वाले अन्तःस्तर में—पार्थिव शरीर के वरने वाले आधार हृदय में (महीयते) महान् रूप में विराजमान है। वही परमात्मा द्युलोक के मध्य में है, वही पृथिवी के गर्भ में है, वही मोक्षधाम में है, वही शरीरस्थ हृदय में है। हृदय में ढूंढो तो मोक्ष में पाओ, मोक्ष में पाना चाहो तो हृदय में देखो ॥ ४ ॥

१२ २२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।
२३ ३ १ २
तमिन्दुः परिषस्वजे ॥५॥

(यः) जो (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (कलशेषु) कला—रचना कलाएं जहां हों ऐसे आकाशीय चन्द्र आदि पिण्डों

---

* "क्षि निवासगत्योः" [तुदादिः] "क्षियति गतिकर्मा" [नि० २।१४]
† "गौरी वाङ्नाम" [निघ० १।११]
‡ "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे⋯⋯" [अष्टा० ७।१।३९] आकाशदेशः ।
° "मध्यं वै नाभिः" [श० १।१।२।२३]

में‡ (आ) और† (पवित्रे-अन्तः-आहितः) पवित्र—हृदय के अन्दर समन्तरूप से विराजित है (तम्-इन्दुः 'इन्दुम्' परिष-स्वजे) उस आनन्दरसपूर्ण परमात्मा को‡ मैं उपासक आलिङ्गित करता हूं ॥ ५ ॥

१२०१ प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥ ऋ० ९-१२-६

(समुद्रस्य-अधि विष्टपि) दिव्—मोक्षधाम° के अन्दर ब्रह्म-लोक—ब्रह्मदर्शक पद में* ब्रह्मदर्शन स्थिति में (वाचं प्रेष्यति) वक्ता को, स्तुतिकर्ता जन को ऽ प्रेषित करता है—पहुंचाता है (मधुश्चुतं कोशं जिन्वन्) मधुर रस बरसाने वाले कोश—मधु भण्डार को प्राप्त कराने के हेतु स्तुतिकर्ता को परमात्मा मोक्षधाम में अपने स्वरूप दर्शन पद में स्थापित करता है मधुभण्डार के रसास्वादनार्थ ॥ ६ ॥

१२०२ नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् ।
हिन्वानो मानुषा युजा ॥७॥ ऋ० ९-१२-६

---

‡ "कला अस्मिन् शेरते-कलशः" [निरु० ११।२[

† "एतस्मिन्नेवार्थे आकारः" [निरु० १।५]

‡ "सुपां सु०" [अष्टा० ७।१।३९] इति अम् स्थाने सुः ।

° "असो वा द्यौः समुद्रः" [श० ९।४।२।५]

* "विष्टप एव ब्रह्मलोकः" [जै० १।३३]
"तदेव ब्रध्नस्य विष्टपं तस्मिन्नेतद् देवाः सर्वान् कामान्" [जै० ३।३२९]

ऽ वक्षि वाक् क्विपि ।

(नित्यस्तोत्रः) नित्य स्तुति योग्य (वनस्पतिः) वनन सम्भजन स्तुति स्तवन करने वाले उपासकों का पालक—रक्षक शान्तस्वरूप परमात्मा* (सबर्दुघां धेनाम्) सर्व—सब कामनाओं को दूहने वाली† या सवर्—संवरणीय वस्तुओं को दूहने वाली वाणी—वेदवाणी को‡ (युजा मानुषा-अन्तः) तेरे अन्दर युक्त हुए मनुष्यों में श्रेष्ठ मनुष्यों—ऋषियों के अन्दर° (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ साक्षात् होता है ॥ ७ ॥

१२०३

आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥ ऋ० ९.१२-९

(इन्दो पवमान) हे आनन्दरसपूर्ण धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तू (सहस्रवर्चसम्) बहुत तेजस्वी (स्वाभुवम्) शोभन सत्तावाले (रयिम्) ऐश्वर्य—मोक्षैश्वर्य को (अस्मे आधारय) हमारे लिये—हमारे अन्दर आधान कर ॥ ८ ॥

१२०४

अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः ।
सोमो हिन्वे परावति ॥९॥ ऋ० ९.१२-८

(सः-कविः) वह क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (विप्रः) विविध प्रकार से तृप्त करने वाला (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (धारया

---

* "वनस्पतिर्वनानां पाता वा पालयिता वा" [निरु० ८।३]
† "रेफस्य स्थान विपर्यासः, समो मकारस्य लोपश्छान्दो वा ।
‡ "धेनां वाङ्नाम" [निघ० १।११]
° "सप्तमी स्थाने-आकारदेशश्छान्दसः" ।

सुतः) स्तुतिवाणी* द्वारा साक्षात् किया हुआ (दिवः) मोक्षधाम के (प्रिया) प्रिय—कमनीय सुखों को (परावति) दूर स्थान में (अभि) कहीं भी जहां स्तुति करी हों उन्हें लक्ष्य कर (हिन्वे) प्रेरित करता है ॥ ९ ॥

चतुर्थ खण्ड

पञ्चर्च

ऋषिः—उचथ्यः (वक्ता-स्तुतिकर्ता)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उच्चे शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।

३ १ २ ३ २
वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥

(ते) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरे (शुष्मासः) रचना सम्बन्धी बलप्रभाव (उदीरते) उठ रहे हैं—संसार में प्रवृत्त हो रहे हैं (सिन्धोः-ऊर्मेः-इव स्वनः) स्यन्दनशील समुद्र की तरङ्गों के प्रभावक शब्द समान, यह तेरा एक कार्य है शिल्पकलात्मक, दूसरा ज्ञानात्मक कार्य है (वाणस्य) अपने शब्द भण्डार वेदरूप‡ वाद्य—बाजे की (पविं चोदय)

---

* "धारा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

‡ "वण शब्दे" [भ्वादि०]

"अन्तो वै वाणः-वाद्यानाम्" [काठ० ३।२।६]

वाणी—मन्त्रवाणी स्तुति मधुरवाणी को§ प्रेरित कर—करता है-उपासकों के अन्दर सफलरूप में प्रेरित कर रहा है ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १र २ २र ३ १ २
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
२उ ३ २ ३ १ २
यदव्य एषि सानवि ॥२॥

(प्रसवे) सृष्टि के उत्पत्ति समय में (ते) तेरी (तिस्रः-वाचः) ऋग्यजुः सामरूप या स्तुति प्रार्थना उपासना तीन वाणियां (मखस्युवः) अध्यात्मयज्ञ को चाहती हुई† (उदीरते) उद्भूत होती हैं (यद्) जब कि तू परमात्मन् (अव्यः सानवि) पृथिवी को‡ ऊंचे स्थान—त्रिविष्टप्—तिब्बत पर तथा पार्थिव देह के सम्भजनीय हृदय या अन्तःकरण में प्राप्त होता है ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
अव्या वारैः परि प्रियꣳ हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
१ २ ३ १ २
पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥

(अद्रिभिः-'अद्रयः') श्लोककर्ता—स्तुतिकर्ताजन❀ (प्रियं हरिम्) प्रिय दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्त एकरूप परमात्मा को (अव्याः-वारैः) पृथिवी—पार्थिव देह के वरणीय शुद्ध साधनों—मन, वाणी आदि द्वारा स्तुति करके (परिहिन्वन्ति) परिवृद्ध° करते हैं—साक्षात् करते हैं ॥ ३ ॥

---

§ "पविः-वाङ्नाम" [निघ० ३।११]

† "मखो यज्ञः" [निघ० ३।२७] "यज्ञेन वाचः पदवीमायन्" [ऋ० १०।७१।३]

‡ "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६।१।२।३३]

❀ "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५] विभक्तिव्यत्ययः ।

° "हि गतिवृद्धयोः" [स्वादिः]

१२०८ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

(मदिन्तम कवे) हे अत्यन्त हर्षकर क्रान्तदर्शी सोम शान्त-स्वरूप परमात्मन् ! तू (अर्कस्य पवित्रं योनिम्-आसदम्) प्राण* के पवित्र घर† अथवा अर्चनीय के अपने पवित्र घर में बैठने को (धारया-आपवस्व) धारा—आनन्दधारा रूप से प्राप्त हो ॥४॥

१२०९ स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।
एन्द्रस्य जठरं विश ॥५॥

(मदिन्तम) हे अत्यन्त हर्षप्रद सोम—परमात्मन् ! तू (सः) वह (अक्तुभिः-गोभिः) कमनीय स्तुति वाणियों से (अञ्जानः) प्रसिद्ध हुआ (इन्द्रस्य जठरम्-आविश) उपासक आत्मा के अन्दर‡ आविष्ट हो—प्राप्त हो ॥५॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्षधाम का इच्छुक)
देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त शान्तस्वरूप परमात्मा)

* "प्राणो वा अर्कः" [श० १०।४।१।२३]
† "योनिः-गृहनाम" [निघ० ३।४]
‡ "मध्यं वै जठरम्" [श० ७।१।१।२२]

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
३ १ २ ३ १र २र
अवाहन् नवतीर्नव ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४०४)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
२.३ २ ३ २ ३ १ २
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२॥

(पुरः सद्यः) प्रथम तुरन्त (इत्थाधिये) पूर्वोक्त सत्यप्रज्ञावाले* (दिवोदासाय) मोक्षदर्शक† उपासक के लिये (त्यं शम्बरम्) उस विरोधी कल्याण के वारक रोकनेवाले अज्ञानान्धकार को (तुर्वशम्) हिंसा में शमन करने वाले द्वेष को‡ (अध) और (यदुम्) जो भी हो उससे अपने को भरके ऐसे कामभाव को अवाहन्:° सोम परमात्मा नष्ट करता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
परि णो अश्वमश्वविद् गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! तू (अश्ववित्) व्यापनशील मन को—मनोभाव को जानने वाला है (नः)

* "इत्था सत्यनाम" [निघ० ३।१०]

† अलुक् समासः "दस दर्शने" [चुरादिः]

‡ "तुर्वी हिंसायाम्" ततः अच् कर्तरि । तुवेशेते ड ।

° पूर्ववत् ।

हमारे लिये (अश्वम्) व्यापनशील मन को (गोमत्) स्तुति वाणी वाला (हिरण्यवत्) यश वाला यशस्वी* तथा (सहस्रिणीः-इषः) सहस्रों में ऊंची कामनाओं को भी (परिस्रुव) सम्पन्न कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋष्यादयः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
१२१२ अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
५१० २ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥ ऋ० ९-६१.२५

(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (मृधः-अपघ्नन्) पापों को† दूर करता हुआ (अराव्णः) अनृत प्रशंसाओं‡ को (अप-अपघ्नन्) दूर करता हुआ (इन्द्रस्य निष्कृतम्-गच्छन्) उपासक आत्मा के संस्कृत शुद्ध हृदय को गति देता हुआ (पवते) धारा-रूप में प्राप्त होता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३१२ २२३१३ ३१२ २२
१२१४ मह्हो नो राय आभर पवमान जही मृधः ।
१ २ ३ ३ १ २
रास्वेन्दो वीरवद् यशः ॥२॥ ऋ० ९-६१.२६

(इन्दो पवमान) हे आनन्दरसपूर्ण धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तू (नः) हमारे लिये (महः-रायः) महती—ऊंची सम्पत्तियां जीवन्मुक्तों वाली (आभर) आभरित कर (मृधः- जीवन्मुक्तों

* "यशो वै हिरण्यम्" [ऐ० ७।२८।७]

† "पाप्मा वै मृधः" [श० ६।३।३।८]

‡ अराव्णो वा एते येऽनृतमभिशंसन्ति [ता० ६।१०।७]

जहि) हमारे प्रति अन्यों के पापों को नष्ट कर (वीरवत्-यशः-रास्व) स्वात्माधार बलवाले यश को प्रदान कर ॥ २ ॥

१ २ ३१ ३२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा शतश्चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमामिनन् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
यत् पुनानो मखस्यसे ॥३॥

(त्वा राधः-दित्सन्तम्) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तुझ धन देते हुए को (शतश्चन) सौ भी (ह्रुतः) कुटिल जन (न-आमिनन्) नहीं हिंसित कर सकते हैं—नहीं टकराते हैं (यत् पुनानः-मखस्यते) जब कि दोष शोधन करता हुआ अध्यात्मयज्ञ निर्विघ्न कराना चाहता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—निध्रुविः (नियत धारणा वाला एकाग्र उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३१ २
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचना ।
३ १र २र ३ २
हिन्वानो मानुषीरपः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४०३)

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
३ १२ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥२॥

(सूरः) सरणशील—व्यापनशील (पवमानः) आनन्द-

धारारूप में आने वाला परमात्मा (मनौ-अधि) विद्वान् उपासक† के अन्दर (एतश्म्-अयुक्त) मनरूप घोड़े को जोड़दे—लगादे (अन्तरिक्षेण यातवे) आत्मा—अध्यात्ममार्ग से‡ जाने को ॥२॥

३२उ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे ।
२ ३ १ ३ १ २ ३ १
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥३॥

(उत) हां (सूरः) सरणशील—व्यापनशील परमात्मा (त्याः-हरितः) उन हरणशील—उपासकों का हरने आकर्षित करने वाले आनन्दप्रवाहों को (रथे-अयुक्त) रमणीय अध्यात्म यज्ञ में जोड़ता है (इन्दुः-इन्द्रः-इति ब्रुवन्) तू इन्द्र है—उपासक आत्मा है मैं इन्दु हूं—उपास्य हूं—उपास्य हूं मैं आगया हूं ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३२३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
१२३ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥

---

† "ये विद्वांसस्ते मनवः" [श० ८।६।३।१८]

‡ "आत्मान्तरिक्षम्" [काठ० १६।२]

(वः 'यूयम्'-अग्निभिः 'अग्नयः')* तुम ज्ञानी उपासको! (सजोषाः) समान साथी—ज्ञान चेतनता में समानरूप (यजिष्ठम्) अत्यन्त याजक—अध्यात्मयज्ञ के सम्पादक प्रसारक (दूतम्) प्रेरक (अग्निम्) परमात्मा को (अध्वरे कृणुध्वम्) अध्यात्मयज्ञ में प्रकाशित करो (यः) जो (मर्त्येषु) तुम ज्ञानी मनुष्यों में (निध्रु विः) नित्य रहने वाला तुम्हारे अन्दर व्यापक (ऋतावा) अध्यात्मयज्ञ का आधार (तपुः) तेजस्वी (मूर्धा) मूर्धारूप (घृतान्नः) तेजस्वरूप (पावकः) शोधक है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥

(अश्वः-न यवसे प्रोथत्) जैसे घोड़े को घास भोजन के लिये जहां तहां परिप्राप्त होता है† (यदा) जब (अविष्मन्) परमात्मा उपासक की रक्षा करने के हेतु (महः संवरणात्-व्यवस्थात्) महान् मोक्ष स्थान से अपने कृपापात्र उपासक आत्मा के अन्दर व्यवस्थित—साक्षात् होजाता है (आत्) अनन्तर (वातः-अस्य-अनुवाति) जब उपासक आत्मा‡ इस परमात्मा के अनुकूल हो जाता है (अधस्म) तब ही (ते शोचिः कृष्णं वृजनम्-अस्ति) तेरी ज्योति आकर्षक बल° है ॥ २ ॥

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः।

* उभयत्र विभक्तिव्यत्ययः।

† "प्रोथृ पर्याप्तौ" [भ्वादि०]

‡ "वातः-अयमात्मा" [काठ० ७।२४]

° "वृजनं बलनाम" [निघ० २।९]

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! (ते यस्य नवजातस्य वृष्णः) जिस तुझ साक्षात् सुखवर्षक के (अजराः-ईधानाः-उच्चरन्ति) अजर ज्ञान ज्योतियां उपासक के ऊपर—उपासक के अन्दर उद्भूत होती हैं (अरुषः-धूमः-अच्छद्याम-एषि) आरोचमान काम आदि का कम्पाने वाला हो उपासक को अमृतमोक्षधाम की ओर ले जाती हैं (दूतः-देवान् हि समीयसे) प्रेरक हुआ मुमुक्षु उपासकों को प्राप्त हो जाता है* ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सुकक्षः श्रुतकक्षो वा (अच्छी कक्षा में वर्तमान या सुनली है अध्यात्म कक्षा जिसने ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
१र २र ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०४)

२ ३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र ३ १
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
३ २ ३ २उ ३ २
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२॥

(सः-इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा, अतः (दामनेकृतः)

* एषि-अन्तर्गत णिच् ।

कर्मफल प्रदान करने में समर्थ (सः-ओजिष्ठः) वह अत्यन्त बलवान् अतः (बले हितः) सृष्टि के रचन, धारणरूप बलकार्य करने के निमित्त योग्य (सः-द्युम्नी श्लोकी सोम्यः) वह यशस्वी प्रशंसनीय उपासनारस प्राप्त करने योग्य ॥ २ ॥

३ २उ ३ १र २र३ १ २ ३ १ २
गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः ।
३ २ ३ १र २र
ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥३॥

(गिरा) वह स्तुति वाणी से (वज्रः-न सम्भृतः) वज्रसमान-दुःखों से वर्जित करने वाला सम्यक् धारण करने योग्य (सः-बलः) वह बलवान् (अनपच्युतः) अपच्युत न करने योग्य (उग्रः-अस्तृतः) तेजस्वी अहिंसनीय (ववक्ष) प्राप्त होता है ॥३॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—उचथ्यः (वाक्-स्तुति करने में कुशल*)

देवता—सोम (शान्त परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतँ सोमं पवित्र आनय ।
३ १ २.३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४०७)

* "वागुक्थम्" [ष० १।५]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र
तव त्ये इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत । १२२५
१ २ ३ १ २
पवमानस्य मरुतः ॥२॥ ऋ० ९.६१.२

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन् ! (तव पवमानस्य-अन्धसः-मधोः) तुझ अध्यानीय उपासनीय धारारूप में प्राप्त होते हुए मधुमय को॰ (त्ये मरुतः-देवाः-व्याशत) वे मुमुक्षु† देव उपासक जन विशेष रूप से प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
दिवः पीयूषमुत्तमꣳ सोममिन्द्राय वज्रिणे । १२२६
३ २ ३ १ २
सुनोता मधुमत्तमम् ॥३॥ ऋ० ९.६१.२

(दिवः-उत्तमं पीयूषं मधुमत्तमं सोमम्) मोक्षधाम के स्वात्त्वरूप उत्तम अमृत अत्यन्त मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा को (वज्रिणे-इन्द्राय) ओजस्वी‡ आत्मा के लिये (सुनोत) हे उपासको साक्षात् करो ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—कविः (विद्वान् मेधावी उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—जगती ।

३२ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः । १२२७

---

* "द्वितीयार्थे षष्ठी"

† "मरुतो देवविशः" [श० २।७।१।१२] २.५.१.१२

‡ "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]

१ २ ३ २उ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा।१
ऋ० ९.९६.१.
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५८)

१२२९ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १र
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वाः२सिषासन् रथिरा
२र १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गविष्टिषु। इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते
३ १ २
मनीषिभिः ॥ २ ॥ ऋ० ९.९६.२

(गभस्त्योः-शूरः-न-आयुधा धत्ते) जैसे शूर पराक्रमी हाथों में अस्त्रों को धारण करता है, ऐसे (रथिरः-इन्दुः-स्वः-गविष्टिषु-सिषासन्) विश्वरथ का स्वामी* परमात्मा स्तुतिवाणियों से इष्टि-अध्यात्मयज्ञ जिनका है उन उपासकों के निमित्त मोक्षानन्द को देने की इच्छा रखता हुआ (इन्द्रस्य-शुष्मम्-ईरयन्) उपासक आत्मा के बल को प्रेरित करता हुआ (अपस्युभिः-मनीषिभिः) अध्यात्मकर्म योगाभ्यास चाहने वाले चिन्तकों उपासकों के द्वारा (हिन्वानः-अज्यते) प्रेरित हुआ साक्षात् होता है ॥ २ ॥

१२३० १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।
१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि
१ २
शश्वतः ॥ ३ ॥ ऋ० ९.९६.३

(पवमान सोम) हे आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाले शान्त परमात्मन् ! तू (ऊर्मिणा तविष्यमाणः) अपनी आनन्द-धारा से गति करता हुआ बढ़ता हुआ† (इन्द्रस्य) आत्मा के

* "तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति रथस्य हैतद्रूपम्" [जै० २।१२]
† "तु गति वृद्धि हिंसासु" [अदादि०]

(जठरेषु) मध्य* मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार में (आविश) आविष्ट हो, बस जा (नः प्र पिन्व) हमें अपनी आनन्दधाराओं से सींच—भरपूर कर (विद्युद्-अभ्रा-इव रोदसी) जैसे विद्युत् मेघों को—मेघ वर्षाओं को भूमि आकाश में सींच देती है (नः शश्वतः-वाजान् धिया उपमाहि) हमारे लिये नित्य अमृत अन्न भोगों को प्रज्ञा से भेंट प्रदान कर ॥ ३ ॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—देवातिथिः (परमात्मा में अतन-गमन करने वाला उपासक)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)
छन्दः—बृहती ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
१ २ ३१र २र ५ २ ३ १ ३ १ २
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २२५)

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्वा रुमे रुशके श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २ २र ३ १ २
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (यत्-वा) और जो (रुमे) स्तुति कर्ता† (रुशके) ज्ञानज्वलित‡ (श्यावके) अध्यात्म मार्ग में

* "मध्यं वै जठरम्" [श० ७।१।१।२२]

† "रुश शब्दे" [अदादि०[ततः-मक्-डित् औणादिक ।

‡ "रुशत्:-रोचते ज्वलति कर्मणः" [निरु० ६।१४]

चलने वाले (क्रपे) समर्थ—आत्मबल वाले उपासक के निमित्त (सचा मादयसे) समकाल या समभाव से उन्हें हर्षित करता है क्योंकि (ब्रह्मवाहसः कण्वासः स्तोमेभिः) ब्रह्मस्तोत्र समर्पित करने वाले मेधावी* उपासक स्तुतिवचनों से (त्वा-आयच्छन्ति) तुझे अपनी ओर आकर्षित करते हैं अतः (इन्द्र-आयाहि) परमात्मन् उपासक के हृदय में आ—साक्षात् हो ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—बृहती ।

१२२३ / २८०

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आगमत् ॥१॥

ऋ० ८.६१.१. (देखो अर्थव्याख्या पृ० पृ० २३६)

१२२४

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२॥

अथर्व—२०.११३.२ ऋ०—८.६१.२

(तम्) उस तुझ (ओजसा स्वराजं वृषभं हि) बल से स्वयं राजमान कामवर्षक इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (धिषणे) स्तुति और विद्या† (निष्टतक्षतुः) निष्पन्न करती है—साक्षात्

---

* "कण्वः-मेधावी" [निघ० ३।१५]

† "वाग्वै धिषणा" [मै० ३।१।८] "धिषणा वाङ्नाम" [निघ० १।११] "विद्या वै धिषणा" [मै० ४।२।१]

कराती है (उत) अपि च (उपमानां प्रथमः-निषीदसि) उपासना योग्यों में* प्रमुख—सर्वोपरि तू निश्चित इष्ट प्रसिद्ध होता है (ते मनः कामं हि) तेरा मन सोम की—उपासनारस की कामना करने वाला है ॥ २ ॥

—:o:—

अष्टम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त स्थिर योगी)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २
पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
३१र २र३ १ २
वायुमारोह धर्मणा ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३९७)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमान नितोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
१ २ ३१र २र
इन्दो समुद्रमाविश ॥२॥

(पवमान सोम इन्दो) हे आनन्द धारा में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप रसीले परमात्मन् ! तू (श्रवाय्यं रयिं नितोशसे) श्रवणीय—यशोधन को अपने अन्दर रख—रखता है, तू (समुद्रम्-आविश) मुझ उपासक मन को†—में आविष्ट हो ॥ २ ॥

* "निर्धारणे षष्ठी"

† "मनो वै समुद्रः" [श० ७।५।२।५२]

३ १ २ ३ १२ ३१ २ ३२
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः ।
३१र २र ३ १ २
नुदस्वा देवयुं जनम् ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४०३)

द्वितीय तृच

ऋषिः—अम्बरीषः—(अध्यात्मान्न ग्राहक हृदयाकाश को प्रेरित करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५०)

३ १२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृह ।
१र २र ३ १र २र ३ १ २
निर्नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥२॥

(अध्रिगो वसो) हे अधृतगमन† निर्बाध व्याप्त गतिवाले वासाधार परमात्मन् ! (अस्य ते वसो पुरुस्पृहः-राधसः) इस तुझ वसाने वाले बहुत कामना करने योग्य सिद्धिप्रद के (सुम्ने) सुख शान्ति के निमित्त‡ (वयम्-इषः-नेदिष्ठतमाः-निस्याम) हम प्रार्थी अत्यन्त निरन्तर निकट रहें ॥ २ ॥

† "अध्रिगो अधृतगमन" [निरु० ५।१०]

‡ "सुम्नं सुखनाम" [निघ० ३।६]

१ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
२ ३ १ ३ १ २ ३२ ३ १२ २२ ३ २
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥३॥

(स्यः स्वानः-मदच्युतः) वह निष्पन्न—साक्षात् हुआ हर्ष आनन्द रस झिर रहा जिससे ऐसा (गव्ययुः) स्तुति स्नेह को चाहने वाला (इन्दुः) रसीला सोम परमात्मा (अव्ये परि-अक्षरत्) रक्षणीय हृदय में परिपूर्णरूप से प्राप्त होता है (भ्राजा-न-धारा) चमकती विद्युत्तरङ्ग की भांति अपनी आनन्द धारा से (ऊर्ध्वः) उछलता सा (अध्वरे याति) ध्यान यज्ञ में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋण त्रास को क्षीण करने वाले जप स्वाध्याय कर्ता दो ऋषि)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १२ २२
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः । पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५५)

३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥२॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (शुक्रः) शुभ्र-दीप्तिमान् हुआ (देवेभ्यः) उपासकजनों के लिये उनके (दिवे पृथिव्यै)

प्राण के लिये* शरीर के लिये† (च) और (प्रजाभ्यः) इन्द्रियों के लिये‡ (शं पवस्व) कल्याण होकर प्राप्त हो ॥ २ ॥

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥३॥

(शुक्रः-पीयूषः-वाजी) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू शुभ्र-तेजस्वी अमृतरूप अमृत अन्नभोग वाला (दिवः-धर्ता-असि) मोक्षधाम का धारक है (सत्ये विधर्मन् पवस्व) सत्यस्वरूप विशेष धर्म सम्पन्न उपासक आत्मा में प्राप्त हो ॥ ३ ॥

नवम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—उशनाः (स्वकल्याणार्थ परमात्मसङ्गति का इच्छुक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥१॥ (देखो अर्थव्याख्या पृ० पृ० ३०५)

कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता ।
नि मर्तेष्वा दधुः ॥२॥

---

* "प्राणो द्युलोकः" [श० १४।४।३।११]
† "यच्छरीरं सा पृथिवी" [ऐ० आ० २।३।३]
‡ "इन्द्रियं वै प्रजाः" [काठ० २७।२]

(यं प्रशस्यं कविम्-इव) जिस परमात्मरूप अग्नि को प्रशंसा योग्य कवि—उपदेष्टा ज्ञानदाता की भांति भी (इति द्विता) इस दो प्रकार से—प्रिय मित्र जैसा और प्रशंसा योग्य उपदेष्टा रूप से आत्मा के अन्दर साथी और जगन्नियन्ता विराट् रूप में (मर्तेषु-देवासः-नि-आदधुः) मनुष्यों में विद्वान् जन या जीवन्मुक्त ऋषि-जन प्रकाशित करते हैं—वर्णित करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄंः पाहि शृणुधी गिरः ।
१ २ ३ २ ३ १र २र
रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥

(यविष्ठ) हे अत्यन्त मिलनेवाले† आत्मभाव से अपनाने वाले परमात्मन् ! तू (दाशुषः-नॄन्-पाहि) स्वात्मदान करने वाले मुमुक्षुजनों की पालना कर (गिरः शृणुधि) स्तुतियों को सुन—स्वीकार कर (उत) अपि-और (त्मना तोकं रक्ष) अपने पुत्र रूप आत्मा की रक्षा कर सत्सङ्ग प्रदान करके ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधावाला‡)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २
एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
३ २३ ३ १२ ३१र २र ३ १
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३२६)

† "यु मिश्रणे" 'योता-अतिशयेन यविष्ठः' ।

‡ "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

१२ ३२ ३२ ३१ २ ३ १ २
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
१२ २२ ३ २ ३१२ २२ ३ २
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥२॥

(सत्य सोमपाः-इन्द्र) हे सत्यस्वरूप उपासनारस को पान करने वाले—स्वीकार करने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (उभे-रोदसी-अभि बभूविथ हि) दोनों द्युलोक पृथिवीलोक को अभिभूत किए हुए उनके स्वामी बना हुआ है (दिवः पतिः) मोक्षधाम का पति है* (सुन्वतः-वृधः) उपासनारस सम्पादन करने वाले का वर्धक है—बढ़ाने वाला है ॥ २ ॥

१२ २२ ३ १ २ ३ २ ३१२ २२
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि ।
३ २उ ३ १ २ ३१२ २२ ३ २
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥

(इन्द्र त्वं हि) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू ही (शश्वतीनां पुरां धर्ता-असि) शाश्वतिक या श्रेष्ठ† आत्माओं‡ मुमुक्षुओं—जीवन्मुक्तों का धारणकर्ता है (दस्योः-हन्ता) क्षयकर्ता—कामादि विघ्नों का हननकर्ता (मनोः-वृधः) मननशील जन का वर्धक (दिवः पतिः) मोक्षधाम का पति है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—जेता (वासनाओं पर जय पानेवाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

* "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]

† "धीराणां शश्वताम्" [अथर्व० २०।१२८।४]

‡ "आत्मा वै पूः" [श० ७।५।१।२१]

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ १
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २९०)

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं बलस्य गोमतोऽपावर द्रिवो बिलम् ।
२ ३ १२ १२ ३ १ २
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥२॥

(अद्रिवः-त्वम्) हे अदीर्ण शक्ति वाले परमात्मन् ! तू (गोमतः-बलस्य बिलम्) स्तुतिवाणी वाले संवृत स्थान—अन्तः-करण—मन के प्राण द्वार को (अपावः) खोलदे जिससे (देवाः) मुमुक्षुजन या देववृत्तियां—सद्वृत्तियां (तुज्यमानासः) कामादि पापों या पापवृत्तियों से पीड़ित हुए (अबिभ्युषः) निडर हुए (त्वाम्-आविषुः) तुझे प्राप्त हो सकें ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२
इन्द्रमीशानमोजसाभिस्तोमैरनूषत ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥३॥

(ईशानम्-इन्द्रम्) हे उपासको ! विश्व के स्वामित्व करने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मा की (ओजसा) आत्मबल के साथ (स्तोमैः-अभि-अनूषत) स्तुतिसमूहों द्वारा निरन्तर स्तुति करो (यस्य रातयः सहस्रं सन्ति) जिसके धन—तृप्तिकारक साधन सहस्रों हैं (उत वा) अपि च—और भी (भूयसीः) बहुतेरी लाखों प्रकार की दान प्रवृत्तियां—कृपा दृष्टियां हैं ॥ ३ ॥

इति नवमोऽध्यायः ॥

अथ दशम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—पराशरः (पर-विरोधी काम आदि को नष्ट करने वाला उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१२४३ ४२०

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ २
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥१

ऋ० ९-९६.४० (देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४३१)

१२४४

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोमः २

ऋ० ९-९०.४२

(सोमदेव) हे शान्तस्वरूप परमात्मदेव (पूयमानः) तू योगाभ्यास द्वारा साक्षात् हुआ (नः-इष्टये राधसे) हमारी आभ्युदयिक कामना के लिये तथा नैःश्रेयसिक—मोक्षसिद्धि के लिये (वायुं मत्सि) आयु को* हर्ष देने वाला बना† (मित्रावरुणा

* "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० १।५]

† "मत्सि मादय" अन्तर्गणिजर्थः, लेट प्रयोगः ।

मत्सि) प्राण-अपान को* श्वास उच्छ्वास को हर्ष देने वाले करदे (मारुतं शर्धः-मत्सि) प्राणों के बलों† को—जीवन शक्ति हर्ष देने वाला बना (देवान् मत्सि) इन्द्रियों को हर्षप्रद बना (द्यावापृथिवी मत्सि) ज्ञानाधार मन को और रसाधार शरीर को‡ हर्ष देने वाला करदे ॥ २ ॥

१२५४ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् । ऋ० ९-९६
५४२ अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४४४)

द्वितीय दशर्च

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१२५५ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥१॥ ऋ० ९-३-१

(एषः-अमर्त्यः-देवः) यह अमर शान्तस्वरूप परमात्मदेव (पर्णवीः-इव) पत्तों से गति करने वाले पत्ती की भांति (द्रोणानि-

* "प्राणापानौ मित्रावरुणौ" [काठ० २९।२]
† "शर्धः-बलनाम" [निघ० २।९]
‡ "यच्छरीरं सा पृथिवी" [ऐ० आ० २।३।३]

अभि-आसदं दीयते) द्रवण स्थानों—उपासक पात्रों के प्रति* प्राप्त होने को गति करता है† प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२५६ ३ १२ २र३ १ २ ३ २ ३ १२ २र
एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो विगाहते ।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद् रत्नानि दाशुषे ॥२॥ ऋ० ९.३.६

(एषः-देवः) यह द्योतमान सोम—शान्त परमात्मा (विप्रैः-अभिष्टुतः) मेधावी उपासकों द्वारा अभीष्ट स्तुति में लाया गया (अपः-विगाहते) उनकी श्रद्धाओं में विगाहन करता है‡ (दाशुषे रत्नानि दधत्) आत्मसमर्पी—श्रद्धावान् के लिये रमणीय अध्यात्म सुखैश्वर्यों को धारण कराने के हेतु ॥ २ ॥

१२५८ ३१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्त्वभिः ।
१ २
पवमानः सिषासति ॥३॥ ऋ० ९.३.४

(एषः-शूरः) यह प्रगतिशील परमात्मा (सत्त्वभिः-यन्-इव) गुणबलों द्वारा प्राप्त होता हुआसा (विश्वानि वार्या) सब वरणीय सुखों को (पवमानः) साक्षात् होता हुआ उपासक को देना चाहता है—दे देता है ॥ ३ ॥

१२५९ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
३ १ २ ३ २
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥४॥ ऋ० ९.३.५

* "प्रजापतेर्वापात्रं यद्द्रोणकलशः" [मै० ४।८।८]
† "दीयते-गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
‡ "आपः श्रद्धा" [क० ४७।३]

(एषः-पवमानः-देवः) यह आनन्दधारा में आता हुआ द्योतमान सोम परमात्मा (रथर्यति) उपासक को रथ-रमणस्थान बनाना चाहता है (दिशस्यति) उसे अपना आनन्द रस देना चाहता है (वग्वनुम्-आविष्कृणोति) मधुर वाणी* आशीर्वादरूप को प्रकट करता है या उपासक की स्तुति वाणी को सफल करता है ॥ ४ ॥

१२६० एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरि र्वाजाय मृज्यते ॥५॥ ऋ० ९-३-२

(एषः-हरिः-पवमानः-देवः) यह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता धारा-रूप में प्राप्त होता हुआ द्योतमान परमात्मा (विपन्युभिः-ऋतायुभिः) स्तुतिकर्ता मेधावी† सत्यकामी उपासकों के द्वारा (वाजाय मृज्यते) अमृत अन्न-भोग के लिये प्राप्त किया जाता है‡ ॥ ५ ॥

१२६१ एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति।
पवमानो अदाभ्यः ॥६॥ ऋ० ९-३-२

(एषः-पवमानः-अदाभ्यः-देवः) यह आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला अबाध्य सोम-शान्तरूप परमात्मदेव (विपा कृतः) स्तुति वाणी द्वारा° साक्षात् किया हुआ या प्रसन्न किया हुआ

* "वग्नुः-वाङ्नाम" [निघ० १।११] मध्ये वकारउपजनश्छान्दसः ।

† "विपन्युः-मेधावी" [निघ० ३।१५]

‡ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

° "विपा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

(ह्वरांसि-अतिधावति) क्रोधोंक्ष या कुटिल भावों—सङ्कल्पों को† हटाकर प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

३१उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
एष दिवं विधावति तिरो रजाꣳसि धारया ।
१ २ ३ १ २
पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥

(एषः-पवमानः) यह पवित्रकर्ता सोम परमात्मा (धारया) स्तुतिवाणी से‡ (कनिक्रदत्) साधु शब्द करता हुआ (रजांसि तिरः) भोगलोकों को° तिरस्कृत कर—उन्हे छोड़कर उनसे अलग (दिवं विधावति) उपासक को मोक्षधाम में पहुंचाता है* ॥७॥

३२उ ३ १ २ ३२उ ३ १ २
एष दिवं व्यासरत् तिरो रजाꣳस्यस्तृतः ।
१ २ ३ २
पवमानः स्वध्वरः ॥८॥

(एषः-पवमानः) यह पवित्रकर्ता सोम परमात्मा (अस्तृतः) अहिंसित अप्रतिबद्ध—बिना रुकावट वाला (रजांसि तिरः) भोगलोकों का तिरस्कार कर स्वयं भोगलोकों से परे हो (स्वध्वरः) उत्तम अध्यात्मयज्ञ आश्रय (दिवं व्यासरत्) मोक्षधाम में विशेष प्राप्त है ॥ ८ ॥

क्ष "ह्वरः क्रोधनाम" [निघ० २।१३]
† "ह्वृ कौटिल्ये" [भ्वादि०]
‡ "धारा वाङ्नाम" [निघ० १।११]
° "लोका रजांस्युच्यन्ते" [निघ० ४।१६]
* 'अन्तर्गतणिच्' ।

९२६४ ३१ ३२३ १२ ३२३१ २ ३२
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः।
१ २ ३ १२
हरिः पवित्रे अर्षति ॥९॥ ऋ० ९.३.९

(एषः-हरिः-देवः) यह दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम शान्त परमात्मदेव (प्रत्नेन जन्मना) देव जन्म—दिव्य जीवन होने से* (देवेभ्यः सुतः) जीवन्मुक्तों के लिये साक्षात् हुआ (पवित्रे अर्षति) पवित्र मोक्षधाम में प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

९२६५ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः।
१ २ ३ २
धारया पवते सुतः ॥१०॥ ऋ० ९.३.१०

(एषः-स्यः-उ) यह वही (पुरुव्रतः) बहुत कर्म आनन्त कर्म शक्तिवाला (जज्ञानः) उपासक के अन्दर प्रत्यक्ष हुआ (इषः-जनयन्) इच्छाओं को या इष्ट कमनीय वस्तुओं को प्रसिद्ध करता हुआ (धारया-सुतः-पवते) स्तुति धाराप्रवाह से साक्षात् कर्ताओं† को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

द्वितीय खण्ड

अष्टर्च

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागबन्धन से रहित या परमात्मा को अपने अन्दर लाने वाला उपासक)

---

* "देवा वै प्रत्नम्" [मै० १।५।५]

† "सुतः" क्विप् प्रत्ययः भूते"

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१२६६ एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥ ऋ० ९.१५.१

(एषः-शूरः) यह पराक्रमी सोम—परमात्मा (अण्व्या धिया) सूक्ष्म स्तुति से—आत्मीय स्तुति से* (आशुभिः-रथेभिः) शीघ्रगामी या व्यापनेवाले रमणीय तथा रममाण गुणों से (इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् याति) उपासक आत्मा के संस्कृत अन्तःकरण को 'अवगच्छन्' जानता हुआ प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१२६७ एष पुरु धियायते बृहते देवतातये ।
यत्रामृतास आशात ॥२॥ ऋ० ९.१५.२

(एषः) यह शान्तस्वरूप परमात्मा (बृहते देवतातये) महती मुक्ति देने के लिये (पुरु धियायते) बहु स्तुति चाहता है (यत्र-अमृतासः-आशात) जहां मुक्त आत्माएं आनन्दभोग को प्राप्त हैं ॥ २ ॥

१२६८ एतं मृजन्ति मर्ज्यमुपद्रोणेष्वायवः ।
प्र चक्राणं महीरिषः ॥३॥ ऋ० ९.१५.६

* "वाग्वै:" [का० श० ४।२।४।३]

(मही:-इषः-चक्राणम्) महती कामनाओं को पूरा करने वाले (एतं मर्ज्यम्) इस प्राप्त करने योग्य को (आयवः) उपासक जन* (द्रोणेषु) मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार पात्रों में (उपमृजन्ति) उपगत होते हैं—मनन आदि करके अपनाते हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २
एष हितो विनीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । १२६०
१ २ ३ २ ३ १ २
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥४॥ ऋ० ९-१५-२

(यद्-इ) जब ही (एषः-हितः) यह हितकर सोम-शान्त परमात्मा (शुन्ध्यावता पथा) शुद्धि—आत्मपरिशुद्धि वाले यम, नियम आदि मार्ग—योगमार्ग से (अन्तः-विनीयते) अन्दर बिठा लिया जाता है—बैठ जाता है तो (भूर्णयः-तुञ्जन्ति) धारण करने वाले उपासकजन इसे ग्रहण कर लेते हैं—अपना लेते हैं† ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । १२६०
२ ३ १ २ ३ १ २
पतिः सिन्धुनां भवन् ॥५॥ ऋ० ९-१५-५

(एषः-वाजी) यह अमृत अन्नभोग वाला सोम परमात्मा (सिन्धूनां पतिः-भवन्) स्यन्दमान—शरीर में बहने वाले प्राणों‡ का पालक होता हुआ (रुक्मिभिः शुभ्रेभिः-अंशुभिः) तेजस्वी शुभ्र—शोभन आनन्द प्रवाहों से (ईयते) उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

---

* "आयवः-मनुष्याः" [निघ० २।३]

† "तुजि हिंसाबलादाननिकेतनेषु" [चुरादि०] आदानार्थेऽत्र ।

‡ "प्राणो वै सिन्धुः" [श० ८।५।३।७]

३ १र २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २
एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३वृषा।
३ १र २र ३ १ २
नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥

(एषः) यह परमात्मा (ओजसा) ज्ञानबल से (शृङ्गाणि दोधुवत्) अपनी आनन्द तरङ्गों को उपासक के अन्दर तरङ्गित कर देता है (यूथ्यः-वृषा शिशीते) जैसे गोसमूह का साण्ड अपने सींगों को तीक्ष्ण करता है उन्हें भूमि में धुनकर* (नृम्णा दधानः) उपासकों के लिये अध्यात्म अन्न† अमृतभोग को धारण करने के हेतु ॥ ६ ॥

३१र २र ३ १र २र ३ १र २र
एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति ।
२ ३ १ २
अव शादेषु गच्छति ॥७॥

(एषः) यह सोम—परमात्मा (परुषा वसूनि) कठोर आच्छादक अध्यात्म सद्भावों के आवरक काम आदि दुर्वृत्तों को (पिब्दनः) नाशक‡ (अतिययिवान्) दूर कर जाता है—भगा देता है (शादेषु-अवगच्छति) वह उपासक के अन्दर रहनेवाले-शादों—शातनीयों—नाशनीयों—छिपे हुओं को जानता है ॥७॥

३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एत यु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे ।
३ २ ३ १ २
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥

* लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

† "अन्नं नृम्णाम्" [कौ० २७।४]

‡ पिब्द नाशे" वैदिक धातुः ।

(एतं त्यम्-उ) इस उस ही (स्वायुधं मदिन्तमं हरिम्) उत्तम आयु धारण कराने वाले अति हर्षकारक दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम परमात्मा को (दश क्षिपः-हिन्वन्ति) आत्मा को अपने अपने विषय में प्रेरित कर्ता मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा वाणी सदुपयुक्त हो परमात्मा को प्राप्त कराती हैं॥८

तृतीय खण्ड

षड्टच

ऋषिः—रहूगणः (विषयों से रहित परमात्मप्राप्ति के लिये गणा—वाणी—स्तुतिवाणी* जिसकी है ऐसा उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरर्ज्यते ।

२ ३ १ २ ३ १ २

गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

(एषः-स्यः-उ) यह वही (वृषा रथः) कामनावर्षक रमणीय रसरूप सोम—परमात्मा (अव्याः-वारेभिः-अर्ज्यते) पृथिवी—† पार्थिव देह के साधन द्वारों‡ श्रोत्र, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारों से

---

* "गणा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

† "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६।१।२।३३]

‡ "द्वारो वारयते वी" [निरु० ८।१०]

श्रवण, मनन आदि करने से व्यक्त—साक्षात् किया जाता है (सहस्रिणं वाजं गच्छन्) सहस्रों के ऊपर—सर्वोच्च अमृत अन्न-भोग को* प्राप्त कराने के हेतु† ॥ १ ॥

३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

(एतं हरिम्-इन्दुम्) इस दुःखापहर्ता सुखाहर्ता आनन्दरस-पूर्ण परमात्मा को (त्रितस्य) स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरगत—इन्द्र—आत्मा की (योषणः-अद्रिभिः) प्रीति साधने वाले मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, वाक्, इन्द्रियां श्लोक प्रशंसा स्तुति करने वाले‡ (हिन्वन्ति) आत्मा की ओर प्रेरित करते हैं (इन्द्राय पीतये) आत्मा के पान करने के लिये ॥ २ ॥

३ १र २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥३॥

(एषः-स्यः) यह वह सोम—परमात्मा (श्येनः-न) प्रशं-सनीय गतिवाले भास—वाज पक्षी के समान (मानुषीषुविक्षु-आसीदति) मननशील प्रजाओं में समन्तरूप से आ जाता है

---

* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १।१९३]

† 'गच्छन-गमयन्' अन्तर्गतणिजर्थः ।

‡ "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५] विभक्तिव्यत्ययेन प्रथमार्थे तृतीया ।

(जारः-न-योषितम् गच्छन्) अर्चनीय स्वामी* जैसे सेवक को† सेवार्थ प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

३२उ ३ १र २र ३ १र २र
1266 एष स्य मद्यो रसोऽवचष्टे दिवः शिशुः ।
२उ ३ २३ १ २
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥४॥ ऋ० ९.३८.५

(एषः-स्यः) यह वह (मद्यः-रसः) हर्षकर रसरूप रसीला (यः-इन्दुः) जो दीप्तिमान् परमात्मा (दिवः शिशुः) मोक्षधाम का शंसन करने वाला उपदेष्टा या प्रदाता‡ (वारम्-आविशत्) वरणीय हृदय को या आत्मा को° आविष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

३२उ ३१२ ३१र २र ३२
1268 एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
२ ३ १२३ २३ २
क्रन्दन् योनिमभिप्रियम् ॥५॥ ऋ० ९.३८.६ सायके

(एषः-स्यः-धर्णसिः-हरिः-सुतः) यह वह धारणकर्ता दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा उपासना द्वारा उपासित साधित हुआ (प्रियं क्रन्दन्) हितकर वचन बोलता हुआ (योनिम्-अभि-अर्षति) हृदय के प्रति—हृदय में प्राप्त होता है ॥५॥

---

* "जरति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

† "जुषते सेवते-इति योषित्" [उणादि० १।९७] "युष इति सौत्रो धातुः । अथवा जुष इत्यस्य वर्णविकारेण पाठः (हसृरुहियुषिभ्य इतिः) इत्युणादिसूत्रभाष्ये महर्षि दयानन्द सरस्वती ।

‡ "शिशुः शंसनीयोभवति शिशीतेर्वास्याद् दानकर्मणः" [निघ० १०।३९]

° "आत्मा यस्य शरीरम्" [श० १४।६।७।३०]

३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एतं त्यꣳ हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥

(एतं त्यम्) इस उस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अपस्युवः) कर्म में व्याप्त होने वाले (दश हरितः) दशहरणशील—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रियां और वाक्—वाणी का अपने मनन, विवेचन, स्मरण-चिन्तन, ममत्व, श्रवण-स्तवन आदि कर्मप्रवृत्तियां (मर्मृज्यन्ते) पुनः पुनः प्राप्त करती हैं* (याभिः-मदाय शुम्भते) जिनके द्वारा हर्ष आनन्दकरी सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा शोभित—आत्मा में प्रकाशित† होता है ॥ ६ ॥

चतुर्थ खण्ड

षडृच

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको)
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)
छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
२ ३ २ ३ १ २
अव्यं वारं विधावति ॥१॥

---

* "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
† प्रथमार्थे चतुर्थी ।

(एषः-वाजी) यह अमृत अन्नभोग देने वाला (विश्ववित्) विश्वज्ञाता (मनसः-पतिः) मन का स्वामी (नृभिः-हितः) मुमुक्षुजनों* से धारित—धारण किया हुआ (अव्यं वारं विधावति) पार्थिव देह विगत करके वरणीय मन—मुमुक्षु उपासक के मन को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
1221 एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥ ऋ० ९-२८-२

(एषः-सोमः) यह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (देवेभ्यः सुतः) मुमुक्षु उपासकों द्वारा† साक्षात् किया हुआ (विश्वा धामानि-आविशन्) सारे मन, बुद्धि, श्रोत्र, नेत्र आदि अङ्गों में‡ आविष्ट होने के हेतु (पवित्रे-अक्षरत्) पवित्र स्थान हृदय में होता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
1222 एष देवः शुभायंतेऽधि योनावमर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
वृत्रहा देववीतमः ॥३॥ ऋ० ९-२८-३

(एषः) यह (वृत्रहा) पापनाशक° (देववीतमः) मुमुक्षुजनों का अत्यन्त कमनीय* (अमर्त्यः) अमर (देवः) द्योतमान

---

* "नरो ह वै देवविशः" [जै० २।८६]
† विभक्ति व्यत्ययः, तृतीयास्थाने चतुर्थी ।
‡ "अङ्गानि वै धामानि" [का० श० ४।३।४।११]
° "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]
* 'वी गतिव्याप्ति प्रजनकान्ति····" [अदादि०]

सोम परमात्मा (योनौ-अधि शुम्भते) हृदयस्थान में प्रकाशित होता है—चमकता है॥ ३ ॥

३१उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
३१२ २२
अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

(एषः-वृषा) यह कामनावर्षक सोम—परमात्मा (दशभिः-जामिभिः-यतः) दश गति करने वाली बढी चढी† स्तुतियों—मन के मनन, बुद्धि के विवेचन, चित्त के स्मरण, अहङ्कार के ममत्व तथा पांच ज्ञानेन्द्रियों के श्रमण आदि और वाक् इन्द्रिय के प्रकथन रूप स्तुतियों द्वारा वशीकृत—वश किया हुआ (कनिक्रदत्) साधु उपदेश करता हुआ (द्रोणानि-अभि धावति) अधिकारी उपासक पात्रों की ओर गति करता है—उनको प्राप्त होता है॥४

३१२ २२ ३ १२ ३ २३ १२
एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि ।
३ १ २ ३१२ २२
पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

(एषः-पवमानः) यह आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा (द्यवि-अधि सूर्यम्-अरोचयत्) जैसे द्युलोक में सूर्य को चमकाता है‡ ऐसे (मत्सरः-मदः पवित्रे) तृप्ति करने वाला°

---

* "शुम्भ दीप्तौ" [भ्वादि०]

† "जमति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

"जाम्यतिरेकनाम" [निरु० ४।२०] अतिरेकः प्रवृद्धः ।

"उप त्वा जामयो गिरः" [साम० पू० १।१।३]

‡ अत्र लुप्तोपमावाचकोपमालङ्कारः ।

° "मत्सरः सोमो मन्दतेस्तृप्तिकर्मणः" [निघ० २।५]

हर्षयिता विकसित करने वाला पवित्र हृदय में उपासक आत्मा को चमकाता है ॥ ५ ॥

३१२ २२ ३ १ २ ३ १ २
१२८४ एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता ।
१ २ ३ १२ २२
पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥ ऋ० ९.२६.४ (प्रथमः पादः) / ९.२६.४ (..मः पादः)

(एषः) यह (वाचः-पतिः) स्तुति वाणी तथा वेदवाणी का स्वामी* (अदाभ्यः) न दबाने योग्य परमात्मा (संवसानः) अपने आनन्दमय रसीले स्वरूप से उपासकों को सम्यक् आच्छादित करता हुआ† (विवस्वता सूर्येण) खुलते हुए—किरणें फेंकते हुए सूर्य के समान‡ (हासते 'हासयते') हंसाता—हर्षित करता हुआ—ज्ञानप्रकाश और अमृत आनन्दरस से हर्षाता है ॥ ६ ॥

पञ्चम खण्ड

षड़्च

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु बुद्धिवाला° उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

३१ ३ २३१२ ३२३ १२
१२८५ एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
३ २उ १ २
पुनानो घ्नन्नपद्विषः ॥१॥ ऋ० ९.२६.१

---

* "प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्" [यजु० ३४।५७]

† "वस्र आच्छादने" [अदादि०]

‡ "लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

° "नरो ह वै देवविशः [जै० १।८३]

(एषः-कविः) यह क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (अभिष्टुतः) स्तुति में लाया हुआ (पुनानः) पवित्र करता हुआ (द्विषः-अपघ्नन्) द्वेष भावनाओं को दूर हटाता हुआ (पवित्रे-अधितोशते) हृदय में प्राप्त होता है ॥ १ ॥

२ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परिषिच्यते ।
३ १ ३ १ २
पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

(एषः-स्वर्जित्-दक्षसाधनः) यह मोक्षादि पर अधिकार रखने वाला आत्मबलसाधक (वायवे-इन्द्राय) आयुवाले* उपासक आत्मा के लिये (पवित्रे परिषिच्यते) पवित्र हृदय में परिपूर्णरूप से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
एष नृभिर्विनीयते दिवोमूर्धा वृषा सुतः ।
२ ३ १२ ३
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

(एषः) यह (दिवः-मूर्धा) मोक्षधाम का मूर्धारूप—मोक्ष धाम में मूर्धा के समान वर्तमान (वृषा) सुखवर्षक (विश्ववित्) विश्व में प्राप्त—सर्वत्र व्यापक (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (नृभिः सुतः) मुमुक्षुजनों से† साधित उपासित हुआ (वनेषु विनीयते) सम्भजन करणों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार में आ जाता है ॥ ३ ॥

---

* "आयुर्वा एष यद वायुः" [ऐ० ब्रा० २।४।३] मतुब्लोपश्छान्दसः ।
† "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
1288 एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः
१ २ ३ १२
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥ ऋ० ९-२६.४

(एषः पवमानः) यह आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला (इन्दुः) रसीला परमात्मा (अस्तृतः) अहिंसित (सत्राजित्) सबको समन्तरूप से जीतने—स्वाधिकार में रखनेवाला* (गव्युः) हमारे लिये वाणी का इच्छुक (हिरण्ययुः) अमृत का इच्छुक† (अचिक्रदत्) साधु वचन बोलता हुआ प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

३ २ ३क २ ३ १ २ ३ १ २
1289 एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
३ २उ ३ ३ २
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥५॥ ऋ० ९-२६.६

(एषः) यह (शुष्मी) बलवान्‡ (वृषा) कामनावर्षक (हरिः) दोषहर्ता (पुनानः) शोधता हुआ (इन्दुः) रसीला परमात्मा (इन्द्रम्-आ) उपासक आत्मा को प्राप्त होकर (अन्तरिक्षे) हृदयावकाश में (असिष्यदत्) सञ्चार करता है ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
1290 एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥६॥ ऋ० ९.२८.६

(एषः) यह (शुष्मी) बलवान् (अदाभ्यः) न दबनेवाला (पुनानः) पवित्र करनेवाला (देवावीः) मुमुक्षु उपासकों का

* "सर्वं वै सत्रम्" [श० ४।६।१।६५]
† "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० सं० ५।२।७।६] छन्दसि परेच्छामृतं स्यचल
‡ "शुष्मं बलनाम" निघ० २।६]

रक्षक (अघशंसहा) पापप्रशंसक विचारों का नाशक (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अर्षति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

षष्ठ खण्ड

षडृच

ऋषिः—रहुगणः (वासनारहित स्तुतिवाणी वाला*)
देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)
छन्दः—गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
३ १२ २र ३ २
विघ्नन् रक्षाꣳसि देवयुः ॥१॥

(सः) वह (वृषा) कामवर्षक (रक्षांसि विघ्नन्) जिनसे रक्षा करनी चाहिए ऐसे विघ्न बाधाओं को† विनष्ट करता (देवयुः) मुमुक्षु उपासक को चाहने वाला (सुतः) उपासित हुआ—उपासना में आया हुआ (पीतये) स्वानन्दरसपान कराने के लिये (पवित्रे-अर्षति) पवित्र हृदय में प्राप्त होता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १२ २र ३ २
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
३ २३ ३ १ २
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

---

* "गणा वाङ्नाम" [निघ० १।११]
† "रक्षस-रक्षितव्यमस्मात्" [निरु० ४।१८]

(सः) वह (विचक्षणः) द्रष्टा (धर्णसिः) धारणकर्ता (हरिः) दोषहरणकर्ता सोम—परमात्मा (योनिम्-अभि) स्व-स्थान उपासक आत्मा को अभिप्राप्त होना लक्ष्य कर (पवित्रे कनिक्रदत्-अर्षति) हृदय में साधु प्रवचन करता हुआ प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१२९४ स वाजी रोचनं दिवः पवमानो विधावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥ ऋ० ९.३६.२

(सः-वाजी) वह अमृत अन्नभोग वाला (दिवः-रोचनम्) मोक्षधाम का प्रकाशक (रक्षोहा) विघ्न दोष विनाशक (वारम्-अव्ययम् विधावति) वरने—चाहने वाले अविनाशी आत्मा को विशेषरूप से प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

१२९५ स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥४॥ ऋ० ९.३६.४

(सः-पवमानः) वह सोम—परमात्मा (जामिभिः सह) बढती हुई स्तुतियों के द्वारा (त्रितस्य) स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर धारी आत्मा के (सानवि-अधि) सम्भजनीय सर्वोच्च साधन अन्तःकरण में उस उपासक आत्मा को (सूर्यम्) 'सूर्यमिव' सूर्य की भांति* (अरोचयत्) तेजस्वी बना देता है ॥ ४ ॥

१२९६ स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥ ऋ० ९.३६.५

---

* "सूर्यं सूर्यमिव" लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

(सः) वह (वृत्रहा) पापनाशक (वृषा) कामनावर्षक (वरिवोवित्) मोक्षैश्वर्य को प्राप्त कराने वाला (अदाभ्यः) अहिंसनीय (सोमः) शान्त परमात्मा (सुतः) उपासक द्वारा साक्षात् हुआ (वाजम्-इव-असरत्) उसे जैसे यज्ञ को* ब्रह्मा प्राप्त होता है ऐसे प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

२ ३२ ३ १ २ ३२ १२ २२
स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति ।
२ ३ १ २ ३ १२
इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥६॥

(सः) वह (देवः) द्योतमान (इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण सोम—परमात्मा (कविना-इषितः) स्तुतिकर्मा मेधावी से प्रेरित—स्तुति में लाया हुआ (इन्द्राय मंहयन्†) आत्मा के लिये स्वानन्द देने के हेतु (द्रोणानि-अभिधावति) मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार पात्रों में प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

सप्तम खण्ड

षडृच

ऋषिः—पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा (शुद्धान्तःकरण वाला या परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक या दोनों)

देवता—पावमान्या अध्ययनप्रशंसा (पावमानी ऋचाओं के अध्ययन की प्रशंसा)

* "वाजं त्वा सरिष्यन्तं त्वा वाजजितं सम्मामीति यज्ञं त्वा वक्ष्यन्तं यज्ञियं सम्मार्जीत्यवैतदाह" [श० १।४।४।१५]

† "मंहते दानकर्मा" निघ० ३।२०]

छन्दः—अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २३ १र २३ १ २ ३ १२
यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतꣳ रसम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सर्वꣳ स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१॥

(यः) जो उपासक (पावमानीः-अध्येति) पवमान—आनन्दधारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मा की स्तुतियों को अपने अन्दर अधिगत करता है—आत्मा में समा लेता है (ऋषिभिः सम्भृतं रसम्) जिन स्तुतियों के कवियों—स्तुतिकर्ताजनों ने* रस—आनन्दरस—पवमान परमात्मरस को अपने अन्दर परम्परा से सम्यक् भरा—धारा† भरता—धारता है (सः) वह पावमानी स्तुतियों को अपने अन्दर बिठानेवाला (सर्वं पूतम्) समग्र प्राप्त रस को (मारिश्वना स्वदितम्) माता—अन्तरिक्ष—हृदयाकाश में प्राप्त मन से स्वदित—मनन आदि से अनुभव किए हुए को (अश्नाति) भोगता है ॥ १ ॥

३ १२३ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरꣳ सर्पिर्मधूदकम् ॥२॥

[पूर्वार्द्ध का अर्थ पूर्व समान जाने]

(तस्मै सरस्वती) उस उपासक के लिये स्तुति वाणी‡ (क्षीरं सर्पिः-मधूदकं दूहे) दूध, घृत, मधुर जल को दूहती है ॥ २ ॥

---

* "कवय ऋषयः" [मै० ४।१।२]

† "लिङ्ग व्यत्ययश्छान्दसः ।

‡ "सरस्वती वाङ्नाम" [निरु० १।११]

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२०० पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिभिः सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितम् ॥३॥

आं-वे. मार्ति

(पावमानीः) पवमान—सोम—परमात्मा की स्तुतियां (स्वस्ति-अयनी) कल्याण प्राप्त कराने वाली (सुदुघाः) साधुरूप कामना को दूहने वाली (हि) अवश्य (घृतश्चुतः) ज्ञानदीप्ति को झिराने वाली हैं (ऋषिभिः-रसः सम्भृतः) जिनको अपने अन्दर धारण कर उपासक मेधावीजनों ने रसरूप परमात्मा को परम्परा से सम्यक् धारण किया है (ब्राह्मणेषु-अमृतं हितम्) ब्रह्मवेत्ता विद्वानों के निमित्त अमृत—मोक्ष कहा गया है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
१२०१ पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

आं. वे. मा.

(पावमानीः) पवमान—सोम—परमात्मा की स्तुतियां (नः) हमारे लिये (इमं लोकम्-अथ-उ-अमुम्) इस पृथिवी लोक अर्थात् आभ्युदयिक जीवन को और उस लोक—मोक्षधाम अर्थात् निःश्रेयस-अध्यात्म जीवन को (दधन्तु) धारण करावें (देवीः) दिव्य गुण वाली वे स्तुतियां (देवैः समाहृताः) जीवन्मुक्तों द्वारा संज्ञापित—समझाई सिखाई हुई (नः) हमारी (कामान् समर्धयन्तु) कामनाओं को समृद्ध करें—सफल करें ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१२०२ येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनातु नः ॥५॥

आं. वे. मा.

(देवाः) सुमुक्षु उपासक जन (येन पवित्रेण) जिस पवित्र-कारक परमात्मा से—'उसके ध्यान दर्शन होजाने पर' (आत्मानं सदा पुनते) अपने को सदा पवित्र करते हैं (तेन सहस्रधारेण) उस सहस्र आनन्द धारा वाले पवमान—परमात्मा—उसके ध्यान दर्शन से (नः) हमें (पावमानीः पुनन्तु) स्तुतियां पवित्र करें॥५

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
पावमानीः स्वस्त्यनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
पुण्याँश्च भक्ष्यान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥

(पावमानीः स्वस्त्यनीः) पवमान—सोम—परमात्मा की स्तुतियां कल्याण प्राप्त कराने वाली हैं (ताभिः) उनके द्वारा—उनके सेवन से उपासक (नान्दनं-गच्छति) केवल सुख* मोक्ष को प्राप्त होता है (च) तथा (पुण्यान् भक्षान् भक्षयति) वहां मोक्ष में पुण्यभोगों को भोगता है (अमृतत्वं च गच्छति) और अमरत्व को पाता है ॥ ६ ॥

अष्टम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (अग्रणी ज्ञान प्रकाशक परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

---

* 'नन्दनं सुखम्' अनन्दन नसुखं तत्प्रतिषिद्धम्-नान्दनम्' ।

१ २ ३ १२ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अगन्म मह्या नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१॥

(यः) जो अग्नि—अग्रणी ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (स्वे-दुरोणे) अपने घर मोक्षधाम में* (समिद्धः) सम्यक् दीप्तस्वप्रकाश से प्रकाशित (दीदाय) जो विश्व को प्रकाशित करता है† उस (यविष्ठम्) अत्यन्त युवा—सदा अजर (उर्वी रोदसी-अन्तः) महान् द्युलोक पृथिवी लोक—विश्व के ओर छोर पर्यन्त‡ वर्तमान (चित्रभानुम्) चायनीय महनीय—प्रशंसनीय° ज्योतिवाले (विश्वतः प्रत्यञ्चम्) सर्व ओर प्रतिगत ज्ञानदृष्टि से प्राप्त (स्वाहुतम्) हृदय में सम्यक् गृहीत—धारित को (मह्या नमसा-अगन्म) महान् नम्र-भाव-स्तवन से हम प्राप्त करें ॥ १ ॥

२ ३ १२ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निष्टवे दम आ जातवेदाः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥२॥

(सः) वह (जातवेदाः-अग्निः) उत्पन्नमात्र एवं प्रसिद्ध मात्र का जानने वाला अग्रणी ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (मह्ना) अपने महत्व से (विश्वा दुरितानि साह्वान्) हमारे सब कष्टों दुःखों को दबाने दूर करने वाला है (दमे आष्टवे) वह प्राप्त घर में समन्त

* "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]
† "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]
‡ "रोदसी रोधसी रोधः कूलम्" [निरु० ६।१] "रोदसी द्यावापृथिवी नाम [निघ० ३।३०[
° "चित्रं चायनीयं महनीयम्" [निघ० ४।४]

रूप से स्तुति किया जाता है (सः) वह (नः) हमें हमारी (रक्षिषत्) रक्षा करे (अस्मान्-गृणतः-दुरितात्) हम स्तुति करने वालों की दुःखों से रक्षा करे (उत) अपि-और (नः-मघोनः-अवद्यात्) हम अध्यात्म-यज्ञ वालों या अध्यात्म धन वालों* की निन्दनीयरूप पाप से रक्षा करे ॥ २ ॥

१२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वे वसु सुषणानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

(अग्ने) हे अग्रणी ज्ञानप्रकाशक परमात्मन् ! (त्वं वरुणः-उत मित्रः) तू वरने वाला—अपनी ओर मोक्षार्थ वरण करने वाला और संसार में श्रेष्ठकर्म करणार्थ प्रेरित करने वाला है (वसिष्ठाः) तेरे में अत्यन्त वसने वाले उपासक जन (मतिभिः) स्तुति वाणियों से† (त्वां वर्धन्ति) तुझे अपने अन्दर बढ़ाते हैं—अधिकाधिक साक्षात् करते हैं (त्वे) तेरे साक्षात् हो जाने पर (सुषणानि वसु सन्तु) सुखसम्भाजक धन—अध्यात्मधन हो (यूयं स्वस्तिभिः-नः सदा पात) तुम‡ कल्याणसाधनों से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वत्सः (स्तुतिवचन बोलने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

---

* "यज्ञेन मघवान् भवति" [तै० ४।४।८।१]

† "वाग्वै मतिः" [शत० ८।१।२।७]

‡ "यूयम्" बहुवचनमादरार्थम् ।

३ २उ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २
महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।
१ २ ३ १ २
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥

(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (ओजसा महान्) निज ऐश्वर्यबल से महान् (वृष्टिमान् पर्जन्यः-इव) वृष्टि करने वाले मेघ के समान सुख वृष्टि करने वाला (वत्सस्य स्तोमैः-वावृधे) वक्ता—स्तुतिकर्ता के स्तुतिवचनों से अधिकाधिक साक्षात् होता जाता है वह उपासनीय है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
३ १ २ ३ १ २
जामि ब्रुवत आयुधा ॥२॥

(कण्वाः) स्तुतिवक्ता मेधावीजन* (स्तोमैः) स्तुतिसमूहों से (इन्द्रं यज्ञस्य साधनम्-अक्रत) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अध्यात्मयज्ञ का साधन करते हैं बनाते हैं (आयुधा जामि ब्रुवत्) आयोधा†—आक्रमण करने वाले काम आदि दोषों को बालिश‡ तुच्छ अकिञ्चितकर कहते हैं—मानते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥३॥

* "कण भाषार्थः" [स्वादिः] "कण्वः-मेधाविनाम" [निघ० ३।१५]
† "आयुधमायोधनात्" [निरु० १०।६]
‡ "जामिः बालिशस्यनाम" [निरु० ४।२०]

(पिप्रतः-ऋतस्य) विश्व को पूरण करने* विश्व में व्यापने वाले अमृतरूप परमात्मा के† (प्रजाम्) प्रजायमान प्रसिद्ध मधु‡ आनन्द को (यद् 'यदा') जब (प्रभरन्तः—वह्नयः) अपने अन्दर प्रकृष्ट रूप से धारण करने हेतु स्तुति से पहुँचाने वाले° स्तोता उपासक (विप्राः) मेधावीजन (ऋतस्य वाहसा) अमृत-रूप परमात्मा के वाहक स्तुतिसमूह से परमात्मा को वहन करते हैं ॥ ३ ॥

नवम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वैखानसः (परमात्मा को विशेष खनन करने खोजने में कुशल)

देवता—पवमानः सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

१·२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
३ १ २ ३१ २
जीरा अजिरशोचिषः ॥१॥

(जिघ्नतः) दुःख दोषों को नष्ट करते हुए (अजिर-शोचिषः) गमन व्यापनशील तेजवाले (हरेः) सुखाहर्ता (पवमानस्य)

---

* "पृ पालनपूर्णयोः" [जुहो०]

† "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०]

‡ "प्रजा वै मधु" [जै० २।१४४]

° "वह्नयो वोढारः" [निरु० ८।४]

धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा की (जीराः-चन्द्राः-असृक्षत) शीघ्रगतिवाली* आह्लादकारी आनन्दधारायें इस उपासकों पर बरस रही हैं ॥ १ ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
१ २ ३ १ २
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२॥
१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३॥
इन दोनों मन्त्रों की एकवाक्यता है—

(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तू (रथीतमः) अत्यन्त रसवाला† (शुभ्रेभिः-शुभ्रशस्तमः) तेजों से अति तेजस्वी (हरिः) अज्ञानहर्ता (चन्द्रः) आह्लादक (मरुद्-गणः) मुमुक्षुओं की स्तुति वाणी जिसके लिए ऐसा* (वाजसा-तमः) आत्मबल को अत्यन्त देनेवाला (पवमानः) अध्येष्यमाण-प्रार्थना में लाया हुआ (रश्मिभिः) अपनी आनन्दरश्मियों—धाराओं से (स्तोत्रे) मुझ स्तोता उपासक के लिये (सुवीर्यं दधत्) शोभन बल धारण कराता हुआ (व्यश्नुहि) व्याप्त हो ॥२-३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सप्तर्षयः (ज्ञान में पारङ्गत उपासकजन)

---

* "जोरी च रक्" [उणा० २।२३] "जीरा क्षिप्रनाम" [निघ० ३।१५]

† "तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते" [गो० १।२।५१]

* "मरुतो ह वै देवविशः" [कौ० ७।८]

"गणः-वाङ्नाम" [निघ० १।११] असमान विभक्तिको बहुव्रीहिः ।

देवता:—पूर्ववत्।

छन्दः—प्रगाथ (जगती)।

२ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २ ३ २ ३
परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।
३ १२ २२ ३ २ २३ ३ १ ३ २ ३ १ २
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वाऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४१६)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
नूनं पुनानोऽविभिः परिस्रवादब्धः सुरभिंतरः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

(अदब्ध.) हे सोम—परमात्मन्! तू अबाधित (सुरभि-न्तरः) अति शोभन जीवन निर्माणकर्ता प्राणों का प्राण॥ (पुनानः) प्रार्थना किया हुआ (अविभिः परिस्रव) प्राप्तिसाधनों—योगाभ्यासों के द्वारा† हृदय में परिप्राप्त हो (सुतेचित्) तेरे साक्षात् हो जाने पर (अन्धसा-अप्सु त्वा) आध्यान, स्मरण, चिन्तन से तुझे प्राणों में‡ (उत्तरम्) पश्चात् (गोभिः श्रीणन्तः) इन्द्रियों में मिलाते हुए (नूनं मदामः) निश्चय हम हर्षित—आनन्दित होते हैं। हृदय में साक्षात् परमात्मा प्राणों इन्द्रियों में सुख सञ्चार करता है॥ २॥

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥

(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (देवमादनः) मुमुक्षु

॥ "प्राणा वै सुरभयः" [तै० ३।६।७।५]

† "अव रक्षण गति" [भ्वादि०]

‡ "आपो वै प्राणः" [श० ४।८।२।२]

उपासकों का हर्षाने वाला (विचक्षणः) सर्वज्ञ (क्रतुः) जगत् रचयिता (स्वानः) उपासित हुआ (चक्षसे) उपासक के दर्शनार्थ (परि) परिप्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—वसुः (परमात्मा में वसने वाला परमात्मा)

देवता— सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

१ २ ३ १ २ ३१उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभिगा
२र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३
अचिक्रदत् । पुनानो वारमत्येष्यव्ययꣳ श्येनो न योनिंघृतवन्त-
१ २
मासदत् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४६२)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३२
स्वसार आपो अभिगा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे॥२॥

(महिषस्य पर्णिनः) महान् * पर्णी—पर्ण—पालन—प्रशस्त पालन धर्मवाला* (पर्जन्यः) तृप्तिकर्ता° (पिता) पालक सोम—शान्त परमात्मा (पृथिव्या-नाभा) पार्थिव शरीर के मध्य में

* "महिषः-महन्नाम" [निघ० ३।३]

* "द्वा सुपर्णा सयुजा सदश्रयां" [ऋ० १।१६४।२०] व्यत्ययेन प्रथमास्थाने षष्ठी ।

° "पर्जन्यः-तृपेराद्यन्तविपरीतस्य" [निरु० १०।११]

(गिरिषु क्षयं दधे) स्तुतिसाधनों* मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और वाणी में स्थान बनाता है (स्वसारः-आपः-अधि गाः-उदासरन्) स्तुति वाणियों को अधिकृत कर स्वसरणशील उपासकजन† ऊंचे उठते हैं (वीते-अध्वरे) प्राप्त अध्यात्मयज्ञ में अवसर पर (ग्राव-भिः-'ग्रावाणः') वे स्तुति करने वाले विद्वान् जन‡ (संवसते) आच्छादन—रक्षण प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २
अपस्नेधन् दुरिता सोम नो मृड घृतावसानः परियासि निर्णिजम् ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (कविः) क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (वेधस्या) विधातृभावना से* (माहिनम्) प्रथित संसार को* (पर्येषि) परिप्राप्त हो रहा है (अत्यः-न-मृष्टः-वाजम्-अभि-अर्षसि) घोड़े के समान स्तुति द्वारा प्रेरित अध्यात्म या ध्यान यज्ञ° को प्राप्त होता है (दुरिता-अपस्नेधन्) दुःखों को दूर करता हुआ (नः-मृड) हमें सुखी कर (घृतावसानः) तेज को§ आच्छा-दित§ करता हुआ—उस पर अधिकार करता हुआ (निर्णिजं परियासि) पवित्र उपासक को परिप्राप्त होता है ॥ ३ ॥

---

* "गृणाति स्तुतिकर्मा" [निघ० ३।५] ततः-इः किच्च ।
† "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]
‡ "विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३।९।३।१४]
* 'वेधसे विधात्रे" [निरु० १०।६]
* "इयं वै माहिनम्" [ऐ० ३।३८]
° "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
ऽ "वाजं त्वा सरिष्यन्तं···यज्ञं त्वा·······[श० १।४।३।१५]
§ "तेजो वै घृतम्" [मै० १।४।८]

दशम खण्ड

प्रथम द्वयृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधावाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ (२ र
आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
१ २ ३ १ र २ र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २ र
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २१४)

१ २ ३ १ र २ र ३ १ र २ र ३ १ २
अलर्षिरातिं वसुदामुपस्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ र २ र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥

(इन्द्रस्य रातिम्-अलर्षि) हे उपासक ! तू ऐश्वर्यवान् परमात्मा के दान को प्राप्तकर्ता है* (वसुदाम्-उपस्तुहि) उस धनदाता की उपासना कर (भद्राः-रातयः) उनके दान कल्याणकारी हैं (अस्य विधतः) उस तुझ परिचरण करते हुए—उपासना करते हुए की† (कामं यः-न रोषति) कामना को जो नष्ट नहीं करता है (मनः दानाय चोदयन्) तेरे मन को दान के हेतु—आत्मदान—आत्मसमर्पण के हेतु ॥ २ ॥

---

* "दाधति-अलर्षि····" [अष्टा० ७।३।६२] इति निपातनम् ।

† "विधेम परिचरणकर्मा" [निघ० ३।५]

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)
देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१२ ३१२ ३१२ ३१२
1221/264 यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । ऋ० ८-६१-१३
१२ ३२उ ३१२३२३२उ ३१र २र
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २२१)

१र २र ३१२ ३२उ ३१२३२
1222 त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
१२३१२ ३१२
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥२॥ ऋ० ८-६१-१४

(राधसः-पते गिर्वणः-मघवन्-इन्द्र) हे हमारे लिये धनके पालक रक्षक स्तुतियों से वननीय सम्भजनीय अध्यात्मयज्ञ के आधार* ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वं हि महः-राधसः क्षयस्य विधर्ता-असि) तू ही महान् धन—मोक्षैश्वर्य एवं महान् निवास मोक्षधाम का विधानकर्ता—प्रदाता और आधार है (तं त्वा) उस तुझ को (वयं सुतावन्तः-हवामहे) हम उपासनारस वाले आमन्त्रित करते हैं ॥ २ ॥

एकादश खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग अपने अन्दर भरण—धारण करनेवाला उपासक)

---

* "यज्ञेन मघवान्" [तै० सं० ४।४।८।१]

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होनेवाला शान्त-स्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

१२२२ त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥ ऋ० ९.६६.१

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (अध्वरे) मेरे अध्यात्मयज्ञ—ध्यानसमाधि में (धारयुः) धाराप्रवाह वाला-धाराप्रवाह में आता हुआ (मन्द्रः) हर्षकारी अत्यन्त ओजस्वी—आत्मबल देनेवाला (मंहयद्रयिः) दातव्य धनवाला (पवस्व) प्राप्त हो ॥ १ ॥

१२२४ त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान् मत्सरिन्तमः।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२॥ ऋ० ९.६६.२

(त्वम्) हे परमात्मन्! तू (सुतः) साक्षात् हुआ (मदिन्तमः) अतिहर्षकारी (दधन्वान्) उपासकों का धारणकर्ता (मत्सरिन्तमः) अधिक तृप्तिकर (इन्दुः) रसीला (सत्राजित्) सबको जीतने वाला (अस्तृतः) अविचलित है अतः उपास्य है ॥२॥

१२२५ त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्।
द्युमन्तं शुष्ममाभर ॥३॥ ऋ० ९.६६.३

(त्वम्) हे सोम—परमात्मन्! तू (अद्रिभिः सुष्वाणः)

स्तुविकर्ता* उपासकों द्वारा उपासित (कनिक्रदत्) साधु प्रवचन करता हुआ (अभि-अर्ष) प्राप्त हो (द्युमन्तं शुष्मम्-आभर दीप्तिवाले बल को हमारे अन्दर आभरित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—आप्सवो मनुः (देह में व्याप्त अभोक्ता परमात्मा का मनन करनेवाला उपासक)।

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

१२ ३१२ ३२३ १२ ३१२

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

२३१३ १२

आकलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७०)

१ २ ३ १ २३१३ २ ३१२

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥२॥

(तव द्रप्साः-उदप्रुतः) हे इन्दो सोम—रसपूर्ण परमात्मन् तेरे आनन्दबिन्दु रसभरे रसीले (मदाय) 'मदेन' हर्ष से (इन्द्रं वावृधुः) आत्मा को बढ़ाते हैं (देवासः) मुमुक्षु (अमृताय) अमर होने के लिये (त्वां कं पपुः) तुझ सुखस्वरूप को पान करते हैं ॥ २ ॥

---

* विभक्तिव्यत्ययः ।

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥३॥

(सुतासः) उपासित (पुनानाः) पवित्र करने वाले (इन्दवः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्* (रयिम्) पोष—अध्यात्मपोष उत्कर्ष को† (नः) हमारे लिये (आधावत) प्राप्त करा (वृष्टिद्यावः) दीप्तवृष्टिवाला तेजवर्षक—ज्योतिःप्रेरक (रीत्यापः) श्रवणप्रवाह-वाला‡ (स्वर्विदः) मोक्ष प्राप्त कराने वाला परमात्मा ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अम्बरीषः (हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५२)

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥२॥

* बहुवचनमादरार्थम् ।
† "रयिं देहि पोषं देहि" [काठ० १।७]
‡ "रीङ् श्रवणे" [दिवादि०]

(त्यं-अद्रिसहतम्) जिस श्लोककृत्° स्तुतिकर्ताओं से सङ्गत-स्तुतिकर्ताओं को प्राप्त होने वाले (स्वयशसम्) स्वाधार यशोरूप* (इन्द्रस्य प्रियं काम्यं) आत्मा को प्रिय कमनीय सोम—शान्त-स्वरूप परमात्मा को (द्विः पञ्च सखायः) दश प्राण—इन्द्रिय शक्तियां❀ मनन श्रवण स्तवन आदि (ऊर्मयः) ऊर्मिरूप उन्नत हुई (प्रख्यापयन्त) प्रख्यात कराते हैं—साक्षात् कराते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परिषिच्यसे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (वृत्रघ्ने) पाप नष्ट कर चुका जो उस निष्पाप† (दक्षिणावते) कामवान्—कामना-वाले‡ (वीराय) कर्मशील—स्वतन्त्र कर्म करने वाले (सदनासदे) शरीर या हृदय सदन में बैठनेवाले (नरे) मुमुक्षु* (इन्द्राय) आत्मा के (पातवे) पान—धारण करने को (परिषिच्यसे) प्रार्थित किया जाता है ॥ ३ ॥

° "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५]
* "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२।३]
❀ "प्राणो वै सखा" [श० १।८।१।२]
† सर्वत्र चतुर्थी षष्ठ्यर्थे "षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि" [अष्टा० २।३।६२]
"पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।३।५।७] "शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा"
‡ "दक्षिणा कामः" [मै० १।६।४]
* "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

चतुर्थ तृच

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋण-त्रास को क्षीणकर्ता जप-परायण स्वाध्यायशील)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—द्विपदा विराट् ।

१ २ ३२उ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १र २र
पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५५)

१ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२॥

(ते सोतारः) वे निष्पन्न करने वाले साधकजन (मदाय) हर्ष आनन्द पाने के लिये (महे द्युम्नाय) महान् यश के लिये (सोमं रसं प्रपुनन्ति) रसरूप सोम शान्तस्वरूप परमात्मा को अध्येषित करते हैं—सत्कृत करते हैं पूजते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शिशुं जज्ञानꣳ हरिं मृजन्ति । पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥३॥

(शिशुम्) प्रशंसनीय† (हरिम्) दुःखहर्ता—(इन्दुम्) दीप्तिमान्—(सोमम्) शान्तस्वरूप परमात्मा को (मृजन्ति) प्राप्त करते हैं‡ ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्षधाम का इच्छुक)

---

† "शिशुः शंसनीयो भवति" [निरु० १०।३९]

‡ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्त-स्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१३३५ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४००)

१३३६ तमिद् वर्धन्तु नो गिरोवत्सꣳ सꣳ शिश्वरीरिव ।
य इन्द्रस्य हृदꣳ सनिः ॥२॥

(तम्-इत्) उस सोम—परमात्मा को ही (नः-गिरः संवर्धन्तु) हमारी स्तुतियां बढ़ावा दें—हमारी ओर आने को उत्साहित करें* (वत्सं शिश्वरीः-इव) जैसे शिशुवाली† माताएँ दूध पिलाने वाली अपनी ओर आने के लिये बच्चे को उत्साहित करती हैं (यः-इन्द्रस्य हृदं सनिः) जो उपासक आत्मा के हृदय का सम्भक्ता—हृदय में रहने वाला या हृदयग्राही हो ॥ २ ॥

१३३७ अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (नः-गवे शम्-अर्ष)

---

* "तमिद्वर्धन्तु नोगिरः-वर्धयन्तु नोगिरः" [निरु० १।१०]

† "शिश्वरी यथा ऋतावरी ऋतवती" [निरु० २।२५]

हमारी वाणी के लिये* सुख प्रेरित कर (पिप्युषीमू-इषं धुक्ष्व) बढी चढी दर्शनकामना को प्रपूर्ण कर (उक्थ्यं समुद्रं-वर्ध) हमारे प्रशंसनीय मन को† बढा ॥ ३ ॥

द्वादश खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रिशोकः (तीन ज्ञानकर्म उपासना से प्राप्त ज्योतियों वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

१३२८ — आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१॥ ८-४५-१ - यजु० ६/३२

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ११३)

१३२९ — बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२॥ ८-४५-२ यजु० ३३/२४

(येषां युवासखा-इन्द्रः) जिन उपासकों का सदा अजर—बलवान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा साथी होगया (एषाम्) इनका—इनका (बृहन्-इत्-इध्मः) महान् तेज (भूरि शस्तम्) बहुत‡

---

* "गौ वाङ्नाम" [निघ० १।११]

† "मनो वै समुद्रः" [श० ८।५।२।४]

‡ "भूरि बहुनाम" [निघ० ३।१]

स्तुतिवाणी* (पृथुः स्वरुः) प्रथित अर्चनाकर्मा† होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २३ १२ ३ १

1250 अयुद्ध इद्युधा वृतꣳ शूर आजति सत्वभिः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३॥ 8-45-3

(युधा वृतम्) युद्ध करने वाले काम, क्रोध आदि से आवृत हुए—घिरे हुए अपने को (आ-अजति 'आजयाती') आगमयति बचा लेता है‡ जिनका अजर बलवान् परमात्मा सदा साथ होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अधिक गति से प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

२उ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ ३ १ १

1251 य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥१॥ Rv- 1-84-7

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३२२

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

1252 यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।

३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २

उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥२॥

* "वग्घि शवसम्" [ऐ० ३।४४]

† "स्वरति-अर्चनाकर्मा" [निघ० ३।१४]

‡ "अज गतिक्षेपणयोः" [भ्वादि०] अन्तर्गतणिजर्थः ।

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा ! (बहुभ्यः) बहुतेरे मनुष्यों में से (यः कः-चित्) जो कोई—विरला ही (सुतावत्) उपासना रसवाला (त्वा-अविवासति) तेरी समन्तरूप से परिचर्या† उपासना करता है (अङ्ग) शीघ्र ही वह (उग्रं शवः) तेजस्वी बल को (पत्यते) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्
३ १ २ ३
कदा नः शुश्रुवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥३॥

(कदा) किसी समय (अराधसं मर्तम्) अराधना-उपासना न करने वाले—नास्तिकजन को (यदा क्षुम्पम्-इव स्फुरत्) पैर से सर्पछत्र—खुम निर्बल—वर्षा ऋतु में उत्पन्न छत्र बूटी को नष्ट करने जैसा नष्ट कर देता है‡ (कदा) किसी भी समय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (नः-गिरः) हम उपासकों की स्तुतियों—प्रार्थनाओं को (अङ्ग शुश्रुवत्) शीघ्र सुने—पूरा कर सके ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप

३ १र २र ३ २ ३ १ २
गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

---

† "विवासति परिचर्याकर्मा" [निघ० ३।५]

‡ "स्फुरति वधकर्मा" [निघ० २।१९]

३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २८२)

२३ ३ १२ २र ३ १२ २र ३ १ २
यत् सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
२३
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२॥

(यत्) कि जब उपासक (सानोः सानु-आरुहः) एक योगभूमि से दूसरी योगभूमि पर आरूढ होता जाता है (भूरि कर्त्वम्-अस्पष्ट) बहुत कर्म—अभ्यासकर्म॰ को स्पर्श—सेवन या पार कर लेता है† (तत्) तो वह (इन्द्रः-अर्थं चेतति) परमात्मा अभीष्ट को समझाता है, पुनः (वृष्णिः-यूथेन रेजति) सुखवर्षक परमात्मा मिलने योग्य सब अर्थमात्र प्रदान के मिष से प्राप्त होता है‡ ॥ २ ॥

३ २३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
युंक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्य प्रा ।
१ २ ३ १२ २र
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुप श्रुतिं चर ॥३॥

(सोमपाः-इन्द्र) हे उपासनारस के पान कर्ता—स्वीकारकर्ता तू (वृषणा कक्ष्यप्रा) सुखवर्षक कक्षगत—कक्षीवान् तेरे समीप-

---

॰ "कत्वं कर्मनाम" [निघ० २।१]

† "स्पर्श बाधनस्पर्शयोः" [भ्वादि०]

‡ "यू मिश्रणे" [अदादि०]
"यूथस्य माता सर्वस्य माता" [निरु० ११।४९]

-वर्ती आत्मा को तृप्त करने वाले (केशिना) रश्मिमान्† व्यापक प्रभाववाले (हरी) तुझे हम तक ले आने वाले और हमें तुम तक ले जाने वाले ऋक्, साम—ज्योति; शान्ति गुणों को‡ (युङ्क्ष्व हि) अवश्य युक्त कर (अथ) अनन्तर—फिर (नः) हमारी (गिरां श्रुतिम्-उपचर) वाणियों की श्रुति—श्रवणीय प्रार्थना को उपयुक्त कर—स्वीकार—पूरी कर ॥ ३ ॥

इति दशम अध्यायः ।

—()-:०:-()—

† "केशा रश्मयस्तद्वान्" [निरु० १२।२५]
"अश्नोतेरश् च" [उणा० ४।४६]

‡ "ऋक् सामे वा इन्द्रस्य हरी" [मै० ३।१०।६]
"ज्योतिस्तदृक्" [जै० १।७६]
"यद्व शिवं शान्तं वचस्तत् सोम" [जै० ३।५२]

अथ एकादश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा (दीप्त-दीप्तिमान् या सर्वप्रकाशक अग्रणेता परमात्मा)।

छन्दः—गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते।
१ २ ३ ३ १ २
होतः पावक यक्षि च ॥१॥

(पावक) हे दीप्त पवित्रकर्ता परमात्मन्! तू (हविष्मते) मुझ स्वात्म हवि देने वाले* समर्पित करनेवाले उपासक के लिये (होता) होता—ऋत्विक् बन (च) और (यक्षि) अध्यात्मयज्ञ करा, तथा (अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (समिद्धः) सम्यक् प्रकाश युक्त हुआ (नः 'माम्'†) मुझे (देवान्-आवह) अमर‡ मुक्त आत्माओं के प्रति प्राप्त करा—ले जा मोक्ष में पहुंचा ॥ १ ॥

---

* "आत्मा वै हविः" [काठ० ७।५]

† "अस्मदो द्वयोश्च" [अष्टा० १।२।५९]

‡ "अमृता देवाः [श० २।१।३।४]

ऋषि—पूर्ववत् ।

देवता—तनूनपात् (आत्मा को पतित न करने वाला किन्तु अमर बनाने वाला)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ १ २
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे
३ १ २ ३ १ २
अद्या कृणुह्यूतये ॥२॥

(तनूनपात् कवे) हे अपनी देहरूप आत्मा* को न गिराने वाले—अमर बनाने वाले क्रान्तदर्शी परमात्मन् ! तू (नः) मुझ आत्मयाजी के (मधुमन्तं यज्ञम्) आत्मावाले° स्वात्मसमर्पण वाले यज्ञ को (अद्य) आज—इसी जीवन में (ऊतये) आत्म-रक्षा के लिये—अमरता के लिये (देवेषु कृणुहि) अमर-मुक्त आत्माओं में कर—मुक्त आत्मा बनने में सफल कर ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—नराशंसः (नरों [मुमुक्षुओं] का प्रशंसनीय परमात्मा

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १
नराशꣳ समिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उपह्वये ।
१ २ ३ १ २
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

(इह-अस्मिन् यज्ञे) इस जीवन में इस आत्मयजनकर्म

* "य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्" [श० १४।६।७।३०]

° "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० २।३।२।६]

अध्यात्मयज्ञ में (प्रियम्) प्रिय (मधुजिह्वम्) मधुरवाणी* मधुर प्रवचन जिसका है या मधुर स्तुतिवाणी जिसके लिये है उस (हविष्कृतम्) आत्महवि को संस्कृत करने वाले (नराशंसम्) नरों-मुमुक्षुओं से† प्रशंसनीय—अतिस्तुतियोग्य परमात्मा को (उपह्वये) उपहूत करता हूं—अपनाता हूं—उपासना में लाता हूं ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—इडः (स्तुतियोग्य परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३१र १र
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह ।
२ ३ २ ३ १ २
असि होता मनुर्हितः ॥४॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! तू (ईडितः) स्तुति को प्राप्त हुआ (सुखतमे रथे) अत्यन्त सुखरूप रमणस्थान में मोक्ष में (देवान्-आवह) दिव्य अभौतिक सङ्कल्पात्मक मन आदि शक्तियों को समन्तरूप से प्राप्त करा‡ (मनुर्हितः-होता-असि) क्योंकि तू हम उपासक मनुष्यों का हितकर होता—बुलाने वाला है ॥ ४ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

---

* "जिह्वा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

† "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

‡ "शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनो भवति" [श० १४।२।२।१९]

देवता—आदित्यः (अदिति—अखण्ड सुख सम्पत्ति—मुक्ति का स्वामी परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२३२उ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा ।
३ १ २ ३ १२ २२
सुवाति सविता भगः ॥१॥

(यत्) कि (अद्य) आज—इसी जीवन में (सूरे-उदिते) सूर्य उदय होते ही (अनागाः) पाप रहित जिससे होजाते हैं वह ऐसा (मित्रः) संसार में कर्मकरणार्थ प्रेरक (अर्यमा) मुक्तिदाता* (सविता) उत्पादक (भगः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सुवाति) हमें अध्यात्मयज्ञ में सम्पन्न करें ॥ १ ॥

३ १२ २३ ३ १२ २२
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
२ ३ १२ ३ १ २
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥२॥

(सः-क्षयः) वह निवास स्थान शरीररूप (सुप्रावीः-अस्तु) उत्तम रक्षावाला हो—सुरक्षित रहे (यामन् सुदानवः-नु प्र) जीवन यात्रा में दानकर्ता उक्त मित्र—प्रेरक, अर्यमा—मुक्तिदाता, सविता—उत्पादक, भग—ऐश्वर्यवान् परमात्मा दानकर्ता हों—शीघ्र प्रवर्तमान रहें (ये नः-अंहः-अति पिप्रति) जो हमारे पाप को अति परे—दूर कर देता है° ॥ २ ॥

---

* "एष वा अर्यमा यो ददाति" [काठ० ११।१४]

° बहूवचनमादरार्थम् ।

३१ ३ २ ३ १२ ३१२ ३२३ २
उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये ।
३ १२ २२
महो राजान ईशते ॥३॥

(अदितिः) 'अदिते' अखण्ड सुख सम्पत्ति—मुक्ति का (ये स्वराजः) जो स्वयं राजा (उत) अपि—और (अदब्धस्य व्रतस्य) अहिंसनीय—अबाध्य कर्म का (मह राजान ईशते) महान् राजा होकर शासन करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—स्तुति वाणी वाला*)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२
उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
१ २ ३ १ २
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १५६)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पदा पणीनराधसो निबाधस्व महाँ असि ।
२३ ३ २ ३ १२ २२
न हि त्वा कश्च प्रति ॥२॥

(अराधसः पणीन्) राधना रहित—उपासना रहित स्तुति-कर्ताओं—ऊपर से उपासना प्रदर्शनकर्ताओं को (पदा निबाधस्व) पैर से ठुकराते हैं ऐसे ठुकरादे—ठुकराता है (महान्-

* "गाथा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

असि) तू महान् है (त्वा प्रति) तेरा प्रतिपक्षी—प्रतिरोधी या, तेरा प्रतिमान—तेरे समान उपास्यदेव (न हि कश्चन) कोई भी नहीं है ॥ २ ॥

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

(इन्द्र त्वम्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (सुतानाम्-ईशिषे) उपासनारस सम्पादकों का स्वामी हो रहा है (त्वम्-असुतानाम्) तू उपासनारसरहितों—नास्तिकों का भी स्वामी हो रहा है (त्वं राजा जनानाम्) तू राजा है जायमान प्राणियों का भोगप्रदानार्थ भोग यथायोग्य सब देता है, यह तेरी महती दया है ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—पराशरः (दोषों का अत्यन्त नष्टकर्ता उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में आनेवाला परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥१॥

---

‡ 'सुतानाम्' कर्तरिक्तश्छान्दसोमतुब्लोपश्च ।

(जागृविः) जागरूक—जागरणशील—सदा सावधान ज्ञानपूर्ण (विप्रः) विशेष कामनापूरक (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (मतीनाम्-ऋतं पुनानः) मेधावी प्रार्थनाकर्ताओं के* सत्य प्रार्थनीय विषय को प्राप्त कराने के हेतु (चमूषु-आसदत्) अदन—स्वादन पात्रों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारों में आ बैठता है (यम्) जिसको (मिथुनासः) मिले हुए (निकामाः) बाह्यकामनाओं को छोड़ निहित—आध्यात्मिक कामनाओं वाले (रथिरासः) रमणीय मोक्ष के अधिकारी (सुहस्ताः) शोभन हस्त—यशोभागी (अध्वर्यवः सपन्ति) अध्यात्मयज्ञकर्ता उपासकजन स्पर्श करते हैं या सम्प्राप्त करते हैं† ॥ १ ॥

स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद् यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्रयंसत् ॥२॥

(सः) वह सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (पुनानः) व्यापता हुआ—विभुगति करता हुआ‡ (सूरे-उपदधानः) संसार में जन्म पाने वाले आत्मा के निमित्त° कृपा करता हुआ (उभे रोदसी-आ-अप्राः) दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक को अपनी व्यापन गति शक्ति से भरता है, और (सः) वह (वि-आवः) उन्हें खोल देता है—उन्हें प्रकट करता है—उत्पन्न करता है (यस्य सतः प्रिया चित्) जिस नित्य प्रिय उपासक आत्मा के

* "मतयो मेधाविनः" [निघ० ३।१५]
† "सपतेः स्पृशतिकर्मणः [निरु० ५।१६]
"षप समवाये" [भ्वादि०]
‡ "पवते गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
° निमित्तसप्तमी ।

लिये° (प्रियासः) परमात्मा के प्रिय आनन्दधाराप्रवाह (ऊती) रक्षा के लिये है, उन्हें (प्रयंसत्-धनं कारिणे न) प्रदान करता है कर्मचारी के लिये जैसे धन प्रदान करता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्यो-
२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र
तिषा वीत। यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञा स्वर्विदो अभि गा
२र ३ २
अद्रिमिष्णन् ॥३॥

(सः-सोमः) वह शान्तस्वरूप परमात्मा (वर्धिता वर्धनः) बढाने वाला स्वयं समृद्ध (मीढ्वान्) सुखवर्षक (पुनानः) प्राप्त होता हुआ (नः) हमें (ज्योतिषा) अपनी ज्योति से (आवीत्) रक्षा करता है, तथा (यत्र) जहां (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) पूर्व गुरु आदि उपासक (पदज्ञाः स्वर्विदः) परमपद परमात्मा को जानने वाले मोक्ष को प्राप्त कर चुके हुए (गाः-अभि-अद्रिम्-इष्णन्) स्तुति वाणियों को अभिगत कर—जीवन में सेवन कर अखण्ड मोक्ष चाहा करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट स्तुति करने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
मा चिदन्यद्विशंसत सखायो मा रिषण्यत ।

° "षष्ठ्या आकारदेशश्छान्दसः, सा च चतुर्थ्यर्थे ।

२ ३ १   २ ३ १ २ ३   १ २ ३ १ २   २ २ ३   १ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९३)

३   १ २   ३ १   २ ३   २ ३ १ २   २ २   ३ १ २
अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   २ २   ३ १ २
विद्वेषणं संवननमु भयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

(अवक्रक्षिणम्) काम क्रोध आदि के छिन्न भिन्न करने वाले❀ (वृषभं यथा) वृषभ के समान (जुवं गां न) प्राप्त† पृथिवी‡ के सदृश (चर्षणीसहम्) देखनेवाले ज्ञानवान् उपासक के तृप्तिकर्ता° इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा को, तथा (विद्वेषणं संवननम्-उभयङ्करम्) पापियों—नास्तिकों से द्वेषकर्ता, उपासकों को सम्भागी बनाने वाले—अपनानेवाले दोनों द्वेष करने और प्रसाद देने वाले (मंहिष्ठम्-उभयाविनम्) दाता और दोनों के रक्षक परमात्मा को 'शंसत'* प्रशंसित करो ॥ २ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन-गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

❀ "कृष विलेखने" [भ्वादि०]

† "जुङ् गतौ" [भ्वादि०]

‡ "गौ पृथिवी" [निघ० १।१]

° "षह चक्यर्थे" [दिशदि०] "चक तृप्तौ" [भ्वादि०]

* "शंसत" पूर्वं मन्त्रादनुवर्तते ।

२ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
३ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

(त्ये स्तोमासः) हे इन्द्र—परमात्मन्! वे उपासक आत्माएं* (मधुमत्तमाः-गिरः-उ-उदीरते) अत्यन्त मधुर—नम्र स्तुतियां तेरे लिये प्रेरित करते हैं (सत्राजितः) काम आदि सर्व दोषों को जीतने वाले (धनसाः) धन के भागी—धनपात्र (अक्षितोतयः) तेरी स्थिर रक्षा वाले (रथाः-इव) तेरे लिये रमण स्थान जैसे या रथ समान हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

(कण्वाः-इव) मेधावी† (भृगवः) तेजस्वी (सूर्याः-इव) योग्य परमात्मा की ओर सरण—गमन करने वाले उपासक (धीतं विश्वमित्-आशत) ध्यान करने ध्यान में आने योग्य विश्व व्यापक को प्राप्त होते हैं (प्रियमेधासः-आयवः) प्रिय बुद्धिवाले जन (स्तोमेभिः) स्तुतिसमूहों से (इन्द्रं महयन्तः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को प्रशंसित करते हुए (अस्वरन्) अर्चित करते हैं—श्रद्धा पूर्वक अपने अन्दर बिठाते हैं ॥ २ ॥

---

* "स्तोम आत्मा" [काठ० १३।८]

† 'अत्र मन्त्रे' इव शब्दः पदपूरणः समञ्जस्यात् "इवोदपि दृश्यते" [निरु० २।१०]

‡ "स्वरति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

चतुर्थ तृच

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋण त्रास को क्षीण करने वाले जप स्वाध्यायशील)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२३ १र २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५४)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
१ २ ३ १२ ३ १२
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥२॥

(पवमान) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तू (विधारे) विशेष धारा—स्तुति वाणी※ जिसके अन्दर है ऐसे उपासक आत्मा में (शक्मना) कर्मशक्ति से† (सूर्यं पयः) सूर्य समान‡ ज्ञानप्रकाश° (अजीजनः-हि) निश्चित उत्पन्न करता है (गोजीरया पुरन्ध्या रंहमाणः) स्तुतिवाणी से प्रेरित—अतिशयित बुद्धि से* उपकारक बुद्धि से उपासक के अन्दर प्राप्त होता हुआ ॥ २ ॥

※ "धारा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

† "शक्म कर्मनाम" [निघ० २।१]

‡ लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

° "पयः-ज्वलतोनाम" [निघ० १।१७]

* "पुरन्धिर्बहुधीः" [निरु० ६।१३]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५६)

पञ्चम तृच

ऋषिदेवते—पूर्ववत् ।

छन्दः—द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १२ २
परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५३)

३ १२ २१ ३१२ २१ ३ २ ३ १२ २ ३ २ ३ १ २
एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥२॥

(सः) वह तू सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (शुक्रः-दिव्यः पीयूषः) शुभ्र दिव्य पान करने योग्य आनन्दरस रूप (एव) अवश्य (अमृताय) अमरत्व के लिये (महे क्षयाय) महान् सर्व श्रेष्ठ निवास—मोक्ष के लिये (अर्ष) प्राप्त हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥३

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (ते सुतस्य) तुझ साक्षात् हुये आनन्दरस स्वरूप को (इन्द्रः पेयात्) उपासक आत्मा पान करे (क्रत्वे दक्षाय) प्रज्ञान और कर्मबल प्राप्त करने के लिये (विश्वे देवाः-च) प्राण, मन इन्द्रियां भी पान करें—बाह्य वस्तु में, तेरा मनन, श्रवण, दर्शन आदि करें ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—हिरण्यस्तूपः (अमृतरूप संघात वाला*—अमृत-पुञ्ज परमात्मा का उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—जगती।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन ॥१॥

(सूर्यस्य-इव रश्मयः) सूर्य की रश्मियों—किरणों के समान सोम—परमात्मा की (द्रावयित्नवः) द्रवणशील—उपासकों को अपनी ओर द्रवित करने वाला (मत्सरासः) हर्षित करने वाला—आनन्द देने वाला (प्रसुतः) प्रकृष्टरूप से उपासित हुआ (सर्गासः) वेगवान्—तीव्र गतिमान् (आशवः) व्यापनशील, सोम—परमात्मा (ततं तन्तुं साकं परि-ईरते) श्रद्धागत श्रद्धालु† प्रजारूप—पुत्ररूप‡ उपासक आत्मा को एक साथ—तुरन्त परि-प्राप्त होता है (इन्द्रात्-ऋते) श्रद्धालु उपासक आत्मा के विना (किञ्चन धाम न पवते) कुछ भी धाम—वस्तु या आश्रय अ-श्रद्धालु प्राप्त नहीं होता है॥ १ ॥

---

* "हिरण्य स्तूपः-हिरण्यमयस्तूपोऽस्येति, स्तूपः संघात" [निरु० १०।३३]

† "तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि०]

‡ "प्रजा वै तन्तु" [ऐ० ३।११]

१२३२ ३ १२ ३ २२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२

(मतिः-उपपृच्यते-उ) जब उपासक द्वारा की गई स्तुतिवाणी* सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा में जाकर सम्पृक्त हो जाती है तथा (मधु सिच्यते) आत्मा—स्वात्मा—उपासक का अपना आत्मा† परमात्मा में सींच दिया जाता है—समर्पित कर दिया जाता है तब (मन्द्राजनी-अन्तः-आसनि चोदते) सोम—परमात्मा की आनन्द प्रेरित करने वाली धारा को‡ उपासक के अन्तर्मुख-अन्तःकरण में प्रेरित करता है, और (पवमानः सन्तनिः) प्राप्त होने वाला सोम सम्यक् व्यापक (मधुमान् द्रप्सः) मधुर द्रवणशील कृपालु परमात्मा (सुन्वताम्-इव) उपासना द्वारा साक्षात् करने वालों—उपासकों के° (वारं परि-अर्षति) वरणीय द्वार हृदय को परिप्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
उक्षा मिमेति प्रतियन्ति धेनवो देवस्य देवीरुपयन्ति निष्कृतम् ।
१ २ ३ १२ ३ १२ ३ २ ३२ ३ २ ३२उ ३ १ २
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३॥

(उक्षा मिमेति) जैसे साण्ड शब्द करता है* (धेनवः प्रतियन्ति) गौवें उसके प्रति जाती हैं, ऐसे (देवस्य देवीः) सोम—

* "वाग्वै मतिः" [श० ८।१।२।७]
† "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० ३।१।२।९]
‡ "सुपां सुलुक्" [अष्टा० ७।१।३९] अमो लुक् ।
° "इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १।११]
* लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

परमात्मदेव की स्तुतिवाणियां* (निष्कृतम्-उपयन्ति) उसी उपासित या उपासकों द्वारा उपासनीय सोम—परमात्मा के पास चली जाती हैं (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अर्जुनं-अव्ययं वारं-अत्यक्रमीत्) नित्य वरणीय शुद्ध—निर्मल आत्मा को अत्यन्त प्राप्त होता है (अत्कं न निक्तं परि-अव्यत) जैसे शुद्ध कवच को योद्धा परिप्राप्त होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विराट् ।

३ ३उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
दूरेदृशं गृहपतिमथर्व्युम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ६२)

२ ३ १ २उ ३ १ २ ३क २ र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥

(यः) जो अग्नि परमात्मा (नित्यः) नित्य (दक्षाय्यः) स्तुतियों से संवर्धनीय—साक्षात् करणीय (दमे-आस) स्वगृह° मोक्षधाम में है (तम्-सुप्रतिचक्षम्-अग्निम्) उस सम्यक् प्रकाशमान परमात्मा को (वसवः) परमात्मा में बसने वाले उपासक

---

* "वाग्वै तिस्रो देवीः" [काठ० ३६।३]

° "दम गृहनाम" [निघ० ३।४]

(कुतः-चित्-अवसे-अस्ते न्यृण्वन्) किसी भी भय से रक्षार्थ हृदय घर※ में प्राप्त करते हैं† ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३क २र
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वाꣳ शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥३॥

(यविष्ठ अग्ने) हे अजर परमात्मन् ! तू (प्रेद्धः) प्रसिद्ध-साक्षात् हुआ (नः पुरः) हमारे सम्मुख (अजस्रया सूर्म्या) निरन्तर शोभायमान-ज्ञान-तरङ्गों द्वारा (दीदिहि) ज्ञान प्रकाश कर‡ (त्वाम्) तुझे (शश्वन्तः-वाजाः) श्रेष्ठ* प्रजायें* उपासक आत्माएं प्राप्त होते हैं। अथवा बहुतेरे° (वाजाः-वाजवन्तः) अमृत अन्न प्राप्त करने वाले§ प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—सर्पराज्ञी (ऋषिका-वाक्शक्ति सम्पन्ना*)

देवता—सूर्यः (उपासकों को अध्यात्म प्रकाशदाता परमात्मा)

※ "अस्तं गृहनाम" [निघ० ३।४]

† "ऋणु गतौ" [तनादिः]

‡ "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

* "यश्चपरिणिरुजिष्ठश्रेयश्चक्षे अदाशुरिः । धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम" [अथर्व० २०।१२८।४]

* "तपसा प्रजापतिर्वाजा वै प्रजा असृक्षत" [काठ० ६।७]

° "शश्वत बहुनाम" [निघ० ३।१]

§ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

* "वाग्वै सर्पराज्ञी" [कौ० २७।४]

छन्दः—गायत्री ।

१२ २र ३ १ २ ३ १२ ३२
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
३ १ २ ३ १ २
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ५२६)

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
२र ३ १२ २र
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥२॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ५२६)

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रतिवस्तोरहद्युभिः ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ५२७)

इति एकादशोऽध्यायः ॥

—:०:—

अथ द्वादश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम चतुर्ऋच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिशील उपासक)
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)
छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३१२ २२ ३ १ २
उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।
३ २ ३ १ २ ३ २
आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥

(अध्वरं-उपप्रयन्तः) हम उपासक अध्यात्मयज्ञ को उपप्रयत-अपने अन्दर चरित करने के हेतु† (अस्मे-आरे च) हमारे दूर‡ और समीप भी (शृण्वते) सुनने वाले (अग्नये) ज्ञानप्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ अन्तर्यामी परमात्मा के लिये (मन्त्रं वोचेम) मननीय स्तुतिवचन बोलें ॥ १ ॥

१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अरक्षद् दाशुषे गयम् ॥२॥

† "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" [अष्टा० ३।२।१२६]
‡ "आरे दूरनाम" [निघ० ३।२६]

(यः पूर्व्यः) जो सनातन या पूर्व ऋषियों से भी श्रेष्ठ शाश्वतिक परमात्मा (दाशुषे) आत्मदान—आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये (स्नीहितीषु) स्नेह करने वाली—(सञ्जग्मानासु) सङ्गति करने वाली—(कृष्टिषु) मनुष्य प्रजाओं में* (गयम्-अर्चन्तु) गृह† स्थान—निवास—सङ्गमनीय की परमात्मा रक्षा करते स्तुतियों से अपनाते हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स नो वेदो अमात्यमग्नीरक्षतु शन्तमः ।
३ १ २ ३ ३ १ २
उतास्मान् पात्वँहसः ॥३॥

(सः-शन्तमः-अग्निः) वह अत्यन्त कल्याणकारी ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (नः) हम उपासकों के (अमात्यं वेदः-रक्षतु) सहभूत—स्वाभाविक ज्ञान धन की रक्षा करे‡ (उत) अपि—और (अस्मान्-अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
३ १२ २२
धनञ्जयो रणे रणे ॥४॥

(रणे रणे) काम आदि शत्रुओं के साथ प्रत्येक संघर्ष प्रसङ्ग में (धनञ्जयः) उनके बल को° जीतने वाला (वृत्रहा)

* कृष्टयः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३]

† "गयं गृहनाम" [निघ० ३।४]

‡ "वेदः-धननाम" [निघ० २।१०]

° "धनं नृम्णमिति पर्यायः । नृम्णं बलम् । नृम्णं बलनाम" [निघ० २।९३]

पापक्ष का नष्टकर्ता (अग्निः) परमात्मा (उदजनि) हृदय में उद्भूत हुआ—साक्षात् होता है (जन्तवः-उत) उपासकजन† हां—अवश्य (ब्रुवन्तु) उस परमात्मा की स्तुति करें ॥ ४ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल को धारण करने वाला)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १र २र ३ १ २
अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० प्र० २३)

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
अच्छा नो याह्या वहाभिप्रयांसि वीतये ।
२ ३ १र २र
आ देवाँत्सोमपीतये ॥२॥

(नः-अच्छ-आयाहि) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन्! तू हमारी ओर साक्षात् आगमन कर—हमें साक्षात् प्राप्त हो (वीतये) कामनापूर्ति के लिये‡ (प्रयांसि-अभि वह) प्रियतम-अत्यन्त तृप्ति करने वाले ज्ञानसुखप्रसङ्गों को प्रेरित कर (सोमपीतये देवान्-आ) अमृतपान स्थान मुक्तिधाम प्राप्ति के लिये° देवधर्मों—

※ "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ७।३।१।३२]

† "मनुष्या वै जन्तव" [श० ७।३।१।३२]

‡ "वी गतिव्याप्ति प्रजननकरन्ति····" [अदादि०]

° "तद्यत्तदमृतं सोमस:" [श० ९।५।१।८]

सत्य, वैराग्य, शम, दम आदि को प्राप्त करा ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २
उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
२ ३ १ २
शोचा विभाह्यजर ॥३॥

(भारत-अजर-अग्ने) हे भरणकर्ता जरारहित—अमर परमात्मन् ! तू (अजस्रेण द्युमत्) निरन्तर वर्तमान प्रकाशवाले तेज से (दविद्युतत्) प्रकाशित हुआ (उत्-शोच-विभाहि) उज्ज्वलित हो* साक्षात् हो और हमें विभासित कर—तेजस्वी बना ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वैश्वामित्रः प्रजापतिः (सर्वमित्र से सम्बद्ध निज इन्द्रियों का पति संयमी उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५३)

२ ३ १र २र ३ २ ३ ३ २ ३क २र
आजामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
१२ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥२॥

---

* "शोचति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

(जामिः) आनन्द प्राप्त कराने वाला सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा* (अत्के) अदन—भोगस्थान—अन्तःकरण में† (अव्यते) प्राप्त होता है (ओण्योः-भुजे न पुत्रः) जैसे भय दूर करने वाले माता पिता‡ की भुजा में पुत्र प्राप्त होता है, पुनः (जारः-न योषणाम्-आसरत्) उपासक आत्मा की ओर आता है, जैसे अर्चनीय स्वामी अपने सेवक व्यक्ति* को पुरस्कार या भृति देने को प्राप्त होता है, या (वरः-न योनिम्- आसदत्) जैसे आत्मा° अपने हृदय में बैठता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥३॥

(सः) वह (वीरः) स्वयं अपने वीर्य—ओज पर आश्रित* (दक्षसाधनः) स्वाश्रित उपासक के बल को साधने वाला (यः) जो (रोदसी वितस्तम्भ) विश्व के दोनों—रोधन करने वाले द्युलोक और पृथिवी लोकों को सम्भाल रहा है, ऐसा (हरिः) दुःखापहर्ता और सुखाहर्ता परमात्मा (पवित्रे) पवित्र उपासक आत्मा में

---

* "याति प्रापयतीति यामिः यादेर्जत्वं जामिः" [उणा० ४।४२ या धातोर्मिः-बाहुलकात्]

† "अद भक्षणे" [अदादि०] ततः करणे क्विप् अद् अद्यते भुज्यते येन भोगः, तद्वतः-करणम् । पुनः स्वार्थे कः ।

‡ "ओणृ-अपनयने" [भ्वादि०]

* "जरति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

° "जुष प्रीतिसेवनयोः" [तुदादि०]

* "स वीरो य आत्मन एव वीर्यमनु वीरः" [जै० ५।२८२]

(अन्यत) प्राप्त होता है (वेधाः-न योनिम्-आसदम्) जैसे विधाता बैठने को अपने घर में प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम द्वयृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरने वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा ककुप् ।

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३३०)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
न की रेवन्तꣳ सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥२॥

(रेवन्तं सख्याय न किः-विन्दसे) केवल धनवान् है ऐसा जान तू उसे मित्रता के लिये कभी नहीं प्राप्त होता है—स्वीकार करता है (ते सुराश्वः पीयन्ति) वे सुरापान कर मद में फूले† हैं अन्य जनों को पीडित करते हैं॥ (यदा नदनुं कृणोषि) जब

---

† "सुरया शूनाः" शि गतिवृद्धयोः [भ्वादि०]

॥ "पीयति हिंसाकर्मा" [निघ० ४।२५]

२५

तू अपना अर्चक—स्तुतिकर्ता* बना लेता है—तेरे उपदेश या प्रभाव से तेरा स्तुतिकर्ता बन जाता है (समूहसि) तू उसे सम्यक् वहन करता है समुन्नत करता है (आत्-इत्) अनन्तर ही (पिता-इव हूयसे) तू पिता के समान स्मरण किया जाता है ॥ २ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा (मेधा से अतन गमन प्रवेश करने वाला या पवित्रभाव से प्रवेशकर्ता)

देवताः—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

१ २ ३२३२ ३२ ३१२ २२ ३ १२
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ २३१२ ३२ ३१२ ३ १२
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९६)

२ ३ १२ ३ २३१२ ३१२ १
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१२ ३१२
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२॥

(हिरण्यये रथे) हे इन्द्र—परमात्मन् ! अमृतरूप रमणीय† मोक्ष के निमित्त (मयूरशेप्या) श्रोत्रस्पर्शी—दोनों कानों को स्पर्श करने वाले‡ (शितिपृष्ठा) श्वेत—निर्मल स्तरवाले (हरी) ऋक्

---

* "नदति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

† "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० सं० ६।२।७।२]

‡ "अश्विभ्यां मयूरान्" [मै० २।१४।४] लक्षणया-अश्विनौ "श्रोत्रे वा अश्विनौ" [श० १२।९।२।१३]

और साम—स्तुति और उपासना* (त्वा) तुझ परमात्मा को (वहताम्) मुझ उपासक की ओर लावे (विचक्षणस्य) विशेष प्रशंसनीय—(अन्धसः) आध्यानीय उपासनारस का (पीतये) पान करने के लिये ॥ २ ॥

२ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा त्व३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥३॥

(गिर्वणः) हे स्तुति वाणियों द्वारा वननीय सम्भजनीय परमात्मन्! (अस्य सुतस्य) इस निष्पन्न उपासना रस के (पूर्वपाः-इव) प्रथम पानकर्ता—प्रमुख पानकर्ता बना जैसा या पूर्व से ही पान करने वाला† स्वीकार करनेवाला है (तु पिब) अतः तू पान कर—स्वीकार कर (परिष्कृतस्य रसिनः) यम नियमादि से संस्कृत उपासनारस वाले मुझ उपासक की (इयम्-आसुतिः) यह उपासनारसधारा (मदाय चारुः पत्यते) मुझे हर्ष प्राप्ति के लिये सुन्दर भली प्रकार समर्थ है‡ यह जान भेंट कर रहा हूं॥३॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—ऋजिश्वा (सत्य जीवन यात्रा का पथिक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होनेवाला शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विषमा ककुप् ।

---

* "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [ऐ० २।२४]

† "इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० २।११]

‡ "पत्यते ऐश्वर्यकर्मा" [निघ० २।२१]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
आ सोता परिषिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरꣳ रजस्तुरम्।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७६)

ऋषिः—ऊर्ध्वसद्मा (ऊंचे स्थान वाला)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने।
३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥२॥

(सहस्रधारम्) बहुत ज्ञानवाणियों* वाले (वृषभम्) कामना-वर्षक (पयोदुहम्) आनन्दरस दोहनेवाले—(प्रियम्) प्रीति करने वाले—शान्तस्वरूप परमात्मा को (देवाय जन्मने) देव-जन्म—मुक्त जीवन बनने के लिये उपासित करता हूं (यः) जो (ऋतेन-ऋतजातः) अपने सत्यस्वरूप से प्रसिद्ध सत्यजात है—सत्य का जन्मदाता (ऋतं बृहत्-राजा) महान् सत्य स्वामी राजमान है (देवः) द्योतमान (विवावृधे) गुण शक्तियों से बढ़ा चढ़ा है, वही उपासनीय है ॥ २ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल° को धारण करने वाला उपासक)

---

* "धारा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

° "वाजयति अर्चयतिकर्मा" [निघ० ३।१४] वाजमर्चनं भरद्वः सः भरद्वाजः परनिपातेन।

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)
छन्दः—गायत्री ।

३२३ १ २ ३ १२३ १२
३९९ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
१२ ३ १२ २२
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१॥ ऋ० - ६.१६/३४॥ यजु:३३-९

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४)

१२ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३१२
३९६ गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
१२ ३२ ३ २ ३ २
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥ ऋ० - ६ - १६ - ३५

(मातुः-पितुः-अक्षरे गर्भे) पृथिवी के द्युलोक के* अविनाशी गर्भ—गर्भरूप प्रकृतिनामक अव्यक्त उपादान कारण में व्यापक (पिता विदिद्युतानः) पालक—उपादान कारण का पालक एवं सब का पालक परमात्मा विशेष प्रकाशमान है (ऋतस्य योनिम्-आसीदन्) सत्यज्ञान के आधार वेद को आस्थापित—प्रकाशित करता हुआ 'वृत्राणि जङ्घनत्' अज्ञानान्धकार पाप को नष्ट करता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १२३ १२ ३ १२
१३९८ ब्रह्म प्रजावदाभर जातवेदो विचर्षणे ।
२ ३ २ ३१२ ३२
अग्ने यद् दीदयद् दिवि ॥३॥ ऋ० - ६-१६-३६

(विचर्षणे जातवेदः-अग्ने) हे विशेषद्रष्टा—विश्वद्रष्टा° उत्पन्न-मात्र के ज्ञाता प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (प्रजावत्-ब्रह्म-आभर)

* "तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः" [तै० २।७।१६।३]
"इयं पृथिवी वै माता-असौ द्यौः पिता" [श० १३।१।६।१]
° "विचर्षणिः पश्यति कर्मसु नामपदम्" [निघ० ३।११]

मतिवाले—बुद्धिवाले* मन्त्रमय वेद को† आभरित कर (यत् दिवि दीदयत्) जो द्योतनात्मक तेरे स्वरूप में प्रकाशित हो रहा है‡ ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४२८)

भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

(समन्या भद्रा वस्त्रा वसानः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू उपासकों को सम्यक् जीवन देने योग्य* तथा शान्ति-

---

* "प्रजा वै मतयः" [तै० आ० ५।६।८]
"बुद्धिपूर्वावाक्यसृतिर्वेदे" [वैशेषिक० ६।१।१]

† "ब्रह्म वै मन्त्रः" [जै० १।८८]
"वेदो ब्रह्म" [जै० उ० ४।११।४।२३]

‡ "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

* "समने समननात्" [निरु० ७।१७] सम् पूर्वान्-अन प्राणने धातोः यत् प्रत्ययश्छान्दसः, समन्यानि बहुवचने।

प्रद आच्छादनों—अपनी आनन्दतरङ्गों को ओढ़ता हुआ (महान् कविः) महान् वक्ता ज्ञानी सर्वज्ञ (निवचनानि शंसन्) रहस्यमय वचनों को—प्रेमभरे उपदेशों को कथन करता हुआ (विचक्षणः) विशेष दर्शक (जागृविः) जागरूक—जागृतिप्रद (देववीतौ) देवों—मुमुक्षुओं की कामपूर्ती स्थली मुक्ति के निमित्त (चम्वोः पूयमानः) आनन्द का आचमन—आस्वादन करानेवाले मेरे मन और अहङ्कार पात्रों में धारारूप से प्राप्त होने को (आवच्यस्व) आगमन कर* ॥ २ ॥

स मु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभिस्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

(प्रियः) तृप्तिकर्ता (यशसां यशस्तः) यशवालों में अत्यन्त यश वाला† महान् आत्माओं में परम महान् (क्षैतः) मुक्तों की निवास योग्य मोक्षभूमि का स्वामी (अव्ये सानो) रक्षणीय ऊंचे सम्भजन साधन में (अस्मे सम्मृज्यते-उ) हमारे द्वारा‡ सम्यक् प्राप्त किया जाता है° (पूयमानः) वह तू प्राप्त होता हुआ (धन्वअभिस्वर) हृदय आकाश में* आशीर्वाद वचन बोल (यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः) तूऽ ही हमारी सदा कल्याण क्रियाओं से रक्षा कर ॥ ३ ॥

---

* "वञ्चति गतिकर्मा" [निघ० २।१४] विकरणव्यत्ययेनश्यन् ।
† "पुरस्य नाम महद्यशः" [यजु० ३२।३]
‡ "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे" [अष्टा० ७।१।३९] भिसः शे ।
° मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
* "धन्व-अन्तरिक्षनाम" [निघ० १।३]
ऽ "पूजायां बहुवचनं" [सायणः]

तृतीय तृच

ऋषिः—तिरश्ची (अन्तर्ध्यानी उपासक*)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एतोन्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थै र्वावृध्वाꣳसꣳ शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २८९)

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र शुद्धो न आगहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
३ २ ३ १र २र ३ १ २
शुद्धो रयिं निधारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२॥

(सोम्य-इन्द्र) हे उपासनारस समर्पणयोग्य परमात्मन् ! तू (शुद्धः) शुद्ध है (नः-आगहि) हमारी ओर आ (शुद्धः शुद्धाभिः-ऊतिभिः) शुद्ध है अतः शुद्ध रक्षाविधानों के साथ आ† (शुद्धः-रयिं विधारय) तू शुद्ध है बल धन को हमारे अन्दर धारण करा (शुद्धः-ममद्धि) तू शुद्ध है अतः हर्ष—आनन्द प्राप्त करा ॥२॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिꣳ शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजꣳ सिषाससि ॥३॥

---

* “तिरोऽन्तर्धौ” [अष्टा० १।४।७०]
“तिरो दधे-अन्तर्धत्ते” [निरु० १२।३२]

† “ये नै [illegible] ऊतयः” [ऐ० ४।२]

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (शुद्धः-हि) शुद्ध ही (नः-रयिं सिषाससि) हमें मोक्षैश्वर्य देना चाहता है (शुद्धः-दाशुषे रत्नानि) शुद्ध है अतः आत्मदानी—आत्मसमर्पणकर्ता के लिये रमणीय वस्तुएं देना चाहता है (शुद्धः-वृत्राणि जिघ्नसे) तू शुद्धरूप पापों अज्ञानों को नष्ट करना चाहता है (शुद्धः-वाजं 'सिषाससि') शुद्ध ही तू अमृत अन्नभोग* सेवन कराना चाहता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुतम्भरः (उपासनीय परमात्मदेव को धारण करने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

३१२ २र ३ २ ३१ २ ३ १२
अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः।
३१ २ ३ १ २
देवस्य द्रविणस्यवः ॥१॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मन्! (दिविस्पृशः-देवस्य) मोक्षधाम में अमृतस्पर्शी† तुझ परमात्मदेव के (सिध्रं स्तोमम्) अभीष्टसाधक‡ स्तुति वचन को (द्रविणस्यवः)

---

* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जैं० २।१९३]

† "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]

‡ "सिध्रं साधनम्" [निरु. ६।२८] "सिध धातोः रक् [उणा.२।१]

हम आत्मबल को चाहनेवाले उपासक* (अद्य मनामहे) आज—इस जीवन में निरन्तर पुनः पुनः पढ़ते बोलते धारण करते॥ १॥

१२०५ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।
१ २ ३ २ ३ १ २
स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥२॥ ऋ० ५.१३.२.

(अग्निः) परमात्मा (नः-गिरः-जुषत) हमारी स्तुतियों को सेवन करे—स्वीकार करे (यः-होता मानुषेषु-आ) जो कि अपनाने वाला, मननशील उपासकों के अन्दर आभासित—साक्षात् होता है (सः-दैव्यं जनं यक्षत्) वह मुमुक्षुजन को अपनी सङ्गति में लेता है ॥ २ ॥

१२०६ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
१ २ ३ १२ २२
त्वया यज्ञं वितन्वते ॥३॥ ऋ० ५.१३.४

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मन् ! तू (जुष्टः) हम उपासकों का प्रिय—प्रीतिपात्र (होता) अपनाने वाला (वरेण्यः) वरण करने योग्य (सप्रथाः) सर्वतो महान्† (असि) है (त्वया यज्ञं वितन्वते) तुझे लक्ष्य कर अध्यात्मयज्ञ को उपासकजन विस्तृत करते हैं—समृद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

---

* "द्रविणं वलम्" [निघ० २।९]

† "सप्रथाः सर्वतः पृथुः" [निरु० ६।७]

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्त-स्वरूप परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१४०८ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
५२३ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्विरत्नधा दयते वार्याणि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४२९)

ऋ० ९.९०.२

१४०९ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
३ १ २ ३ १ २ ३१२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥२॥

ऋ० ९.९०.३

(शूरग्रामः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू प्रगतिशील—हर्ष, सन्तोष, शान्तिगुण समूहवाला (सर्ववीरः) सबका प्रेरक—सर्व प्रकार प्रेरणादाता (सहावान्) तर्पण शक्तिवाला—तृप्तिदाता या सहस्वान्—बलवान्* (जेता) अभिभव करनेवाला—अधिकर्ता—स्वामी† (धनानि सनिता) विविध धनों को सम्भजन करने वाला—दान करने के स्वभाववाला‡ (तिग्मायुधः) कामादि के संघर्ष में उत्साहवर्धक सम्प्रहार शक्ति जिससे प्राप्त हो—ऐसा° अथवा उत्साहवर्धक आयु का धारण कराने वाला

* "षह चक्यर्थे" [दिवादि०] "चक तृप्तौ" [भ्वादि०] सह्यति तर्पयति यया सः सहा तर्पणशक्तिः, तद्वान् सहावान् यथा विद्यावान् । "सहावानं महस्वन्तम्" [निरु० १०।२८]

† 'जि-अभिभवे' [भ्वादि०]

‡ "सनिता-तृन्प्रत्ययान्तः, आद्युदात्तत्वात् तथाकृत्वा हि कर्मणि द्वितीया 'धनानि' ।

° "तिग्मं तेजतेरुत्साहकर्मणः" (आयुधमायोधनात्) [निरु०२०।६]

(क्षिप्रधन्वा) शीघ्रगति—शीघ्रकारी (समत्सु-अषाढ़ः) सम्मोदन हर्ष प्राप्त करने में असह्य—अत्यन्त हर्षमय होने से पूर्ण न सह सकने योग्य※ (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) उपासक मनुष्यों के अन्दर वर्तमान† पापों को‡ दबा देनेवाला (पवस्व) हमें आनन्द-धारा में प्राप्त हो ॥ २ ॥

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १र २र ३ १ २
उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आपवस्वा पुरन्धी ।
३ १र २र   ३ १ ३   २ १र २र   ३ २ ३ १ ३ १ २
अपः सिषासन्नुषसः स्वा३र्गाः सञ्चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ३ ॥

(उरुगव्यूतिः) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू विशाल-मार्गवाला—विभुगतिवाला हुआ (अभयानि कृण्वन्) अभय करने के हेतु (समीचीने पुरन्धी-आपवस्व) विश्व के आमने सामने समतुलन करने वाले द्युलोक पृथिवीलोक को* समन्तरूप से प्राप्त हो—इनको सुखकारी बना (अपः-उषसः-स्वः-गाः सिषासन्) जलों उषाओं—प्रभातों, सूर्य° भूभागों कोऽ सुखमयरूप में सेवन कराने के हेतु (अस्मभ्यं महः-वाजान् सञ्चिक्रदः) हमारे लिये महान् सुखज्ञान लाभों को बतलाता है—समझाता है ॥ ३ ॥

※ "समदः समदो मदतेः" [निरु० ६।१६]
† "पृतनाः-मनुष्यनाम" [निघ० ३।२३]
‡ "सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूनिति सद्यो ह्येष पाप्मानमपहत" [ऐ० आ० १।३।४]
* "पुरन्धी द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]
° "स्वरादित्यो भवति" [निरु० २।१४]
ऽ "गौः पृथिवीनाम" [निघ० १।१]

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—नृमेधः पुरुषमेधश्चः (नायक बुद्धिवाला और पौरुष बुद्धि वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
त्वामिन्द्र यशो अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं वृत्राणि हᳬ स्यप्रतीन्येक इत् पूर्वनुत्तश्चर्षणीधृतः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९४)

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसᳬ राधो भागमिवेमहे ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन् ॥२॥

(असुर-इन्द्र) हे प्रज्ञा के—प्रज्ञान के—प्रकृष्टज्ञान के देने वाले‡ परमात्मन् ! (नूनम् तं त्वा प्रचेतसम्-उ) निश्चय अब उस तुझ प्रवृद्ध ज्ञानवाले† —(भागं राधः-इव-ईमहे) भजनीय—सेवनीय धन समान को हम उपासक मांगते हैं—चाहते हैं‡ (ते शरणा) तेरा शरण—आश्रय* हम उपासकों के लिये (मही

---

‡ "असुः प्रज्ञानाम" [निघ० ३।९] प्रज्ञां प्रज्ञानं राति ददाति यः सोऽसुरः ।

† "प्रचेताः प्रवृद्धचेताः" [निरु० ८।५] "चेतः प्रज्ञाननाम" [निघ० ३।९]

‡ "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१९]

* "शरणा शरणम्" [निरु. ५।२२] "शरणं गृहनाम" [निघ. ३।५]

क्त्तिः-इव) महान् यश, महान् अन्न, महान् घर के समान है॥- (ते सुम्ना) तेरे सुखज्ञान कृपा आदि गुण† या साधुवृत्त—अच्छे गुण धर्म‡ (नः प्र-अश्नुवन्) हमें प्राप्त हों ॥ २ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विषमा ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २८ ३ १ २
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ९७)

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अपां नपातꣳ सुभगꣳ सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
१ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ २
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥२॥

(अपां नपातम्) आप्तजनों° उपासक मुमुक्षुओं को न गिराने वाले अपितु उन्नत करने वाले—(सुभगम्) शोभनैश्वर्य वाले

॥ "क्त्तिः कृन्ततेर्यशो वा-अन्नं वा" [निरु० ५।२२] "क्त्तिः गृहनाम" [निघ० ३।४]

† "सुम्नं सुखनाम" [निघ० ३।६] बहुवचनात् सुखादीनि ।

‡ "सुम्ने मा धत्तमिति""साधौ मा धत्तमित्येतदाह [१।८।३]

° "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

(सुदीदितिम्) शोभन दीप्तिवाले* (श्रेष्ठ शोचिषम्) अति प्रशंसनीय ज्योतिवाले† (अग्निम्-उ) अग्रणायक परमात्मा को अवश्य 'वव्रमहे' हम वरते हैं—स्वीकार करते हैं—अपनाते हैं (सः) वह परमात्मा (नः) हमारे (मित्रस्य वरुणस्य) अध्यात्म में प्रेरित करने वाले उपदेशक के अध्यात्म शिक्षण में वरने वाले—अपनाने वाले अध्यापक के—(सः) वह (अपाम्) हम अध्यात्म विद्या प्राप्त उपासक जनों के (सुम्नम्) सुख या साधु—साधनीय लक्ष्य को (दिवि) द्योतनात्मक अमृत के धाम मोक्ष में (यक्षत) सङ्गत करता है॥ २ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीर-गत में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुकजन)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ २
यदग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
२उ ३ ० १ २ ३ १ २
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥१॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! (यं मर्त्यम्) जिस

---

* "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १।१६]

† "शोचिः ज्वलतो नामधेय" [निघं० १।१७]

मनुष्य को (पृत्सु-अवाः) प्रीतियोग्य—प्रेयमार्गीय विषयभोगों में* रक्षित रखता है—पतित नहीं होने देता है उपासनाप्रभाव से, तथा (यं वाजेषु जुनाः) जिसको अर्चना साधनों॰ योगाङ्गों में प्रेरित करता है† (सः) वह मनुष्य (शश्वतीः इषः-यन्ता) शाश्वतिक—स्थायी कामनाओं का स्वामी होजाता है‡ ॥ १ ॥

न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥२॥

(सहन्त्य) हे सब के सहन—अभिभव करने वाले अधिपति परमात्मन् ! (अस्य कयस्य चित्) तेरे इस ज्ञानी जैसे ऊंचे ज्ञानी उपासक मुमुक्षु का° (पर्येता न किः) घेरा डालने वाला—बन्धन में लाने वाला राग आदि कोई विषय नहीं है, कारण कि (वाजः श्रवाय्यः-अस्ति) श्रवण प्राप्त* श्रवण-चतुष्टय प्राप्त—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार से प्राप्त आध्यात्मिक बल है§ ॥ २ ॥

---

* "पृ प्रीतौ" [स्वादि०] ततः कर्मणि क्विप् औणादिको ह्रस्वश्च ।
॰ "वाजयति अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]
† "जुङ् गतौ" [भ्वादि०] विकरणव्यत्ययेन श्ना ।
‡ "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" [तै० २।१।१]
° "कि ज्ञाने" [जुहो०] ततः-अच् कर्तरि । "आचार्यश्चित् चित पूजायाम् [निरु० १।४]
* 'श्रवः श्रवणम्, श्रवणेन-आय्यः-प्राप्यः, इण धातोर्ण्यत् । "वान्तोपि प्रत्यये" [अष्टा० ६।१।७६]
§ "वाजो बलम्" [निघ० २।९]

१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
१ २ ३ १ २
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥३॥

(सः) वह अग्रणायक परमात्मा (विश्वचर्षणिः) सर्वद्रष्टा† (अर्वद्भिः-'अर्ववन्तः' तरुता-अस्तु) प्रेरणावाले§ स्तुतिवाले उपासकों को संसारसागर से तराने वाला हो। (विप्रेभिः-वाजं सनिता-अस्तु) ब्राह्मणों—ब्रह्म जानने वालों को अमृत अन्नभोग का सम्भाजन देने वाला हो ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नोधाः (नवन-स्तवन को धारण करने वाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४३९)

२ ३ २ ३ १२ २२ ३ १२ २३ ३ १ २ ३ २
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्संगच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

† "कुटस्य चर्षणिः-कृतस्य कर्मणश्चयिता" [निघ० ४।२]

§ "अर्वा-ईरणवान्" [निरु० १०।३१]

२६

(पुरुवारः-वृषा) बहुत वरणीय कामनावर्षक सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अद्भिः संदधन्वे) मुमुक्षु उपासकजनों द्वारा* आलिङ्गित किया जाता है† (मातृभिः-वावशानः शिशुः-न) माताओं से जैसे स्नेह चाहता हुआ आलिङ्गित किया जाता है, तथा (उस्रियाभिः-निष्कृतं यन्) उछलती हुई‡ आनन्दधाराओं या स्तुतिवाणियों से संस्कृत—शुद्धपात्र उपासक को प्राप्त होने के हेतु (कलशे सङ्गच्छते) हृदयकलश में—हृदय घट में सङ्गत होता है—स्थान लेता है। (मर्यः-न योषाम्-अभि) जैसे मनुष्य स्नेहपरायण पत्नी को अभिप्राप्त होता है ॥ २ ॥

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥

(इन्दुः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (सुमेधाः) शोभन—मेधावी—सर्वज्ञ (उत्-अघ्न्यायाः-ऊधः प्रपिप्य) जैसे गौ का दूध-स्थान दूध से भर जाता है ऐसे ही (धाराभिः सचते) स्तुतिवाणियों से समवेत होता है संज्ञात या प्रसिद्ध साक्षात् होता है (गावः) स्तुतिवाणियां (मूर्धानम्) शिरोधार्य सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (पयसा) अन्तर्हितभाव—अनुराग से° (चमूषु) अन्तःकरणावयवों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार रूप पात्रों में (अभिश्रीणन्ति) आश्रय दे देती हैं (वसुभिः-निक्तैः-न) जैसे शुद्ध वास देने वाले वस्त्रादि से वासित आश्रित करते हैं—आश्रय दे देते हैं॥३॥

---

* "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।११।२०]

† 'कर्मणि कर्तृप्रत्ययोऽयम्'।

‡ "उस्रियेति गोनाम। उस्राविण्यः" [निरु० ४।१९]

° "अन्तर्हितमिव वा तद्यत् पयः" [तां० ९।९।३]

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन-गमन-प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—प्रगाथः (विषमा बृहती) ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३=१ २ ३ १ २
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९०)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नस्तरभिमातये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्मान् चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२॥

(वयं वाजिनः) हे इन्द्र—परमात्मन् ! हम अर्चनावाले—स्तुतिवाले* स्तुति समर्पित करनेवाले उपासक (ते सुमतौ भूयाम) तेरी कल्याणकारी मति—शिक्षा में हों—रहें (अभिमातये नः-मा स्तः) पाप के लिये† पाप करने को हमें मत प्रस्तृत‡ प्रेरित कर—करता है । अपितु (चित्राभिः अभिष्टिभिः) अद्भुत—अलौकिक अभिवेष्टनाओं° रक्षणरीतियों के द्वारा (अवात्) हमारी रक्षा

---

* "वाजयति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४[

† "पाप्मा वा अभिमातिः" [काठ० १३।३]

‡ "स्तृञ् आच्छादने" [क्रयादि०]

° "अभि पूर्ववात् ष्टै वेष्टने" [म्वादि०]

कर (यः सुम्नेषु-आयामथ) साधु* सुख सरल सदाचरणों में समन्तरूप से रहकर—लगा—लगाता है ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—रेणुर्वैश्वामित्रः (सर्वमित्र से सम्बद्ध सूक्ष्म ज्ञानवाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमन् ।
३ २ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४६०)

१२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना विशश्रथे ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तेजिष्ठा अपो मंहना परिव्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

(सः) वह (चारुणः-अमृतस्य भक्षमाणः) शोभन रोचमान† अमृत-मोक्षानन्द का सेवन कराना चाहता हुआ‡ सोम—परमात्मा (उभे द्यावा 'द्यावा पृथिवी') दोनों द्युलोक पृथिवीलोक—

---

* "सुम्ने मा धत्तमिति····साधौ मा धत्तमित्यैवैतदाह"
[श० १।८।३।२७]

† "चारु रुचेर्विपरीतस्य" [निरु० ११।५]

‡ "इन्द्रस्य भक्षतः····इन्द्रस्य धनानि विभक्षमाणाः स यदा धनानि विभजति" [निरु० ६।८]

उनके स्वरूप या ज्ञान को (काव्येन) वेदत्रयी—विद्यात्रयी※ के द्वारा (विशश्रथे†) विवृत करता है—खोलता है। (तेजिष्ठाः-अपः) अत्यन्त तेजस्वी आप्त उपासक जनों को‡ (मंहना परिव्यत) अपनी सुखप्रदान प्रवृत्ति से° परिप्राप्त होता है (यदि देवस्य सदः श्रवसा विदुः) यदि वे उपासकजन तुझ द्योतमान परमात्मा के सदन—हृदयस्थान को श्रवण द्वारा जान लें* ॥२॥

२ ३१र २र ३१ २ ३ १ २ ३१र २र

ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।

१ २ ३ १ २ ३क २र ३१र २र ३ १ २

येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

(अस्य) इस सोम—शान्त परमात्मा के (ते केतवः) वे पूर्वोक्त प्रज्ञानवान्ऽ मुमुक्षु उपासक (अमृत्यवः-अदाभ्यः सन्तु) मृत्युरहित, अमर, अहिंसनीय हो जावें (उभे जनुषी अनु) दोनों जन्म—प्रादुर्भाव—संसार में आना, आने पर 'अदाभ्य'—अहिंसनीय पुनः मोक्ष में जाने पर 'अमृत्यु' मृत्युरहित—अमर हो जाते हैं (येभिः) जिन्हें लक्ष्य कर या जिनके लिये§ (नृम्णा च देव्या च) संसार में अन्नादि भोग और मोक्ष में 'देव्या' देवों

※ "त्रयी वै विद्या काव्यम्" [श० ८।५।२।४]

† "श्रथ मोक्षणे" [चुरादि०] विपूर्वको विवरणार्थे ।

‡ "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

° "मंहतं दानकर्मा" [निघ० ३।२०]

* "पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतं तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः" [अथर्व० १०।८।४३]

ऽ "केतुः प्रज्ञा-प्रज्ञानम्" [निघ० ३।९] ततो मत्वर्थीयप्रत्ययस्यलोपश्छान्दसः ।

§ "चतुर्थ्यर्थे तृतीया व्यत्ययेन ।

मुक्तों के योग्य मोद आनन्द आदि (पुनते) प्राप्त कराता है॥ (आत्-इत्) अनन्तर ही (मनना:-राजानम्-अगृणत) अर्चना स्तुति करने वाले उपासक† प्रकाशमान परमात्मा को स्वात्मा में ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतियों का कर्ता)
देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)
छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३क २र ३ २ २ ३ १र २र ३ १ २
अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नरं धीजवनँ रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१॥

(गृणानः पूयमानः) हे सोमस्वरूप परमात्मन् । तू स्तूयमान—स्तुति में आता हुआ‡ साथ ही अध्येष्यमाण—प्रेरित आकर्षित किया जाता हुआ° (वीती) व्याप्ति या कामपूर्ति के लियेऽ (वायुम्-अभि-अर्ष) गतिशील मन को§ अभिप्राप्त हो—

॥ पावयति-अन्तर्गतणिजर्थः ।

† "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

‡ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ।

° "पवस्व-अध्येषणाकर्मा" [निघ० ३।२१]

ऽ "वी गति व्याप्ति प्रजननकान्ति····" [अदादि०] ततः क्तिम् ।
"सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णा····" [अष्टा० ७।१।३९]

§ "मनो वायुः" [काठ० ९।१२]

पहुँच मर्य मनन करता रहे (मित्रावरुणा-अभि) प्राण अपानों को* अभिगत हो—पहुंच वे अच्छी गति करते रहें (धीजवनं नरम्-अभि) बुद्धि से अपने विषयों में गति करने वाला—नेत्रादि ज्ञानेन्द्रिय ग्राम समूह† को अभिप्राप्त हो—पहुंच जिससे उचित विषय में गमन करे (रथेष्ठाम्-वृषणं-वज्रबाहुम्-इन्द्रम्-अभि) शरीररथ में स्थित, अङ्गों में शक्तिवर्षक, ओजरूप‡ बलवीर्य° जिसका है ऐसे आत्मा को अभिगत—पहुंच प्राप्त हो जिससे तेरे में रहा रहे ॥ १ ॥

३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
३ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव सोम॥२॥

(देव सोम) हे द्योतमान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (पूयमानः) अध्येष्यमाण—प्रेरित—आकर्षित हुआ (नः-भर्तवे) हमारे भरण करने के लिये (सुवसनानि वस्त्रा-अभि-अर्ष) जो शोभनवसन आच्छादन योग्य वस्त्रों को अभिगत हो—वस्त्रों को व्यसनरूप में न देवें—वर्तें किन्तु तेरा प्रसाद है ऐसी दृष्टि से वर्तें (सुदुघाः-धेनूः-अभि) उत्तम दूहन योग्य गौओं में अभिगत—प्राप्त हों उन्हें भी तेरा उपहार समझें (चन्द्रा हिरण्या-अभि) आह्लादकारक स्वर्ण आदि धनों को भी अभिप्राप्त हो—उन्हें केवल भूषामात्र न समझें किन्तु उनमें तेरी झांकी प्रतीत करें (रथिनः अश्वान्-अभि) रथवान् घोड़ों को भी तेरा प्रसाद मानें ॥ २ ॥

* "प्राणापानौ मित्रावरुणौ" [तां० ६।१०।५]
† "नरो वै देवानां ग्रामः" [तां० ६।९।२]
‡ "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।१०]
° "बाहू वीर्यम्" [तां० ६।१।८]

३ १ २ ३ १२ २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २
अभि नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवाः पूयमानः ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र३ १ २ ३ १ २
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३॥

(पूयमानः) हे सोम—शान्त परमात्मन् ! तू अध्येषमाण हुआ आकर्षित हुआ (नः) हमारे (दिव्या वसूनि-अभि-अर्ष) दिव्य आकाश से प्राप्त होने वाले वास साधनों—वृष्टि, ज्योति अवश्याय ओस, रात्रि, वायुको अभिगत हो प्राप्त हो—इन्हें सेवन करते हुए, तेरा स्मरण करें (येन 'यद्' द्रविणम्-अश्नवाम:-अभि) जिस* धन को हम भोगें उसे तू अभिगत हो—प्राप्त हो उस भोग के साथ तेरा धन्यवाद करें (आर्षेयं जमदग्नि-वत्-अभि) ऋषियों से श्रुतज्ञान नेत्रवाला नेत्रदृष्टा† साक्षात् है उसे अभिगत—प्राप्त हो उससे तेरा मनन करें ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—नृमेधपुरुमेधावृषी (मुमुक्षु मेधावाला और बहुत मेधावाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

१र २र ३ १ २ ३ १ २
यज्जायथा अपूर्व्यं मघवन् वृत्रहत्याय ।
१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १र २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥१॥

---

* "द्रविणं धननाम" [निघ० २।१२]

† "चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत्पश्यत्यथो मनुते" [श० ८।१।२।३]

(अपूर्व्यं मघवन्) हे अपूर्व गुणसम्पन्न मोक्षैश्वर्यवन् परमात्मन् ! (वृत्रहत्याय) आत्मा को प्रथम से आवृत करने वाले अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिये (यत् 'यद्'-जायथाः) जब तू सृष्टि रचने की भावना से प्रसिद्ध होता है (तत् 'तद्') तब (पृथिवीम्-अप्रथयः) उसके लिये शरीर को* प्रथित करता है—नाडी तन्तुओं, मांस हड्डियों से विस्तृत करता है कर्म करने को (उत-उ) और फिर तत्-दिवम्-अस्तभ्नाः) तब अमृतधाम—मोक्ष को† सम्भालता है मोक्ष प्राप्त कराने को ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३१ २र
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः।
१र २र ३ १ २ ३ २ ३१ ३ ३ १ २
तद्विश्वमभि भूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥२॥

(तत् 'तद्' ते) परमात्मन् तब तेरा (यज्ञः-अजायत) उपासक ऋषियों द्वारा अध्यात्मयज्ञ प्रसिद्ध होजाता है (तत्-'तद्' अर्कः) उस समय अध्यात्म यज्ञार्थ मन्त्र‡ मन्त्रमय-वेद प्रसिद्ध होता है (उत हस्कृतिः) और उपासकों की हास —हर्ष की क्रिया—प्रसन्नता भी व्यक्त हो जाती है (यत्-जातं यत्-च जन्त्वम्) जो उत्पन्न—प्रत्यक्ष हुआ जगत् सुख और जो उत्पन्न होने वाला परोक्षानन्द° (तत्-विश्वम्) उस सब को (अभिभूः-असि) अभिभूत किए हुए है—स्वाधीन रखता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३१र २र३ १र २र ३ २
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।

* "यच्छरीरं सा पृथिवी" [ऐ० आ० २।३।३]
† त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]
‡ "अर्कोमन्त्रोभवति" [निरु० ५।४]
° "कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः" [अष्टा० ३।४।१४]

३ १२ २र ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २
घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥३॥

(आमासु-पक्वम्-ऐरय) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू अपक्व साधारण उपासक प्रजाओं में परिपक्व—उपासना में सुसम्पन्न उपासक मुमुक्षु को ऊंचे प्रेरित कर (आ, सूर्यं रोहयः-दिवि) जैसे सूर्य को ऊंचे आकाश में चढ़ाया है (घर्मं न सामन् तपत) तथा हे अपक्व उपासक प्रजाओ ! तुम अपने को साम में, उपासना में, ऐसे तपाओ प्रकाश लेकर जैसे यज्ञ* को तपाते हैं प्रज्वलित करते हैं (सुवृक्तिभिः) शोभन स्तुतियों से† (बृहत्-'बृहन्तं' जुष्टं गिर्वणसे) महान् ‡ सेवनीय या प्रीतिपात्र स्तुतिवाणियों से वननीय इन्द्र परमात्मा को* स्तुत करो—साक्षात् करो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अगस्त्यः (शरीर और संसार वृक्ष का संग्रह और त्याग करने वाला अध्यात्म यज्ञ का याजक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र . २र
मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥

* "घर्मः-यज्ञनाम" [निघ० ३।१७]

† "सुवृक्तिभिः-शोभनाभिः स्तुतिभिः" [निरु० २।२४]

‡ 'सुपां सुलुक्' [अष्टा० ७।१।३९] इति अम् विभक्तेर्लुक् ।

* विभक्ति व्यत्ययः, द्वितीयास्थाने चतुर्थी ।

(हरिवः) हे दुःखापहर्ता सुखाहर्ता ज्योति और शान्ति से युक्त परमात्मन्! (ते महः पात्रस्य-इव-अपाम्) तेरे लिये जो महत् पात्र जितना सोम—उपासनारस है उसे तूने पिया—स्वीकार किया, अतः (मत्सि) तू हम पर हर्षित हो रहा है—प्रसन्न हो रहा है (मत्सरः-मदः) यह उपासनारस हर्षप्रद—प्रसन्नताकारक है (ते वृष्णे) तुझ सुखवर्षक के लिये (वृषा-इन्दुः-वाजी) वर्षणशील आप्त उपासनारस बलवान् (सहस्रसातमः) बहुत हमारा सुख सम्भाजी है ॥ १ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
सहावाꣳ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (नः) हमारा (वृषा मदः-वरेण्यः-मत्सरः) वर्षणशील निरन्तर चलने वाला सृष्टिनिमित्तक स्वीकार करने योग्य सोम—उपासनारस (ते) तेरे लिये—तेरी ओर (आगन्तु) आ रहा है तू इसे स्वीकार कर (सहावान्) तू सहस्वान्* बलवान् (सानसिः) सुख सम्भाजक—सुखदाता (पृतनाषाट्) काम आदि विरोधी दोषों का तिरस्कारकर्ता (अमर्त्यः) अमर अविनाशी एकरस है ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥

(त्वं हि शूरः) हे इन्द्र—परमात्मन्! तू ही पराक्रमी है—सब पर अधिकारकर्ता (सनिता) सुख सम्भाजक—सुखदाता

* "सहावानं सहस्वन्तम्" [निरु० १०।२८]

(मनुषः-रथं चोदयः) मननशील उपासक के रथ—देवरथ—या मनन धर्म के रथ—देवरथ—तुझ देव की ओर चलने वाले रथ अध्यात्मयज्ञ * को प्रेरित कर (सहावान् सहस्वान्) बलवान् (अव्रतं दस्युम्-ओषः) व्रतरहित—सदाचरण कर्मरहित—अन्य के क्षयकर्ता को दग्ध कर देता है (पात्रं न शोचिषा) जैसे अग्नि रिक्त पात्र को ज्वाला से दग्ध कर देता है ॥ ३ ॥

इति द्वादश अध्यायः ।

—()-:०:-()—

* "देवरथो वा एष यद् यज्ञः" [मै० २।३।७]

अथ त्रयोदश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम पञ्चर्च

ऋषिः—कविः (स्तुतिवक्ता उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१२ ३ २उ ३ २ ३ २ ३१र २र
पवस्व वृष्टिमा सुनोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
३ १ २ ३१र २र
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

(नः) हे सोम—परमात्मन् ! तू हम उपासकों के लिये (वृष्टिम्-आपवस्व) सुखवृष्टि को ले आ—समन्तरूप से प्राप्त करा (अपाम्-ऊर्मिंदिवस्परि सु) हम मुमुक्षुजनों की* स्तुतितरङ्ग को अमृतधाम में† पहुंचा, इस प्रकार (बृहतीः-इषः) ऊंची कामनाएं-कमनीय वस्तुएं (अयक्ष्माः) रोग से—क्षय से रहित हों ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१र २र
तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
१ २ ३ १ २ ३ २
जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥

---

* "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

† "पञ्चम्याः परावध्यर्थे" [अष्टा० ८।३।५१]

(तया धारया पवस्व) हे परमात्मन् ! तू अपनी उस धारण शक्ति से प्राप्त हो (यया गावः-इह-आगमन्) जिस से तेरी वाणियां—†वेदवाणियां यहां अन्तःकरण में आजावे सात्म्य हो जावे (जन्यासः-नः-गृहम्-उप) उन वाणियों से जन्य—उत्पन्न सुख लाभ हृदय को प्राप्त हो ॥ २ ॥

३१ २ ३ १२ ३१२ ३१२
घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
३ १ २ ३१र २र
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥

(देववीतमः) हे सोम—परमात्मन् ! तू मुमुक्षुजनों का अत्यन्त कमनीय होता हुआ, उनके (यज्ञेषु) अध्यात्म यज्ञों में (धारया घृतं पवस्व) अपनी धारणशक्ति से तेज को‡ प्रेरित कर (अस्मभ्यं वृष्टिम्-आपव) हम उपासकों के लिये सुखवृष्टि को बरसा ॥ ३ ॥

१ २ ३२ १२ ३१२ ३ १२
स न ऊर्जेव्या३ऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
३१ २ ३ ३ १ २
देवासः शृणवन् हि कम् ॥४॥

(सः) वह तू सोम—परमात्मन् ! (नः-ऊर्जे) हमारे आनन्दरस के लिये (अव्ययं पवित्रं धारया विधाव) अवि—पृथिवी—पृथिवीमय* पार्थिव हृदय—प्राप्तिस्थान के प्रति धारण शक्ति से विशेष

§ "तद्यदब्रवीद्ब्रह्म आभिर्वा अहमिदं सर्वं धारयिष्यामि यदिकिञ्चनेति तस्माद् धारा अभवन्" [गो० १।१।२३]

† "गौः वाङ्नाम" [निघ० १।११]

‡ "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८]

* "इयं पृथिवी वा अविः" [श० ६।१।२।३३]

रूप में प्राप्त हो॰ (देवासः-हि कम्-शृण्वन्) इन्द्रियां भी तेरे सुख को अनुभव करें या स्वीकार करें—अपनावें ॥ ४ ॥

१ २ ३१ २ ३१ २
पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥५॥

(पवमानः) धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा (रक्षांसि अपजङ्घनत्) रक्षा जिनसे करनी चाहिए ऐसे दुर्गुणों पापों को नष्ट करता हुआ (प्रत्नवत् 'प्रत्नवती' रुचः-रोचयन्) परम्परा से चली आई† दीप्तियों—ज्ञानज्योतियों को प्रकाशित करता हुआ (असिष्यदत्) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को‡ अपने अन्दर धारण करने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २९२)

॰ "धावति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

† प्रत्नवत्-लिङ्गशसोर्लुक्छान्दसः ।

‡ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १।१९३]

१४४१

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

ऋ० ६.४२.२

(ईम्-एनं सोमपातमम्) हे उपासको ! तुम अवश्य इस उपासनारस के अत्यन्त पान करने वाले—स्वीकार करनेवाले—(ऋजीषिणम्-इन्द्रम्) अध्यात्मयज्ञ में अतिरिक्त बढे चढे उपासक वाले* परमात्मा को (सुतेभिः-अमत्रेभिः-इन्दुभिः सोमेभिः) सम्पन्न हुए—बिना माप वाले† अत्यधिक दीप्यमान उपासनारसों द्वारा (आप्रत्येतन) समन्तरूप से प्राप्त होओ ॥ २ ॥

१४४२

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ २ २
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत् तं तमिदेषते ॥३॥

ऋ० ६.४२.३

(यदी) हे उपासको ! यदि (सुतेभि-:इन्दुभिः सोमेभिः) निष्पन्न प्रकाशमान उपासनारसों से (प्रति भूषथ) इन्द्र—परमात्मा को तुम प्रतिप्राप्त होजाओ‡ तो (मेधिरः-धृषत्) प्रशस्त मेधावाला अज्ञाननाशक परमात्मा (विश्वस्य वेद) सब कमनीय को जानता है (तं तम्-इत्-एषते) उसको प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

१४४३

३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
कुवित् समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥४॥

ऋ० ६.४२.४

* "अतिरिक्तं वा एतद् यज्ञस्य यद् ऋजीषम्" [मै० ४।८।५]

† "अमत्रं...पुनरनिर्मितं भवति" [निरु० ५।१]

‡ "भू प्राप्तौ" [चुरादि०] ततोलेटि सिप् च अट् च छान्दसौ ।

(अध्वर्यो) हे अध्यात्मयज्ञ के याजक उपासक जन! तू (अस्मै-अस्मै-इत्) इस ही इस इन्द्र—परमात्मा के लिये (सुतम्-अन्धसः-'अन्धः') निष्पन्न आध्यानीय—उपासनारस को (प्रभर) प्रभरित कर—समर्पित कर (समस्य जेन्यस्य शर्धतः-अभिशस्तेः) सब* जीतनेयोग्य—नष्ट करने योग्य उत्साह करते हुए—उठते हुए—उभरते हुए† अभिशंसन—दबाने सताने वाले काम आदि दोष को‡ (कुवित्-अवस्वरत्) बहुत° दबाता* है—नष्ट करता है ॥ ४ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम पद्धच

ऋषिः—असितो देवलो वा (रागादि बन्धन से रहित या परमात्मदेव को अपने अन्दर लाने वाला उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे।
१ २ ३ १ २
सोमाय गाथमर्चत ॥१॥ ऋ॰ ९.११.४

---

* "समस्य····सर्वस्य" [निरु॰ ५।२३]

† "शर्धत्····उत्सहताम्" [निरु॰ ४।१६]

‡ "अभिशस्तिहा" [तै॰ सं॰ १।६।५।२]

° "कुवित्-बहुनाम" [निघ॰ ३।१]

* "स्वृ शब्दोपतापयोः" [भ्वादि॰]

(बभ्रवे) हे उपासको ! तुम भरण पोषण करने वाले—(स्वतवसे) निजी बलवाले—* (अरुणाय) तेजस्वी—(दिविस्पृशे) मोक्षधाम में प्राप्तिवाले (सोमाय) शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये (गाथम्-अर्चत) स्तुतिसमूह को† अर्चित करो—भेंट करो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।
२ ३ १ २ ३ १ २
मधावा धावता मधु ॥२॥

(हस्तच्युतैः-अद्रिभिः) हे उपासको ! तुम हाथ से रहित अदीर्ण अनश्वर फलवाले कर्मों—योगाभ्यासों—द्वारा (सुतं सोमम्) निष्पादित परमात्मा को (पुनीतन) साक्षात् करो (मधौ मधु-आधावत) मधु—अपने ज्ञानवान् चेतनस्वरूप आत्मा में महामधु—मधुररूप परमात्मा को समन्तरूप से प्राप्त करो ॥२॥

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
२ ३ १ २
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥३॥

(नमसा-इत्) नम्रस्तुति से (उपसीदत) परमात्मा को समीप—साक्षात् प्राप्त करो (दध्ना-इत्-श्रीणीतन) ध्यान से ही‡ उसे परिपक्व करो—सिद्ध करो—अभ्यस्त करो (इन्दुम्-इन्द्रे दधा-

---

* "तवस् बलनाम" [निघ० २।९] मतुब्लोपश्छान्दसः ।
† "गाथा वाक्" [निघ० १।११] तासां समूहः-गाथः ।
‡ दध्यङ्-प्रत्यक्तोध्यानमिति वा प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" [निरु० १२।३४]

तन) प्रकाशस्वरूप या आनन्दपूर्ण परमात्मा को स्वात्मा में धारण करो ॥ ३ ॥

३ १२ २र ३ १ २ ३ १२ २र
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
३ १ २ ३ २
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (अमित्रहा) जो तेरा मित्र नहीं, तुझ से स्नेह नहीं करता उस नास्तिक भाव का तू हन्ता है (विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा—आस्तिक नास्तिक का ज्ञाता है, अतः (गवे शम्) स्तुतिकर्ता के लियेॐ कल्याणकारी है (देवेभ्यः-अनुकामकृत्) मुमुक्षुजनों के लिये अनुकूल कामना पूरक है।४

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परिषिच्यसे ।
३ १र २र ३ १ २
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥५॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (इन्द्राय पातवे मदाय) आत्मा के पान—सेवन करने के लिये, उसके हर्ष के लिये (परिषिच्यसे) स्तुतियों द्वारा परिषिक्त किया जाता है—रिझाया जाता है, (मनश्चित्) तू मन का, मनोवृत्ति का ज्ञाता और मन का पालक है ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः ।
२ ३ १ २ ३ २
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६॥

ॐ "गौः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

(पवमान सोम) हे धारारूप में प्राप्त होने वाले शान्त-स्वरूप परमात्मन् ! तू (सुवीर्यं रयिं नः-रिरीहि) शोभन बलवाले ज्ञान-धन को हमें दे—प्रदान कर (नः-इन्दो) हे हमारे आनन्द-रसपूर्ण इष्टदेव (युजा-इन्द्रेण) युक्त होने वाले मुझ उपासक आत्मा के साथ युक्त हो—सङ्गति कर ॥ ६ ॥

द्वितीयं तृच

ऋषिः—सुकक्षः (शोभन अध्यात्मकक्षा वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
उद्घेदभिश्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०८)

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३क २र
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
१ २ ३ १ २
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२॥

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।
३ १ २
उरुधारेव दोहते ॥३॥

(बाह्वोजसा) जो इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा अनिष्टबाधक बल से उपासक को (नव नवतिं 'नवतीः' पुरः) नौ गतियों*

---

* "नवते गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
नवतिम्-'नवतीः' व्यत्ययेन एकवचनम् ।

मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और पांच ज्ञानेन्द्रियों की प्रवृत्तियां—जो आत्मा को पूरने वाली—घेरने वाली हैं उन्हें (बिभेद) छिन्न भिन्न कर देता है (वृत्रहा) पापनाशक परमात्मा (अहिं च-अवधीत) आत्मा के अमरत्व को आघात पहुंचाने वाले मृत्यु को या आगे आने वाले जन्म को नष्ट कर देता है (सः-इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा पुनः (नः) हमारा (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र—साथी हुआ (अश्वावत्) घोड़ों वाले विहरण को (गोमत्) गौ वाले पेय (यवमत्) अन्नवाले भक्ष्य भोगों को यदि हम चाहें तो (उरुधारा-इव दोहते) बहुत दुग्ध धारा वाली गौ को दोहता है—देता है ॥ २, ३ ॥

—

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विभ्राट् सौर्यः (सूर्यसमान अध्यात्म तेजवाला योगी उपासक)

देवता—सूर्यः (उपासकों को अध्यात्मप्रकाशदाता परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा वि राजति ॥१

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ५२३)

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

(विभ्राट्) विशेष दीप्त (बृहत्) बड़ा (सुभृतम्) सब में सुगमतया रखा (वाजसातमम्) बल का अत्यन्त दाता (दिवः-धरुणे धर्मन्) मोक्षधाम के धारक मुमुक्षु द्वारा धारण करने योग्य (सत्यम्) सत्यस्वरूप (अर्पितम्) प्राप्त—स्थित परमात्मज्योति है (अमित्रहा) चेतनत्वविरोधी—जडत्व का नाशक (वृत्रहा) पापनाशक (दस्युहन्तमम्) क्षयकारक अज्ञान का अत्यन्त नाशक (असुरहा) स्वार्थभावविघातक (सपत्नहा) वैरनाशक (ज्योतिः) परमात्मज्योति उपासक का पालन करता है ॥ २ ॥

३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

(इदं श्रेष्ठम्) यह श्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः-उत्तमम्) ज्योतियों का उत्तम ज्योतिस्वरूप (बृहत्-विश्वजित्-धनजित्-उच्यते) महान्, विश्व पर अधिकार रखनेवाला, धन—भोग्य वस्तुओं पर अधिकार रखने वाला, कहा जाता है (विश्वभ्राट्) विश्वप्रकाश (महिभ्राजः) महान् प्रकाशमान (सूर्यः) सूर्य—परमात्मा (दृशे) दर्शनार्थ (उरु पप्रथे) जगत् को प्रथित करता है—फैलाता है (अच्युतं सहः-ओजः) अनश्वर बलरूप और तेजोरूप है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसनेवाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

* 'उभयत्र प्रथमायां सप्तमी व्यत्ययेन ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३२ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २०७)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३माशिवासोऽवक्रमुः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूरतरामसि ॥२॥

(शूर) हे पराक्रमशील परमात्मन् ! (अज्ञाताः-वृजनाः-दुराध्यः) अज्ञात, प्राणवर्जक❀ दोष दुष्टजन तथा दुर्विचार अहितचिन्तत विचार, चोर शत्रुजन† अथवा 'वृजना'-दुराध्यः' बलवान्‡ विचार या चोर शत्रुजन (नः-अवक्रमुः) हमें दबावें (अशिवासः-मा) पाप° पापीजन भी हमें मत दबावें (त्वया) तेरे साथ—तेरी सहायता से (वयं प्रवतः शश्वतीः-अपः) हम रक्षण पाए हुए* या प्रवण हुई गहरी पुरातन से चली आई* कामनाओं—वासनाओं को§ अथवा 'प्रवतः शश्वतीरापः' संवत्सर—

❀ "वृजी वर्जने" [अदादि०]

† "येवैस्तेनारिपवस्ते दुराध्यः" [तां० ७।४।५]

‡ "वृजनं बलनाम" [निघ० २।६] अकारोमत्वर्थीयश्छान्दसः ।

* "अत्राजहाम ये दशेवा" [ऋ० १०।५३।८]

° "प्रवतः अवति गतिकर्मा" [निघ० १०।२०] उपसर्गोच्छन्दसि धात्वर्थेवत् [अष्टा० ५।१।११८]

✻ "शश्वत्तमा-शाश्वतिकतमा" 'शश्वतगामिनी' [निरु० १।२४]
"आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०।५।४।१५]

वर्ष—जीवन के वर्षों को† (अतितरामसि) पार कर जाते ॥२॥

तृतीय द्वृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१॥

(सत्पते इन्द्र) हे सज्जनों के पालक ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (अद्य-अद्य) आए दिन—प्रति आज दिन (श्वः श्वः) कल आने वाले दिन—प्रति आगामी कल दिन (परं च) और उससे परले परश्व—आगामी परसों के दिन (नः-त्रास्व) हमारा त्राण कर तथा (विश्वा-अहा) सब दिनों में (दिवा नक्तं च) दिन और रात (नः-जरितॄन्-रक्षिषः) हम स्तोताओं‡ उपासकों की रक्षा कर—करता है ॥ १ ॥

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२२ ३ २
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
३ १ २ ३१२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥२॥

(शतक्रतो) हे बहुत कर्मवाले परमात्मन् ! (वीर्याय) वीर्य प्रदर्शन के लिये—प्रदर्शन में तू इन्द्र—परमात्मा (प्रभङ्गी) दुःखभंजक (शूरः) काम आदि शत्रुओं का हिंसक (मघवा)

---

† "संवत्सरो वा प्रवतः शाश्वतीरपः" [तां० ४।७।६]

‡ "जरिता स्तोतृनाम" [निघ० ३।१५]

अध्यात्म यज्ञ का स्वामी* (सम्मिश्लः कम्) समागम योग्य हैं (ते बाहू) ते दोनों कर्मबल और ज्ञानबल संसार और मोक्ष में (वृषणा) भोग और अमृत के वर्षाने वाले हैं (या) जो वे (वज्रं नि मिमिक्षतुः) ओज को उपासक में सीञ्चता है† ॥ २ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम एकर्च

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता—सरस्वान् (वेदवाणी वाला‡ परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।
१ २
सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥

(जनीयन्तः) हम उपासक मुमुक्षुजनों की शक्तियों° को चाहते हुए जिनमें मुमुक्षु बनते हैं (पुत्रीयन्तः) अध्यात्मवरों* को चाहते हुए जो मुमुक्षुओं के अभीष्ट होते हैं (अग्रवः) आगे बढ़ने वाले (सुदानवः) शोभनदान—आत्मदान—आत्मसमर्पण

---

* "यज्ञेन मघवान्" [तै० सं० ४।४।८।१]

† "मिक्ष सेचने" [वैदिक धातुःश्लो,] अथवा "मिह सेचने" [भ्वादि०] ततः स्वार्थे सन्

‡ "सरः वाङ्नाम" [निघ० १।११]

° "देवानां वै पत्नीर्जनयः" [काठ० १२।७]

* "वरो हि पुत्रः" [काठ० ६।१४]

करने वाले (सरस्वन्तं हवामहे) वेदवाणी वाले परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाला उपासक)

देवता—सरस्वती (वेदवाणी)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
१ २ ३ १ २
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१॥

(उत) अपि—और (प्रियासु प्रिया) प्रियाओं में—प्यारी चर्चाओं में प्रिया—प्यारी चर्चा (सप्तस्वसा सुजुष्टा) अपने गायत्री आदि सात छन्दों में बैठने वाली* शोभन सेवनीया (सरस्वती स्तोम्या भूत्) वेदवाणी† स्तुति करने योग्य है ॥ १ ॥

तृतीय एकर्च

ऋषिः—गाथिनो विश्वामित्रः (स्तुतिवाणी‡ से प्रपूर्ण आचार्य से सम्बद्ध सर्वमित्र° उपासक)

देवता—सविता (प्रेरक परमात्मा)

---

* "स्वसा स्वेषु सीदति" [निरु० ११।३२]

† "सरस्वती वाङ्नाय" [निघ० १।११]

‡ "गाथा वाङ् नाम" [निघ० १।११]

° "विश्वामित्रः सर्वमित्रः" [निरु० २।२५]

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
२ ३ १ २ ३ १ २
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥

(देवस्य सवितुः) द्योतमान तथा प्रेरक* ब्रह्मात्मा† महान् आत्मा परमात्मा के (तत्-वरेण्यं भर्गः) उस वरणीय—वरने योग्य तेज—ज्ञानमय तेज स्वरूप को (धीमहि) हम ध्यावें—धारण करें यह आकांक्षा है (यः-नः-धियः प्रचोदयात्) जो प्रेरक परमात्मा हमारे मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार‡ चारों को अपनी ओर प्रेरित करे, हमारा मन उसका मनन करे, बुद्धि उसका विवेचन करे, चित्त उसका स्मरण करे, अहङ्कार उसका ममत्व करे—उसे अपनावे ॥ १ ॥

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा से अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—ब्रह्मणस्पतिः (वेद तथा ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमानाꣳस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।

* "सविता वै देवानां प्रसविता" [जै० २।३७१]

† "ब्रह्म वै देवः सविता" [तै० सं० ५।३।४।४]

‡ "धीः प्रज्ञा प्रज्ञानम्" [निघ० ३।९]

"धियः....प्रज्ञानानि" [निरु० ११।२७]

३ १ २ ३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ११८)

पञ्चम एकर्च

ऋषिः—शतं वैखानसः (बहुत ही अमृतानन्द का विशेष खनन—खोज करने वाला* उपासक)

देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत्।

२ ३ १ २ ० ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषञ्च नः।
३ १ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ५२२)

षष्ठ तृच

ऋषिः—आत्रेयो यजतः (अत्र—इसी जीवन में तृतीय—मोक्षधाम का ज्ञान प्राप्तकर्ता से सम्बद्ध अध्यात्मयज्ञ का याजक)

देवता—मित्रावरुणौ (प्रेरक तथा वरणकर्ता परमात्मा)

छन्द—पूर्ववत्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ता नः शक्रं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य।
१ २ ३ २ ३ १ २
महि वा क्षत्रं देवेषु ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या उत्तरार्चिक पृ० २३५)

* "विखनमाद् वैखानसः" [निरु० ३।१७]

३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ २ २
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
३ १ २ ३ १ २
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥२॥

(ऋतम्) अमृत—न मरने वाले उपासक आत्मा को (ऋतेन) अमृतरूप मोक्ष के साथ* (सपन्ता) समवेत करता हुआ† 'मित्र' संसार में कर्मभोग के लिये प्रेरक, 'वरुण' अपनी ओर अपवर्ग—मोक्षार्थ वरने वाला परमात्मा (इषिरं दक्षम्) एषणीय भोग को और समृद्ध सुख या प्रज्ञान—प्रकृष्ट ज्ञान—अनुभूत होने वाले मोक्ष को‡ (आशाते) प्राप्त कराता है (देवौ-अद्रुहा वर्धेते) दोनों धर्मों वाला परमात्मा द्रोहरहित अपितु उपासक आत्मा को बढ़ाता है—उन्नत करता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३क. २२ ३ १२ ३ १ २
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
३ २ ३ १ २
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥३॥

(वृष्टिद्यावा) आनन्दवृष्टि 'दिव्'—मोक्षधाम में करने वाला (रीत्यापा) श्रवण से° आप्ति—प्राप्ति वाला—पूर्ति करने वाला (दानुमत्याः-इषः-पती) दानवाली इच्छा के स्वामी—सुखदानेच्छा वाला (बृहन्तं गर्तम्-आशाते) महान् रथ जो स्तुति से प्राप्त होने योग्य है* उस रमणीय मोक्षधाम को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

---

* "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०]

† "षप समवाये" [स्वादि०] 'सपन्ता-सपन्तौ मित्रावरुणौ मित्रः प्रेरकः वरुणो वरयिता परमात्मा स एव ।

‡ "क्रतुंदक्षं वरुण संशिशाधीति वीर्यंप्रज्ञानं वरुण संशिशाधीति" [ऐ० १।१३]

° "रीङ् श्रवणे" [दिवादि०]

* "गृणाति स्तुतिकर्मा" [निघ० ३।५]

सप्तम तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत्।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः।
१ २ ३ २ ३ २
रोचन्ते रोचना दिवि ॥१॥

(अरुषम्) आरोचन—समन्तरूप से प्रकाशमान* (परिचरन्तम्) परिप्राप्त—व्यापक (ब्रध्नम्) महान्† परमात्मा को (तस्थुषः) उपासकजन‡ (युञ्जन्ति) युक्त होते हैं—उसके साथ योग को प्राप्त होते हैं, पुनः वे योगी उपासक (दिवि रोचना रोचन्ते) द्योतनात्मक मोक्षधाम में, अध्यात्म ज्ञानप्रकाशयुक्त हुए शोभित होते हैं॥ १॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
१ २ ३ २ ३ १ २
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२॥

(अस्य) इस इन्द्र—परमात्मा के (रथे) रमणीय स्वरूप में (विपक्षसा) विरुद्धपक्षीय (शोणा) शुभ्र (धृष्णू) धर्षणशील पापाज्ञाननाशक (काम्या) कमनीय (नृवाहसा) मुमुक्षुजनों के

* "अरुषीः "आरोचनाः" [निरु० १२।७]

† "ब्रध्नः-महन्नाम" [निघ० ३।३]

‡ "तस्थुषः-मनुष्यः" [निघ० २।३]

बहनेवाले* (हरी) स्तुति और उपासना को† (युञ्जन्ति) उपासकजन युक्त करते हैं ॥ २ ॥

३२ ३ १२३२३ १२ ३१ २
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
२३१ २
समुषद्भिरजायथाः ॥३॥

(मर्याः) हे उपासक जनो !‡ वह इन्द्र—परमात्मा (अकेतवे केतुं कृण्वन्) प्रज्ञानरहित को प्रज्ञानवान् बनाने के हेतु अपना स्वरूप ज्ञान देने के हेतु (अपेशसे पेशः) स्वदर्शनरहित को स्वदर्शन देने के हेतु (उषद्भिः समजायथाः) अज्ञान एवं जड़ता के दग्ध करने वाले ज्ञानानन्द रसमय धर्मों गुणों के साथ उपासकों के अन्दर उनकी स्तुति उपासना से दयावान् होकर साक्षात् होता है ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—उशनाः (बन्धन से छूटने—मुक्ति की कामना करने वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा°)

---

* "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]
† "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [मै० ३।१०।६]
‡ "मर्या मनुष्यनाम" [निघ० २।३]
° मन्त्रेऽर्थसाङ्गत्यात् खलु देवता-इन्द्रः, न सोमः सायणाभिमतः, न च भगवदाचार्यप्रतिपादितौ मित्रावरुणौ देवेत ।

छन्दः—त्रिष्टुप्।

३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि।
२ ३ १ २ ३१र २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१॥

(इन्द्र) हे परमात्मन्! (तुभ्यम्) तेरे लिये (अयं सोमः सुन्वे) यह उपासनारस निष्पन्न किया जाता है (तुभ्यं पवते) तेरे लिये प्रेरित है† (अस्य 'इमम्' पाहि) इसे तू पान कर—स्वीकार कर‡ (त्वं ह यम्-इन्दुं चकृषे) तू जिस आर्द्र उपासना रस को स्वीकार किया करता है (त्वं सोमं ववृषे) तू जिस उपासनारस को वरा करता है—चाहा करता है, उसे (मदाय युज्याय) उपासक को हर्षित करने के लिये और उसके सहाय के लिये 'पाहि' पान कर—स्वीकार कर ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स ईं रथो न भुरिषाड्योजि महः पुरूणि सातये वसूनि।
२ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥

(सः-ई भूरिषाट्-महः) वह यह बहुतों—असंख्यों को सहने उन पर अधिकार करने वाला महान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा (रथः न-अयोजि) रथ के समान उपासकों द्वारा आश्रयार्थ युक्त किया जाता है (पुरूणि वसूनि सातये) बहुत बसाने वाले साधनों गुणों की प्राप्ति के लिये (आत्-ईम्) अनन्तर (विश्वा नहुष्याणि

† "पवस्व-अध्येषणाकर्मा" [निघ० ३।२१]

‡ 'व्यत्ययेन अस्य' द्वितीयास्थाने षष्ठी, पाहि क्रिया योगात्।

जाता) सारे रागबन्धनों को* दग्ध करने वाले जीवन्मुक्त मनुष्यों के वैराग्ययोगाङ्ग शम, दम आदि कर्म प्रसिद्ध हुए—सम्पन्न हुए (स्वर्षाता-'स्वर्षातानि') स्वः—मोक्ष को प्राप्त कराने वाले (वने) वननीय मोक्ष में (ऊर्ध्वा नवन्ते) ऊपर—उत्कृष्ट हुए प्रेरित करते हैं† ॥ २ ॥

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥३॥

(शुष्मी) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू बलवान्‡ (मारुतं शर्धं न पवस्व) जीवन्मुक्तों० के चरित्र योगाभ्यास वैराग्य शम दम आदि बल को* प्राप्त करा* (यथा—अनभिशस्ता दिव्याविट्) जैसे अनिन्दित सर्व सद्गुण सम्पन्न दिव्य जीव-

* "णह बन्धने" [दिवादि०] नह्यति बध्नातीति नह, तदुषति दहतीति नहुषस्तस्य नहुष्यम् : "नहुषाः-मनुष्याः" [निघ० २।३]

† "नवते गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

‡ "शुष्मं बलनाम" [निघ० २।९] शुष्म शब्दस्य सम्बन्धः-इन्द्रेण सह वेदे स्पष्टः "यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः" [ऋ० २।१२।१]

० "मरुतो देवविशः" [श० २।५।१।१२]
"मरुत्वान् वा इन्द्र" [जै० १।११६]

* "शर्धः-बलम्" [निघ० २।९]

* "न" अत्र पदपूरणः सम्प्रत्यर्थो वा "ओजसा प्रतिभागं न दीधिम ....तं वयं भागमनुध्यायामोजसाबलेन" [निरु० ६।८]
"मरुद्भिर्वै वीर्येणेन्द्रोवृत्रमहन् न ऋते मरुद्भ्योऽशक्नोद् वीर्यं कर्तुम्" [मै० ४।६।८]

न्मुक्त हो जावें (आपः-न मक्षु सुमतिः-भव) तू जलों के समान शीघ्र* शोभनमति—कल्याणमति वाला सुख शान्ति देनेवाला हो (नः) हमारे लिये (सहस्राप्साः) बहुत गुण रूपों† वाला (पृतनाषाट्-न यज्ञः) हम उपासक मनुष्यों का तृप्तिकर्ता यजनीय—सङ्गमनीय हो‡ ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल को धारण करने वाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ २
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
३१ ३ १ २ ३ १ २
देवेभिर्मानुषे जने ॥१॥ ऋ० ६-१६-१.

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
२ ३१ २ ३ १ २
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥२॥ ऋ०-६-१६-२

(सः-महः) वह तू ज्ञानप्रकाशक महान् परमात्मन् ! (नः-अध्वरे) हमारे अध्यात्मयज्ञ में (मन्द्राभिः-जिह्वाभिः-यज) हर्ष-

---

* "मक्षु क्षिप्रनाम" [निघ० २।१५]

† "अप्सः-रूपनाम" [निघ० ३।७]

‡ "पृतनाः-मनुष्याः" [निघ० २।३] "षह चक्यर्थे" [दिवादि०]

"चक तृप्तौ" [भ्वादि०]

आनन्द देनेवाली स्तुतिवाणियों* के द्वारा उन्हें निमित्त बनाकर हमारे साथ सङ्गत कर† (देवान्-आवक्षि) हमें मुक्तों के प्रति समन्तरूप से लेजा (च) और (आ यक्षि) उनके साथ समन्तरूप सङ्गति करा ॥ २ ॥

२ ३१ २३ १ २ ३१ २ ३१ २
वेत्थाहि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।
१ २ ३१२
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥

(सुक्रतो वेधः) हे सुकर्मवाले भोग और अपवर्ग—मोक्ष के विधाता (देव-अग्ने) द्योतमान ज्ञानप्रकाशक परमात्मन् तू (यज्ञेषु) अध्यात्मयज्ञप्रसङ्गों में—के (अध्वनः-च-पथः-अञ्जसा वेत्थहि) विस्तृत मार्गों और चलनेयोग्य पगडण्डियों को तत्त्वतः-ठीक ठीक जानता है ही‡ अतः हम उपासकों का सहायक बन हमें चला हमारा अग्रणी हो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।
३ १ २ ३ १ २
विदथानि चोदयन् ॥१॥

---

* "जिह्वा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

† "यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" [भ्वादि०]

‡ "अञ्जसा तत्त्वशीघ्रार्थयोः" [अव्ययार्थं निबन्धनम्]

(अमर्त्यः) मरणधर्मरहित (होता) हमारे अध्यात्मयज्ञ का साधक* (देवः) द्योतमान (विदथानि चोदयन्) वे दोनों—अध्यात्म अनुभवों को† प्रेरित करता हुआ (मायया) प्रज्ञाशक्ति से (पुरस्तात्-एति) सम्मुख आता है—प्रत्यक्ष होता है ॥ १ ॥

१४८२

३ १२ २२ ३२३ १ २
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते ।
१ २ ३ २ ३ १ २
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥२॥ ऋ० ३-२६-८

(वाजी) अमृत अन्नभोग का स्वामी परमात्मा (वाजेषु) अमृत अन्नभोगों के निमित्त‡ (धीयते) ध्याया जाता है (अध्वरेषु प्रणीयते) अतः अध्यात्मयज्ञप्रसङ्गों में लक्षित किया जाता है (विप्रः-यज्ञस्य साधनः) क्योंकि वह अध्यात्मयज्ञ का विशेष पूरक साधन है ॥ २ ॥

१४८९

३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे ।
१ २ ३२३ १ २
दक्षस्य पितरं तना ॥३॥ ऋ० ३-२६-९

(वरेण्यः) अवश्य वरणीय—उपासनीय परमात्मा (धिया चक्रे) प्रज्ञानशक्ति से उपासकों के अध्यात्मयज्ञ को 'सञ्चक्रे' संस्कृत करता है—साधता है (भूतानां गर्भम्-आदधे) उपासक देवों—मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों के§ स्तवन या याचनीय मोक्ष को

* "अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारम्" [ऋ० १।१।१]
† "विदथानि वेदनानि" [निघ० ६।७]
‡ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]
§ "देवा वै भूताः" [काठ० २५।६]

समन्तरूप से धारण करता है (दत्तस्य पितरंतन 'तनय') उस: प्रज्ञान के* पिता—पालक परमात्मा को 'तनय-श्रधत्स्व'† श्रद्धापूर्वक उपासित कर ॥ ३ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—हर्यतः प्रगाथः (कमनीय प्रकृष्ट स्तुति वाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ सुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम् ।
३ १ २ ३ २
रसा दधीत वृषभम् ॥१॥ ऋ. ८.६२-१२

(सुते श्रियम्-आसिञ्चत) हे उपासको ! प्रसिद्ध प्रकाशस्वरूप परमात्मा के निमित्त श्री‡ सोम—उपासनारस सींचो—अर्पित करो (रोदस्योः श्रियम्-अभि) 'द्यावापृथिवी'° प्राण और उदान को*—श्वास और उच्छ्वास को उपासनारस प्रेरित करो—श्वास उच्छ्वास के साथ उपासना प्रवाह चले (वृषभं रसादधीत)

---

* "क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि-इति वीर्यं प्रज्ञानं वरुण संशिशाधि-इति" [तै० सं० १।२।२।२, ऐ० १।१३]

† "तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि०] णिचोऽनित्यत्वादभावः । औत्सार्गिकः शव प्रत्ययः । अकारस्य दीर्घत्वं छान्दसम् ।

‡ "श्रीर्वै सोमः" [मै० १।११।६]

° "रोदसी द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]

* "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४।३।१।२२]

सुखवर्षक परमात्मा को स्तुतिवाणी के द्वारा* अपने अन्दर धारण करो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ते जानत स्वमोक्या३ꣳसंवत्सासो न मातृभिः ।
३ १ २ ३ १ २
मिथो न सन्त जामिभिः ॥२॥

(ते स्वम्-ओक्यं संजानत) वे उपासक परमात्मा के साथ अपने समवेतव्य—सङ्गमनीय स्थान—मोक्ष को सम्यक् जानते हैं (वत्सासः न मातृभिः) जैसे बछड़े माताओं के साथ अपने अपने आश्रयणीय स्थान को जानते हैं (जामिभिः-मिथः-नसन्त) पुनः वहां मोक्ष में अतिरिक्त—अन्य मुक्तों के साथ† मिलते हैं‡ ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि ।
१ २ ३ २ ३ ३ क २ २
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥३॥

(बप्सतः स्रक्वेषु-उपकृण्वते) जो उपासक भोग करानेवाले—भोग के साधन प्राणों—इन्द्रियों को° भोगों में ही न लगाकर—भोग वस्तुओं के अन्दर परमात्मा के सर्जन गुणों* को उपयुक्त

* "रसः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]
"सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णा " [अष्टा० ७।१।३९] इत्याकारादेशः।
† "मिथः सहार्थे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्]
‡ "नसति व्याप्नोतिकर्मा नमति कर्मा वा" [निरु० ७।१७]
° "बप्सता⋯भुञ्जाने" [निरु० ९।३६]
* "सृज विसर्गे" [दिवादि० तुदादि०] ततः क्वनिप् "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" [अष्टा० ३।२।७५]

करते हैं—लगाते हैं (धरुणं दिवि) धारणा साधन* मन को अमृतधाम—मोक्ष में उपयुक्त करते हैं—लगाते हैं, तथा (इन्द्रे 'इन्द्रम्' अग्ना) स्वात्मा को† ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा में‡ उपयुक्त करते हैं लगाते हैं (नमः स्वः) उनके लोक में अन्न°भोग लाभ और मोक्षधाम में अमृत सुख होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—बृहद्दिवः (महान् मोक्षधाम लक्ष्यवाला उपासक)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)
छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ उ २ २ ३ १ २
सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥१॥

(भुवनेषु) पृथिवी आदि लोकों में§ वर्तमान (तत्-इत्-ज्येष्ठम्-आस) वह ही ज्येष्ठ ब्रह्म—ब्रह्मात्मा परमात्मा था—है (यतः) क्योंकि, वह (उग्रः) तीक्ष्ण स्वभाव वाला (त्वेषनृम्णः) ज्ञान-नृम्ण—ज्ञान बलवाला$ (सद्यः-जज्ञानः) उपासक के अन्दर

---

* "धृञ् धारणे" [भ्वादि०] ततः-उनन्-औणादिकः।
† विभक्तिव्यत्ययेन द्वितीयास्थाने सप्तमी ।
‡ "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णा" [अष्टा० ७।१।३९] इति, आकारदेशः । सूक्तम् अग्निदेवताकं, नात्र, इन्द्रोदेवता ।
° "नमः अन्ननाम" [निघ० २।७]
§ "इमे वै लोका भुवनम्" [काठ० १४।१७]
$ "त्वेषनृम्णः-ज्ञाननृम्णः" [निरु० १४।२६] "नृम्णं बलनाम" [निघ० २।९]

तुरन्त साक्षात् हुआ (शत्रून् निरिणाति) उपासकों के सतानेवाले पापों को क्षीण कर देता है* (यम्-अनु विश्वे ऊमाः-मदन्ति) जिस परमात्मा के अनुसार हो—अनुभव कर, सारे रक्षणीय उपासक हर्षित होते हैं ॥ १ ॥

१४२४

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥

ऋ० १०.१२०.२|अथर्व० ५.२.३ ... २०.१०७.५

(शवसा वावृधानः) बल से बढा चढा (भूर्योजाः) बहुत तेजस्वी इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (दासाय शत्रुः) उपक्षयकारी पाप—पापी के लिये शत्रु—शातयिता शमयिता—नामक समाप्त करने वाला बना हुआ—(भियसं दधाति) भय धारण करता है (अव्यनत्-च व्यनत्-च सस्नि) परमात्मा के आनन्द में स्नात—स्नान किए हुए या उसकी रक्षामें वेष्टित† चाहे अविशेष गतिशील सामान्य उपासक और विशेष गतिशील उपासक मुमुक्षु जीवन्मुक्त जन‡ (ते प्रभृताः) वे साधारण उपासक और विशेष उपासक (मदेषु संनवन्ते) हर्षों के निमित्त—सम्यक् स्तुति करते हैं° या हर्षों में सङ्गत हो जाते हैंऽ लीन हो जाते हैं ॥ २ ॥

---

* "निरिणाति शत्रूनिति····पाप्मानमपाहत" [ऐ० आ० १।३।४]

† "सस्नि संस्नातम्" [निरु० ५।१] "ष्णा शौचे" [अदा०] "ष्णै-ष्णावेष्टने" [भ्वादि०] आदृगमहनजनः कि किनौ लिट् च" [अष्टा० ३।२।१७१] किन् प्रत्ययः ।

‡ "अनिति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

° "णु स्तुतौ" [अदादि०]

ऽ "नवते गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
त्वे क्रतुमपिवृञ्जन्ति विश्वेद्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सुमधु मधुनाभियोधीः ॥३

(विश्वे-ऊमाः) हे परमात्मन् ! सब तेरे द्वारा रक्षण पाए हुए मुमुक्षु उपासक (क्रतुं त्वे वृञ्जन्ति) कर्म या प्रज्ञान को तेरे अन्दर लीन कर देते हैं—त्याग देते हैं—निष्काम बन जाते हैं (यत्-एते द्विः-त्रिः-अपि भवन्ति) चाहे वे एकाश्रमी—ब्रह्मचारी हों या उससे द्वितीयाश्रमी—गृहस्थ भी हो या तृतीयाश्रमी—वानप्रस्थ भी हो, क्योंकि तू (स्वादोः स्वादीयः) स्वाद वाले पदार्थ से भी अतिस्वादु—अत्यन्त स्वादु वाला है (स्वादुना संसृज) अपने स्वादुस्वरूप से संयुक्त करा (अदः-मधु) उस अपने मधुस्वरूप को (मधुना सु-अभि योधीः) मुक्त उपासक आत्मा* के साथ भली प्रकार सङ्गत कर मिलादे† ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अत्यष्टिः ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्
१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र
विष्णुना सुतं यथावशम् । स ईं ममाद महिकर्म कर्त्तवे महामुरुं

* "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० २।३।२।६]

† "युध्यति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

अथवा "यू मिश्रणे" [अदादि०] छान्दसम् रूपम् ।

२र ३ २ ३२ ३ १र २र ३ १र २र
सैन ॅ सश्चद् देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३७२)

३ २ ३१र २र ३१र २र ३ २ ३ २ ३क २र
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः

३ २उ ३ १ २ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
सासहि मृधो विचर्षणिः । दाता राधस्तुवते काम्यं वसु प्रचे-

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
तन सैन ॅ सश्चद् देवो देवं सत्यइन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥२॥

(प्रचेतन) हे प्रकृष्ट चेताने वाले इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (क्रतुना साकं जातः) प्रज्ञान*—प्रकृष्टज्ञान—स्वतः ज्ञानरूप वेद के साथ प्रसिद्ध हुआ (ओजसा साकं ववक्षिथ) आत्मीयबल के द्वारा संसार को वहन–धारण कर रहा है (वीर्यैः साकं वृद्धः) स्वपराक्रमों से वृद्ध है—महान् है (विचर्षणिः-मृधः सासहिः) तू विशेष द्रष्टा हो उपासकों के पापों—काम क्रोध आदि† प्रताडन करने वाला—दूर करने वाला (स्तुवते काम्यं राधः-वसु दाता) स्तुति करने वाले उपासक के लिये कमनीय धन और मोक्षवास को देने वाला है (एनं सत्यं देवम्-इन्द्रम्) तुझ इस सत्यस्वरूप देव ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (सः-सत्यः-इन्द्रः-देवः सश्चत्) वह सत्य—नित्य—इन्दुमान्‡ उपासनारस वाला उपासक प्राप्त करता है° ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृण-

* "क्रतुः प्रज्ञाननाम" [निघ० ३।९]
† "पाप्मा वै मृधः" [श० ६।३।३।८]
‡ "इन्दुः--इन्दुमान्" मतुब्लोपश्छान्दसः ।
° सश्चति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३
द्स्य मज्मना प्र वावृधे । अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्रचेतय
१ २ ३ २ ३ २ ३ १र १र ३ १र २र
सैनं सश्चद् देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥३॥

(अध) और (ओजसा त्विषीमान्) आत्मीय तेज से दीप्तिमान् इन्द्र—परमात्मा (युधा क्रिविम्-अभवत्) उपासक के हिंसक पाप को* अपनी सम्प्रहारक शक्ति से अभिभूत होता है—दबा देता है (रोदसी-अपृणात्) प्राण—अपानों को तृप्त करता है (मज्मना प्रवावृधे) बल से† उसे प्रवृद्ध करता है (अन्यं जठरे अधत्त) अन्य—जो उपासक नहीं उसे जन्म देने वाले संसार के के मध्य‡—जन्यक्रम के अन्दर रखता है (ईम्-प्र-अरिच्यत्) इस उपासक को जन्मक्रम संसार जठर से अतिरिक्त कर देता है—अलग कर देता है (प्रचेतय) हे उपासक तू सावधान हो (एनं सत्यं देवम्-इन्द्रम्) इस सत्यस्वरूप परमात्मदेव को (सत्यः-इन्दुः सश्चत्) नित्य, उपासनारसवान् आत्मा प्राप्त करता है ॥३॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥

—:०:—

* "क्रुन् हिंसायाम्" [भ्वादि०] ततः क्विन् निपातनात् ।
† "मज्मना बलनाम" [निघ० २।६]
‡ "जनेररष्ठ च" [उणा० ४।३८] जन-अरः, नकारस्यहकारः ।

अथ चतुर्दश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसकी ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथाविदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३७)

१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
२ ३ २ ३ १२
यत्राभि सं नवामहे ॥२॥

(बर्हिषि-अधि) हृदयाकाश में† (अरुषीः-हरयः) आरोचन‡ समस्त देह में प्रकाशमान प्राण* (आससृज्रिरे) परमात्मा की ओर से समन्तरूप से छोड़े गए हैं (यत्र-अभिसंनवामहे) जिस हृदयाकाश में हम परमात्मा की स्तुति करें—करते हैं ॥ २॥

---

† "वर्हि-अन्तरिक्षनाम" [निघ० १।३]

‡ "अरुषीः-आरोचमानाः" [निरु० १२।७]

* "प्राणो वै हरिः" [कौ० १७।१]

१२३१२३१२३२ ३२३१२
१४८१ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
१ २ ३२ ३२
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥३॥ ऋ० ८-६९-६ अथर्व २०.९२.६

(वज्रिणे-इन्द्राय) ओजस्वी* परमात्मा के लिये (गावः) उपासक की स्तुतिवाणियां† (आशिरं मधु दुदुह्र) आश्रय लेने वाले‡ उपासक अपने आत्मा को° समर्पित करता है (यत् सीम्-उपह्वरे विदत्) जो परमात्मा अपने आश्रय में§ प्राप्त करता है—ले लेता है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—नृमेधः पुरुमेधश्च (नायक बुद्धिवाला और बहुत बुद्धि-वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳ समत्सु भूषत ।
२३ १ २ ३ १ २ २३ १ २
१४८२ २८८ उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २१६)
ऋ० ८-९०-१ अथर्व २०.१०४.३.

* "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]
† "गौः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]
‡ "आशीराश्रमणात्" [निरु० ६।८]
° "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० २।३।२।१]
§ "प्र सोमादित्यो असृजत्-असृजन् सर्वत इति वा" [निरु० १।७]

२ ३ १ २३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३२
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
३ २ ३ १र २र ३ १ ३ १ २ ३२
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥

(त्वम्) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (राधसः प्रथमः-दाता-असि) धनैश्वर्य का प्रमुख दाता—दानी है (सत्यः-ईशान-कृत-असि) सच्चा समर्थ—सम्पन्न बनाने वाला है (तुविद्युम्नस्य) बहुत यशोरूप*—(महः-शवसः पुत्रस्य) महान् बल के पुत्र अर्थात् अत्यन्त बलवान् या नरक से त्राण करने वाले† के (युज्या-आवृणीमहे) योगों—सम्बन्धों को समन्तरूप से वरते हैं—चाहते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—त्र्यरुण त्रसदस्यू ऋषी (तीन अरुणाओं-ज्योतियों वाला और त्रास को क्षीण करने वाला)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा),

छन्दः—ऊर्ध्वा बृहती ।

३२ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १र २र
प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥१॥

(प्रत्नं पूर्व्यम्-उक्थ्यम् पीयूषम्) श्रेष्ठ शाश्वतिक प्रशंसनीय पान करने योग्य अमृत शान्तस्वरूप परमात्मा को (महः-गाहात्-

---

* "द्युम्नं द्योततेर्यशो वा अन्नं वा" [निरु० ५।५]

† "पुन्नाम नरकमनेकशततारं तस्मात् त्रातीति पुत्रः" [गो० १।१।२]

दिवः) महान् गाहने विलोडन करने योग्य द्योतमान हृदय कूप से (आ निरधुक्षत) समन्तरूप से साक्षात् कर लिया है उपासक ने (इन्द्रम्-अभि) आत्मा को लक्ष्य कर—(जायमानं समस्वरन्) साक्षात् होजाने के हेतु उसकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
आर्दीं केचित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
३ १र २र ३ १ २
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥२॥

(आत्-ईम्) फिर इस (आप्यम्) प्राप्तव्य परमात्मा को—(केचित्) कुछेक (वसुरुचः) रात्रि में चमकने वाले* तारे जैसे (अभ्यनूषत) स्तुत करते हैं (दिवः-न वारं सविता व्यूर्णुते) जैसे सूर्य आकाश को घेरने वाले अन्धकार को अपने प्रकाश से हटा देता है ऐसे अपने अज्ञान अन्धकार को हटा देते हैं ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
३ २ ३ ३ १ २ ३ १र २र
यूथे न निष्ठा वृषभा विराजसि ॥३॥

(अध) अनन्तर (पवमान) धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! (यद् 'यदा') जब (इमे रोदसी) इन द्यावापृथिवी—प्राण उदान† को—प्राणायाम—योगाभ्यास के प्रति (च) और (विश्वा भुवनानि) समस्त अध्यात्मयज्ञों—स्तुति प्रार्थना उपासनाओं के प्रति भी‡ (मज्मना) पावक बल से° (यूथे न निष्ठा

* "वसु रात्रिनाम" [निघ० १।७]
† "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४।३।१।२२]
‡ "यज्ञो वै भुवनम्" [श० ३।३।७।५]
° "मज्मना बलनाम" [निघ० २।९]

ऋषभः) गोसमूह में विशेष स्थित—विशेष लक्षित साण्ड के समान (विराजसि) तू विशेष प्रकाशमान होता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुक जन)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशक अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ २ ३ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   २ २
इममू षु त्वमस्माकꣳ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २६)

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १
विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
३ २ ३ १ २
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥२॥

(चित्रभानो) दर्शनीय ज्योतिवाले परमात्मन् ! तू (सिन्धोः उपाके ऊर्मौ-आ) स्यन्दनशील नदी के समीप* ऊर्मि—तरङ्ग—लहरों—नहरों के समान आनन्द ज्योतियों से विभाग करता है (दाशुषे सद्यः क्षरसि) आत्मदानी उपासक के लिये तो तुरन्त आनन्द ज्योति को झिराता है ॥ २ ॥

---

* "उपाके अन्तिकनाम" [निघ० २।१६]

१ २ ३१र २र ३ १ २
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
२ ३ २ ३ १ २
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥३॥

(नः परमेषु वाजेषु आभज) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन् ! तू हमें परम—मोक्षधाम में होने वाले अमृत अन्नभोगों में॥ समन्त रूप से भागी बना (मध्यमेषु) ध्यानयज्ञ—श्रवणयज्ञ शम दमादि यज्ञ में† समन्तरूप से भागी बना (अन्तमस्य वस्वः शिक्ष) समीप‡ अवरधन—सद्भोग को प्रदान कर° ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—काण्वोवत्सः (मेधावी का पुत्र-अत्यन्त मेधावी)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)
छन्दः—पूर्ववत् ।

३ २उ ३१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
३१उ २र
अहं सूर्य इवाजनि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १२७)

३१ ३२उ १ २ ३ १२ ३ २
अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
२उ ३ २ ३ १ ३ २
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥२॥

॥ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

† "वाजं त्वा सरिष्यन्तं"...."समार्ज्मि"...."यज्ञं त्वा यक्ष्यन्तं सम्मार्ज्मि" [श० १।४।४।१५]

‡ "अन्तमानाम्-अन्तिकहमानाम्" [निघ० २।१६]

° "शिक्षति दानकर्मा" [निघ० ३।२०]

(अहम्) मैं उपासक वक्ता (प्रत्नेन जन्मना) पूर्व जन्म से ही (गिरः) स्तुति वाणियों को (कण्ववत्-शुम्भामि) वर्तमान स्तुतिकर्ताओं के* समान बोल रहा हूं† (येन) जिससे कि (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (शुष्मम्-इत्-दधे) मेरे अन्दर पापशोषक आत्मबल‡ को धारण करावे ॥ २ ॥

१र २र ३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
१र २र ३ १ २
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥३॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ये त्वां न तुष्टुवुः) जो लोग तेरी स्तुति पूर्व जन्म में नहीं करते रहे वर्तमान में चाहे करते हों, या (ये च-ऋषयः-तुष्टुवुः) और जो ऋषि पूर्व जन्म में तेरी स्तुति करते रहे हों, वर्तमान में चाहे न करते हों यह तो तू जाने, परन्तु (सुष्टुतः-मम-इत्-वर्धस्व) मेरे द्वारा पूर्व जन्म से और वर्तमान जन्म से स्तुत किया हुआ मुझे अवश्य बढ़ा—उन्नत करना—करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—तापसोऽग्निः (तपस्वी अग्रणेता उपासक)

---

* "कण शब्दे" [भ्वादि०] ततः कन् प्रत्ययः-औणादिकः ।

† "शुम्भ भाषणे" [भ्वादि०, तुदादि०]

‡ "शुष्मं बलनाम शोषयतीतिसतः [निरु० २।२४]

देवता—विश्वेदेवाः (सर्वदेव गुणवाला परमात्मा)
छन्दः—अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

(सहस्कृत-अग्ने) ओजक्ष अध्यात्म तप से उपासित या साक्षात् करणीय ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (विश्वेभिः-अग्निभिः) समस्त तापस—तपस्वी ऋषियों† द्वारा किए गए (ब्रह्म जोषि) स्तोत्र—स्तुतिमन्त्रों को सेवन करता है (ये-देवत्रा ये-आयुषु) जो देवों में, जीवन्मुक्तों में, जीवन्मुक्तों की श्रेणी में हों, जो मनुष्यों में,‡ मनुष्य श्रेणी में हों (तेभिः) उनके समान° (नः-गिरः-महय) हमारी स्तुतिवाणियों को प्रशंसित कर—सेवन कर ॥ १ ॥

१२ २र ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २
प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः ॥२॥

(सः-अग्निः) वह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (यस्य-वाजिनः) जिस अमृत अन्नभोगभागी उपासक हैं (विश्वेभिः अग्निभिः) उन सब उपासक ऋषियों के समान (अस्मत् 'अस्मा-

---

क्ष "ओजः सहः सह ओजः" [कौ० ३।५]
† "अग्निः ऋषिः" [मै० १।६।१]
‡ "आयवः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३]
° इव लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

भिः' तनये 'तनयेभिः' तोके 'तोकेभिः') हम❀ पुत्रों पौत्रों द्वारा (प्र०) प्रार्थित हुआ† (वाजैः सम्यक् परीवृतः) अमृत अन्नभोग से भरपूर हुआ, प्रदाता बना रहे ॥ २ ॥

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
१ २ ३ १ २ ३ १२ २२
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वं) तू (अग्निभिः) अन्य तपस्वी उपासकों के समान (नः) हमारे (ब्रह्मयज्ञं च वर्धय) ज्ञान वैराग्य और श्रेष्ठतम कर्म‡ योगाभ्यास को बढ़ा (त्वम्) तू (नः) हमें (देवतातये) देवभाव होने के लिये* (रायः-दानाय चोदय) जीवन्मुक्त सम्बन्धी ऐश्वर्य देने के लिये अपना और प्रेरित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—त्र्यरुणत्रसदस्यू ऋषी (तीन ज्योतियों वाला और त्रास को क्षीण करने वाला)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—ऊर्ध्वं बृहती ।

❀ "सुपां सुलुक्" [अष्टा० ७।१।३९] सर्वत्रभिस् प्रत्ययस्य लुक् ।

† 'प्र' उपसर्गबलाद् योग्यक्रियाध्याहारः ।

‡ "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" [श० १।७।१।५]

* "सर्वदेवात् तातिल्" [अष्टा० ४।४।१४२]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
१र २र ३ क२र
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१॥

(वीर सोम) हे पाप—पापियों पर विजय पाने वाले सोम—परमात्मन्! (प्रथमाः-वृक्तबर्हिषः) प्रमुख या पूर्वकालीन त्यक्त—त्याग दी है प्रजा—सन्तति जिन्होंने ऐसे वनस्थ या सन्यासी योगी जन* (त्वं) तेरे अन्दर (महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः) महान् अमृत अन्नभोग† श्रवणीय यश‡ के लिये अपनी धारणा को धरते हैं (यः-त्वम्) वह तू (वीर्याय चोदय) ओज के लिये° प्रेरित कर ॥ १ ॥

३क २र ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥२॥

(शवसा हि-अभि ततर्दिथ) श्रवण—श्रवण चतुष्टय—श्रवण मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार से ही, सम्मुख देखते देखते ही उपासना के लिये, कूप के समान खोद देता है खोल देता है (कं चित्-अक्षितं जनपानम्-उत्सं न) क्षयरहित जनपान को (गभस्त्योः शर्याभिः-न भरमाणः) बाहुओं—हाथों कीऽ अँगुलियों* में—अंजलि में जल धारण करने—लेनेवाले के समान ॥ २ ॥

---

* "वृजीवर्जंते" [अदादि०] "वर्हिः प्रजाः" [जै० १।८६]

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

‡ "श्रवः श्रवणीयं यशः" निरु० ११।९]

° "ओजो वै वीर्यम्" [जै० २।२०९]

ऽ "गभस्ती बाहुनाम" [निघ० २।४]

* "शर्याः-अंगुलिनाम" [निघ० २।५]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥३॥

(अमृत) हे अमृत—अविनाशी सोम—परमात्मन् ! तू (मर्त्याय) मरणधर्मी—जन्म मरण में आने वाले उपासक जन के लिये (ऋतस्य कम्-अजीजनः) अमृत के* सुख को प्रसिद्ध करता है (चारुणः-ऋतस्य धर्मन्) सुन्दर—ऋत—अमृत धारण करने वाले सरोवर में (सदा-असरः) सदा विचर रहा है (वाजम्-अच्छ-सनिष्यदत्) अमृत अन्नभोग को भुगाने के अभिमुख हो बहा कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वा (विश्व संस्कृत इन्द्रिय घोड़ों को रखने में समर्थ सब में समान मनोभाव रखने वाला)।

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
ऐन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्य मधु ।
१र २र ३ २
प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३२१)

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उपो हरीणां पतिꣳ राधः पृचन्तमब्रवम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
नूनꣳ श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥२॥

---

* "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०]

(हरीणां पतिम्) परमात्मा को अपनी ओर हरने—लाने वाले उपासकों के पालक (राधः पृचन्तम्) उपासकों को राधनीय—साधनीय आनन्द से संयुक्त करते हुए इन्द्र—परमात्मा को (उपस्त्रवम्-उ) उपासित—प्रार्थित करता हूं (नूनम्) निश्चय (अश्वयस्यः-स्तुवतः-श्रुधि) इन्द्रिय घोड़ों के अधिकर्ता संयमी स्तुति करते हुए की स्तुति को सुन—स्वीकार कर ॥ २ ॥

२ ३क २ ३ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ २
न ह्यारेङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
न की राया नैवथा न भन्दना ॥३॥

(अङ्ग) हे प्रिय—इन्द्र परमात्मन्! (त्वत्-वीरतरः) उपासकों का तुझ से भिन्न उपास्यदेव अत्यन्त वीर (न हि पुरा च न जज्ञे) पूर्व कल्पों में कोई न हुआ—माना गया न इस कल्प में प्रसिद्ध है (न किः-राया) नहीं कोई ऐश्वर्यवान् धनदाता (न भन्दना) न भन्दनीय—स्तुतियोग्य† या कल्याणकर्ता‡ ॥ ३ ॥

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

३ २ १ १ २ ३ १र २र
नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥१॥

† "भन्दते-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]
‡ "भदि कल्याणे सुखे च" [भ्वादि०]

(वः) हे उपासक जनो! तुम्हारी (ओदतीनाम्-अघ्न्यानां नदं पतिम्) उन्दन करने वाली—आर्द्र बनाने वाली स्तुतिवाणियों के❀ नदनीय—प्रवचनीय स्तुति स्वामी परमात्मा की, तथा (वः) तुम्हारी (योयुवतीनां धेनूनां नदम्) परमात्मा से मिलाने वाली स्तुतिवाणियों के† नदनीय—स्तुतियोग्य स्वामी परमात्मा को (इषुध्यसि) प्रार्थित करो‡ ॥ १ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७)

१र २र ३२ ३ १ २ ३ १.२ ३ १ २

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।

१ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥

❀ "अघ्न्या-वाङ्नाम" [निघ० १।११]

† "धेनुः वाङ्नाम" [निघ० १।११]

‡ "इषुध्याति याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१९]

(देवाः) मुमुक्षु उपासक जन (अध्वरस्य होतारं प्रचेतसम्) अध्यात्म यज्ञ के आधार प्रकृष्ट चेतन—प्रसिद्ध करने वाले—(तं वह्निम्) उस वहनकर्ता परमात्मा के (अकृण्वत) साक्षात् करते हैं, जो (अग्निः) ज्ञान—प्रकाशमान परमात्मा (विधते रत्नं दधाति) उपासना करते हुए के लिये रमणीय वस्तु धारण कराता है (दाशुषे जनाय सुवीर्यम्) आत्मसमर्पी के लिये उत्तम आत्मिक बल देता है ॥ २ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

१२ ३१२३ १२ ३१ २३२
अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
२३ ३ ३१र २र ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु जातमर्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४१)

२ ३१२ ३१२३ १ २ ३२
यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
३ २३१ २ ३ २ ३/२ ३१२
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥२॥

(चर्कृत्यानि कृण्वतः-यस्मात्) सुन्दर या यथायोग्य कर्मफल रूप पुरस्कार या दण्ड प्रदान कर्मों के करते हुए जिस परमात्मा से (कृष्टयः-रेजन्त) मनुष्य† भय करते* हैं (सहस्रसाम्) बहुत

† "कृष्टयः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३]

* "रेजते-इति भयनेपनयोः" [निरु० ३।२३]

सम्भाजक (मेधसातौ) अध्यात्मयज्ञ में (त्मना) आत्मभाव से परमात्मा को (धीभिः) ध्यान धारणा समाधियों से* या स्तुतिवाणियों से† (नमस्यत) नमस्कार करो ॥ २ ॥

१२ २र ३ २३१उ ३ २ ३ १ २
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४४)

तृतीय तृच

ऋषिः—शतं वैखानसः-ऋषयः (बहुत सारे अमृत आनन्द का विशेष खनन—खोज करने वाले उपासकजन)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
३ २ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ५२२)

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
१ २ ३ २
तमीमहे महागयम् ॥२॥

(अग्निः-ऋषिः) अग्रणायक परमात्मा सर्वद्रष्टा (पवमानः)

* "धीरसि ध्यायते हि वाचेत्थं चेत्थं च [काठ० २४।३]

† "वाग्वै धीः" [का० श० ४।२८४।१३]

पवित्रकारक है (पाञ्चजन्यः) पञ्चजनों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद—वनवासी जनों का उपास्य—एवं हितकर (पुरोहितः) पुरः-हित—पूर्व से वर्तमान हितकर है (तं महा-गयम्-ईमहे) उस महान घरवाले* मोक्षरूप महान् घर वाले परमात्मा की मांग करते हैं—चाहते हैं† ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
१ २ ३१३ ३ १ २
दधद् रयिं मयि पोषम् ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञान प्रेरक परमात्मन् ! (स्वपाः) उत्तम कर्म-वाला—अबाधित कर्मवाला‡ (अस्मे वर्चः सुवीर्यं पवस्व) हमारे अन्दर तेज उत्तम बल को प्रेरित कर (मयि) मेरे में (पोषं रयिं दधत्) पोषक ज्ञान धन को धारण कराता हुआ उपास्यदेव हो॥३

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसूयवाः (अध्यात्म धन का इच्छुक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥१॥

---

* "गयः-गृहनाम" [निघ० ३।४]

† "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१९]

‡ "अपः-कर्मनाम" [निघ० २।१]

(पावक-अग्ने देव) हे शोधक परमात्मदेव ! तू (रोचिषा मन्द्रया जिह्वया) रोचमान दीप्त, हर्षित करने वाली, स्तुति वाणी के द्वारा (देवान्-आवक्षि यक्षि च) हमें देवों—मुमुक्षुजनों के प्रति आवहन कर समन्तरूप से लेजा और उनके साथ समन्त-रूप से सङ्गत कर ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
३ १ ३ ३ १ २
देवाँ आवीतये वह ॥२॥

(घृतस्नो चित्रभानो) तेज को स्रवित करने वाले† अद्भुत दीप्तिवाले परमात्मन् ! (तं त्वा स्वर्दृशम्-ईमहे) उस तुझ सुख-दर्शक को हम चाहते हैं (देववीतये देवान्-आवह) हम उपासकों को देवों मुमुक्षुओं की कमनीय मुक्ति के लिये ले जा ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
१ २ ३ १ २ ३ २
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥

(कवे-अग्ने) हे क्रान्तदर्शी परमात्मन् ! (त्वा वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तम्) तुझ कमनीय दान देने वाले—दीप्तिमान् महान् परमात्मा को (अध्वरे समीधीमहि) अध्यात्मयज्ञ में हम प्रकाशित करें—साक्षात् करें ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति प्रवृत्ति वाला)

† "ष्णु प्रस्रवणे" [अदादि०]

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

अवा नो अग्ने ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।
विश्वासु धीषु वन्द्य ॥१॥

(विश्वासु धीसु वन्द्य) समस्त प्रज्ञानों में अध्यात्मध्यानों में वन्दनीय देव (अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! तू (गायत्रस्य प्रभर्मणि) स्तुतिकर्म के* प्रकृष्ट भरण—समर्पण या अनुष्ठान में (ऊतिभिः-नः-अव) रक्षाविधियों से हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् ।
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥२॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! तू (नः) हमारे लिये (सत्रासाहं वरेण्यं रयिम्) सब को† सुगमता से सहन करनेवाले वरणीय अध्यात्म ऐश्वर्य को (विश्वासु पृत्सु) सारी संघर्ष स्थितियों में‡ (आभर) आभरित कर ॥ २ ॥

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषकम् ।
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! तू (नः) हमारे लिये (सुचेतुना) शोभन ज्ञान से युक्त (मार्डीकम्) सुख से भरे हुए

* "गायत्रं गायतेः स्तुतिकर्मणः" [निरु० १।८]

† "सर्वं वै सत्रम्" [श० ४।६।१।१५]

‡ "पृत्सु संग्रामनाम" [निघ० २।१७]

(विश्वायुपोषकम्) समस्त आयु तक पोषणप्रद रमणीय ऐश्वर्य को (जीवसे) जीवन के लये (आधेहि) आधान कर—स्थापित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय पञ्चर्च

ऋषिः—केतुः (ज्ञानी सावधान उपासक)
देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१५२६
अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
तेन जेष्म धनं धनम् ॥१॥ ऋ० १०.१५६.१

(नः-धियः) हमारी स्तुतिवाणियां* (अग्निं हिन्वन्तु) अग्रणायक परमात्मा को हमारी ओर प्रेरित करें (आजिषु) गन्तव्य —प्राप्तव्य स्थानों में† (संयत घोड़ों को जैसे प्रेरित करते हैं (तेन) उस से (धनं धनं जेष्म) धन धन—प्रत्येक धन—धारणीय‡ वस्तु को अभिभूत करें—स्वायत करें° ॥ १ ॥

१५२७
यथा गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।
तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥ ऋ० १०.१५६.२

---

* "धीरसि ध्यायते हि वाचेत्थं चेत्थं च" [काठ० ३४।३] 'वाग्वै धीः" [ऐ० आ० १।१।४]

† "अजगतिपूजनयोः" [भ्वादि०] ततः "अज्यतिभ्यां च इण्" [उणा० ४।१३१]

‡ "धावः क्युः" [उणा० २।८१]

° "जि-अभिभवे" [भ्वादि०]

स+इन—सेना—ऐश्वरता.

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! (तव यया-ऊत्या सेनया) तेरी जिस रक्षारूप बन्धनी*—रक्षाबन्धनी के द्वारा (गाः-आक-रामहे) ज्ञानवाणियों—उपदेश उक्तियों को हम अङ्गीकार करते हैं—अपनाते हैं—जीवन में ढालते हैं (तां नः-मघत्तये हिन्व) उसे हमें ऐश्वर्य देने के लिये प्रेरित कर ॥ २ ॥

१४२८ आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्।
अङ्धि त्वं वर्तया पविम् ॥३॥

ऋ० १०-१२६-२

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (स्थूरम्) स्थिर या समाश्रितमात्र† सब मात्राओं वाले—पूर्ण (पृथुम्) प्रयत्नशील उपकार में आने वाले (गोमन्तम्) इन्द्रियों का हित जिसमें हो तथा (अश्विनम्) व्यापन मन की मननशीलता जिसमें हो, ऐसे (रयिम्) आध्यात्मिक धन को (आभर) मेरे अन्दर आभरित कर (त्वम्-अङ्धि) तू मेरे हृदयावकाश को अपने स्वरूप से पूरित कर (पविवर्तय) मेरी स्तुति वाणी को‡ वर्तित—प्रति-वर्तित—प्रतिफलित कर या अपने आनन्दरथ की चक्रनेमि को मेरी ओर घुमादे ॥ ३ ॥

१४२९ अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहया दिवि।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४॥

१०-१२६-४

* "षिञ् बन्धने" [स्वादि० कुमादि०]
† "स्थूः-समाश्रितमात्रो महान् भवति" [निरु० ६।२२]
‡ "पविः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]
"पविः-स्थमेमिर्भवति" [निरु० ५।५]

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! (अजरं नक्षत्रम्) अविनाशी देवगृह—जीवन्मुक्त के घररूप (सूर्यम्) आनन्द घन को* (जनेभ्यः-ज्योतिः-दधत्) उपासकजनों के लिये ज्ञानज्योति को धारण करने के हेतु (दिवि रोहय) मोक्षधाम में आरोपित किया है—रखा है ॥ ४ ॥

१२ ३२३ १२ ३ २३ ३ २ ३ २
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्।
१ २ ३२उ ३ १ २
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (विशां केतुः-असि) उपासक प्रजाओं का प्रज्ञापक है—सावधान करने वाला है (प्रेष्ठः-श्रेष्ठः-उपस्थसत्) तू अत्यन्त प्रिय और अत्यन्त प्रशंसनीय उपस्थान—समीप स्थान—हृदय में स्थित होने वाला (स्तोत्रे बोध) स्तोता के लिये बोध दे, और (वयः-दधत्) जीवन को धारण करा ॥ ५ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—त्रिरूपः (परमात्मा को विविध प्रकार से रूपित निरूपित करने वाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत्।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम्।
३१र २र
अपां रेताᳪसि जिन्वति ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २५)

* "एष सूर्यो वै वसुः" [ऐ० ४।२०]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
1533 ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः ।
३ १ ३ २ ३ १ २
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥२॥ ऋ० ८-४४-१८

(अग्ने) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (स्वः पतिः) मोक्षसुख का स्वामी (वार्यस्य) वरणीय—(दात्रस्य) दातव्य धन का (ईशिषे) स्वामित्व कर रहा है (स्तोता तव शर्मणि स्याम्) मैं स्तुतिकर्ता उपासक तेरी शरण† में होजाऊँ—तुझे पाजाऊँ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
1534 उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
२ ३ १ २ ३ १ २
तव ज्योतीᳪंष्यर्चयः ॥३॥ ऋ० ८-४४-१७

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन् ! (तव शुचयः शुक्राः भ्राजन्ते) तेरे वीर्यबल‡ शुभ्र प्रदीप्त चमचमाते हुए गुणबल सम्मुख प्राप्त हो रहे हैं (तव ज्योतींषि-अर्चयः) और ज्ञानज्योतियां तथा आनन्द तरंगे भी हमें प्राप्त हो रही हैं ॥ ३ ॥

इति चतुर्दश अध्यायः ।

---

† "यच्छनः शर्म यच्छ शरणम्" [निरु० ६।३२]
‡ "वीर्यं वै शुचिः" [श० २।२।१।८]

अथ पञ्चदश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिशील उपासक)
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)
छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३क २२
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
२ ३ १ २ ३ २
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥१॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (जनानाम्) मनुष्यों के मध्य में (ते जामिः कः) तेरा बन्धु—स्नेही कौन है—कोई विरला उपासक जीवन्मुक्त (दाश्वध्वरः-कः) दिया है अध्यात्मयज्ञ—आत्मसमर्पी कौन है—कोई विरला मुमुक्षु है (कः-ह) तू कौन है—ऐसा जाननेवाला भी विरला ही योगी है (कस्मिन् श्रितः-असि) तू किसमें श्रित है—विराजमान है—किसी विरले ध्यानी में विराजमान है ॥ १ ॥

२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥२॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तू

(जनानां जामिः) मनुष्यों का बन्धु—स्नेही है तू महान् उदार है (मित्रः प्रियः-असि) मित्र है हितसाधक तृप्तिकर्ता है (सखिभ्यः-ईड्यः सखा) तू मित्रों के लिये स्तुति करने योग्य मित्र है—सच्चा मित्र है ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
२ ३ २ ३ १र २र
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशक परमात्मन् ! तू (नः-मित्रावरुणौ यज) हमारे प्राण अपान को* सङ्गत कर (देवान् यज) इन्द्रियों को सङ्गत कर (बृहत्-ऋतम्) तू महान् सत्य को सङ्गत कर (स्वंदमंयक्षि) अपने घर—हृदय को सङ्गत कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र उपासक)
देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३क २र ३ १र २र ३ २
ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः ।
२.३ १ २ ३ १ २
समग्निरिध्यते वृषा ॥१॥

(दर्शतः-अग्निः) दर्शनीय ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (ईडेन्यः) स्तुति करने योग्य (नमस्यः) नम्रतया प्रार्थनीय (तमांसि तिरः) अज्ञानान्धकारों को तिरस्कृत करता है (वृषा) कामनावर्षक (समिध्यते) अन्तःकरण में सम्यक् दीप्त होता है ॥ १ ॥

---

* "प्राणापानौ मित्रावरुणौ" [जै० १।१०६]

१ २ ३ १२ २२ ३१ ३ १ २ ३ १ २
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।
२ ३ १ २
तं हविष्मन्त ईडते ॥२॥

(वृषा-उ-अग्निः) अवश्य कामना-वर्षक परमात्मा (देव-वाहनः-अश्वः-न समिध्यते) देव परमात्मदेव की ओर ले जाने वाला 'न सम्प्रत्यर्थे पदपूरणे वा' हृदय में प्रकाशित किया जाता है (तं हविष्मन्तः-ईडते) उसे आत्मसमर्पण करने वाले स्तुत करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥३॥

(वृषन्-अग्ने) हे सुखवर्षक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वयं वृषणः) हम स्तुतिवर्षक उपासक (त्वा बृहत्-दीद्यतं समिधीमहे) तुझ महान् चमकते हुए को स्तुतियों से प्रदीप्त करते हैं॥३

तृतीय तृच

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विविध रूपों में निरूपण करने वाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उच्चे बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः ।
१ २ ३ १ २
अग्ने शुक्रास ईरते ॥१॥

(दीदिवः अग्ने) हे दीप्तिमान् परमात्मन् ! (ते समिधानस्य)

तुझ समिध्यमान—हृदय के अन्दर प्रकाशित—साक्षात् किए हुए को (बृहन्तः-शुक्रासः-अर्चयः) महान् शीघ्र कार्यकारी—शीघ्र सफल होने वाली अर्चनाएं—स्तुतियां (उद्गीरते) उठती रहती हैं—उठती रहें ॥ १ ॥

१४४२ उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥२॥ ऋ० ८-४४-५

(हर्यत-अग्ने) हे कमनीय* परमात्मन् ! (मम) मेरी घृताचीः) स्निग्ध स्तुतिवाणियां† तथा (जुह्वः) आत्मभावनायें‡ (त्वा) तुझे (उपयन्तु) प्राप्त हों—और (नः) हमारे (हव्या जुषस्व) हव्यों—दातव्य उपहार रूप श्रवण, मनन, निदिध्यासनों शम, दम, सदाचरण दानों को सेवन कर—स्वीकार कर ॥ २ ॥

१४४३ मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।
अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥३॥ ८-४४-६

(मन्द्रम्) हर्षकर—(होतारम्) स्वीकार करने वाले (ऋत्विजम्) ऋतु समय पर वस्तु से यजनकर्ता—उत्पादक (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रकाशवाले (विभावसुम्) विशेष दीप्तिवाले (अग्निम्) परमात्मा की (ईडे) स्तुति करता हूं (सः-उ श्रवम्) वह ही हमारी प्रार्थना को सुनता है ॥ ३ ॥

---

* "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघ० २।६]

† "वाग्वै घृताची" [ऐ० आ० १।१।४]

‡ "आत्मा वै जुहू" [मै० ४।१।१२]

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा (बृहती) ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यूत द्वितीयया ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जांपते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३२)

३ १र २र ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पाहि विश्वस्माद् रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
१र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ २
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥२॥

(विश्वस्मात्) समस्त—(रक्षसः) जिससे रक्षा की जावे उससे (अराव्णः) अनृत—असत्य के प्रशंसक असत्य मानने बोलने आचरण करने वाले* (नः) हमारी (वाजेषु प्र-अव स्म) कामादि के संघर्ष में हमारी रक्षा कर (देवतातये) देवों की प्राप्ति के लिए (नेदिष्ठम्) अत्यन्त निकट देव (त्वाम्-इत्-हि) तुझे ही हमें (आपिं वृधे नक्षामहे) उन्नति के लिये सम्बन्ध अपनाने वाला मानते हैं ॥ २ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—त्रितः-आप्त्यः (तीनों ज्योतियों से सम्पन्न आप्तजन से सम्बद्ध)

* "इन:-ईश्वरः" [निघ० २।२२]

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
चिकिद्विभाति भासा बृहता सिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

(राजन्) हे सर्वत्र राजमान प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (इनः) संसार का ईश्वर स्वामी है (अरतिः) अतः सबको प्राप्त है (रौद्रः) स्तोता* उपासक का अत्यन्त स्नेही (दक्षाय) बल समृद्धि के लिये (सुषुमान्) शोभनरूप में साक्षात् करने वाले उपासक के द्वारा† (अदर्शि) देखा जाता है—साक्षात् किया जाताहै (बृहता भासा चिकित्-हि-भाति) बडी दीप्ति से चेताने वाला ही (असिक्नीम्-अपाजन्-एति) उपासक की अन्धकारमयी स्थिति को हटाने के हेतु प्राप्त होता है ॥ १ ॥

३ १र २र ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्विभाति ॥२॥

(कृष्णाम्-एनीं यत्-वर्पसा-अभिभूत) जब परमात्मा उपासक के अन्दर की कृष्णरंगवाली पापाज्ञान स्थिति को अपने शुभ्र प्रकाशरूप‡ से अभिभूत कर लेता है—दबा देता है (बृहतः पितुः-जां योषाम्-जनयन्) महान् पालक सूर्य की अपत्य उषा के

* "रुद्रः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

† "सुषमता" तृतीयास्थाने प्रथमाव्यत्ययेन ।

‡ "वर्पः-रूपनाम" [निघ० ३।७]

समान अपनी वाक्ज्ञानज्योति* को प्रादुर्भूत करता हुआ (सूर्यस्य भानुम्-ऊर्ध्वं स्तमायत्) ज्ञानसूर्य के ज्ञानमय तेज को उपासक के ऊपर मस्तिष्क में स्तम्भित किया धारा—रखा पुनः (दिवः-अरतिः) मोक्षधाम का व्यापक स्वामी परमात्मा (वसुभिः-'वसुषु' विभाति) अपने में वसने वाले जीवन्मुक्तों उपासकों में विशेष भासित होता है ॥ २ ॥

३२ ३१२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क२र ३ २
भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
३ १२ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैराभि राममस्थात् ॥३॥

(अग्निः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (भद्रः) भन्दनीय—अर्चनीय† (भद्रया) अर्चना से—स्तुति से (सचमानः) समवेत—सङ्गत हुआ (आगात्) उपासक के अन्दर आता है (जारः) जैसे अन्धकार को जीर्ण करने वाला सूर्य (स्वसारम्-अभि पश्चात् एति) सु-असा‡ शोभन ढङ्ग से अन्धकार को फेंकनेवाली उषा को लक्ष्य कर पीछे आता है* (सुप्रकेतैः-द्युभिः) सम्यक् चेताने वाली ज्ञानदीप्तियों—(उशद्भिः-वर्णैः) कमनीय वर्णनों—ज्ञानोपदेशों के साथ (तिष्ठन्) हृदय में स्थित हुआ (रामम्-अभि-अस्थात्) रमणयोग्य उपासक आत्मा को लक्ष्य कर—उपासक आत्मा में विराजमान हो जाता है ॥३॥

---

* "योषाहि वाक्" [श० १।६।४।८]
† "भद्रे-भन्दनीये" [निरु० ११।१६]
"भन्दते अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]
‡ "स्वसा-सु-असा" [निरु० ११।३२]
* अत्र लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

द्वितीय तृच

ऋषिः—उशनाः (मोक्ष की कामना करने वाला उपासक)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—गायत्री ।

१२ ३ १२ ३१२
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।
१२ ३ १२
वराय देव मन्यवे ॥१॥

(अङ्गिरः) हे अङ्गों में आनन्दरस भरनेवाले एवं अङ्गों के प्रेरक (ऊर्जः-नपात्-अग्ने देव) आत्मबल के न गिराने वाले परमात्मदेव ! (वराय मन्यवे) वरने योग्य मनन करने योग्य ज्ञानप्रकाशस्वरूप लाभ के* लिये (कया-उपस्तुतिम्) किसी—विरली ऊंची योगपद्धति से की हुई मेरी उपासना को स्वीकार कर ॥ १ ॥

१२३ २३ १२ ३१ २
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसा यहो ।
१२ ३१२ २र
कदुवोच इदं नमः ॥२॥

(कस्य यज्ञस्य) सुखस्वरूप यजनीय—(सहसः-यहो 'यहोः') बलवान्—† सर्वत्र गतिमान् सर्वत्र प्राप्त‡ परमात्मा के लिये° (मनसा-इदं नमः) मन से यह नम्र वचन—प्रार्थना वचन (कद्-

* "मन्युर्मन्यते दीप्तिकर्मणः" [निरु० १०।२९]
† "सहः-बलनाम" [निघ० २।६] तत –मतुवर्थीयस्य लोपश्छान्दसः ।
‡ "ओहाङ्गतौ" [जुहां०]
° "सर्वत्र चतुर्थ्यर्थे षष्ठी छान्दसी ।

उ वोचे) कभी भी कहूं—बोलूं उसे वह स्वीकार करता है ॥२॥

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अधा त्वꣳ हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यꣳ सुक्षितीः ।
१ २ ३ १ २
वाजद्रविणसो गिरः ॥३॥

(अध) अनन्तर—और (त्वं हि) तू ही (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (नः-गिरः) हमारी स्तुतिवाणियों को (सुक्षितीः) शोभन भूमिवाली* (वाजद्रविणसः) अमृत अन्नभोग† धन फल वाली (करः) कर—बना ॥ ३ ॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २
अग्न आयाह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥१॥

(अग्ने-आयाहि) हे ज्ञानप्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! तू मेरे हृदय में आ (त्वा होतारम्) तुझ अध्यात्मयज्ञ के ऋत्विक् को (अग्निभिः) ब्राह्मणों के‡ समान* (वृणीमहे) हम वरते हैं

* "क्षितिः पृथिवीनाम" [निघ० १।१]

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

‡ "अग्निर्वै ब्राह्मणः" [काठ० ६।६]

* लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

(त्वां यजिष्ठम्) तुझ अत्यन्त याजक को (प्रयता हविष्मती) संयता आत्मसमर्पण वाली* स्तुति (अनक्तु) स्निग्ध करे—हमारी ओर द्रवित करे (बर्हिः-आसदे) हृदयाकाश में आ बैठने के लिये ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ १२
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२॥

(सहसः सूनो-अङ्गिरः) हे बल के उत्पादक अङ्गों के रसरूप रसयिता परमात्मन् (त्वा-अच्छा हि) तुझे लक्ष्य कर (अध्वरे) अध्यात्मयज्ञ में (स्रुचः-चरन्ति) स्तुतिवाणियां† चलती हैं—होती रहती हैं (ऊर्जः-नपातम्) अध्यात्मबल के न गिराने वाले—(घृतकेशम्) दीप्त रश्मिवाले‡ (पूर्व्यम्) शाश्वतिक—(अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (ईमहे) चाहते हैं—प्रार्थित करते हैं ॥२॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीढावृषी (स्तुति का सुदानकर्ता और स्तुति को बहुत ही सींचने वाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१॥

* "आत्मा वै हविः" [काठ० ८।५]
† "वाग्वै स्रुक्" [श० ६।३।१।८]
‡ "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८]

(शीरशोचिषम्) व्यापक ज्योतिवाले* (दर्शतम्) दर्शनीय परमात्मा को (नः-गिरः) हमारी स्तुतियां (अच्छ यन्तु) भली प्रकार प्राप्त हों (पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं) बहुत वसाने वाले और बहुत प्रशंसनीय परमात्मा को (नमसा यज्ञासः) नम्रभाव से अध्यात्मयज्ञ (अच्छ-ऊतये) अच्छी रक्षा के लिये प्राप्त हो ॥ १ ॥

३ २ ३१र २र ३ १२ ३ २ ३ १ २
अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
३ २उ ३ १ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥२॥

(सहसः सूनुम्) योगाभ्यासरूप बलसे साक्षात् होने वाले (जातवेदसम्) उत्पन्नमात्र के ज्ञाता (अग्निम्) परमात्मा को (वार्याणां दानाय) वरने योग्य पदार्थों के देने के लिये 'मन्त्र' हमारी स्तुतियां प्राप्त हों (यः-अमृतः) जो अमृत परमात्मा (द्विता-अभूत्) दो रूपों में—(मर्त्येषु-आ) मरणधर्मी जनों में—साधारण जनों में और° अमरजनों—मुमुक्षु उपासकों में (विशि) दोनों प्रकार की प्रजा में वर्तमान हैं (होता) जीवन निर्वाहक वस्तु देनेवाला है और अमरजनों मुमुक्षु उपासकों के लिये (मन्द्रतमः) अत्यन्त हर्ष—आनन्द का मोक्ष का दाता है ॥ २ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्व मित्र उपासक)

---

* "शीरम्....आशिनम्" [निरु० ४।१४]

° "एतस्मिन्नेवार्थं 'समुच्चये' देवेभ्यश्च पितृभ्य आ इत्याकारः" [निरु० १।४]

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१५५९ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
अदाभ्यः पुर एता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १२
तूर्णी रथः सदा नवः ॥१॥ ऋ० ३-११-५

(अदाभ्यः-अग्नि) अदम्भनीय—अबाध्यज्ञान प्रकाशस्वरूप परमात्मा (मानुषीणाम् विशाम्) मननशील प्रजाओं उपासकों का (पुरः-एता) अग्र गामी—अग्रणायक है (तूर्णिः-रथः) शीघ्रगामी रथ समान या उपासक के पाप को छिन्न-भिन्न करने वाला* रमणीय-रमण स्थान (सदा नवः) सदा अजर शरण या सदा स्तुतियोग्य† है ॥ १ ॥

१५६० ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि प्रयाꣳसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।
१ २ ३ १ २
क्षयं पावकशोचिषः ॥२॥ ऋ० ३-११-७

(दाश्वान्-मर्त्यः) आत्मदानी—आत्मसमर्पी उपासक (वाहसा) स्तुतिप्रापण—स्तुतिप्रवाह से‡ (प्रयांसि) अत्यन्त प्रिय भोगों को (अभि-अश्नोति) भोगता है* या प्राप्त करता है°

---

* सर्वं ह्येव पाप्मानं तरति तस्मादाह तूर्णिः [श० १।४।२।१२]

† "णु स्तुतौ" [अदादि०]

‡ "इन्द्राय वाहः कृणवावः अभिवहन् स्तुतिम्" [निरु० ४।१६]

* "अश भोजने" [क्र्यादि०] विकरणव्यत्ययेन श्लुः अथवा "अशूङ् व्याप्तौ" [स्वादि०] व्यत्ययेन परस्मैपदम् ।

° "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता"

(पावक शोचिषः-द्वयम्) पवित्रकारक ज्ञानदीप्तिमान् परमात्मा अमृत निवास को—उसके अमृतभोग को भी भोगता है या प्राप्त करता है ॥ २ ॥

३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।
१ २ ३ १ २
अग्निस्तु विश्रवस्तमः ॥३॥

(अग्निः) ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (देवानाम्) उपासक मुमुक्षुओं की (विश्वाः-अभियुजः) समस्त अभियोगी विरोधी प्रवृत्तियों को (साह्वान्) दबाने वाला (अमृक्तः क्रतुः) अमृत* प्रज्ञान प्रेरक† (तु विश्रवस्तमः) बहुत बहुत श्रवणीयतम है—अत्यधिक श्रवण मननादि करने योग्य है ॥ ३ ॥

द्वितीय द्वयृच

ऋषिः—सौभरिः (अपने अन्दर परमात्मा को धारण करने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—प्रागाथं काकुभम् ।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३ १र २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ९७)

* "मृङ्प्राणत्यागे" [तुदादि०] ततः क्तः प्रत्यय' ककारलोपाभावश्छान्दसः ।

† "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघ० ३।९] मतुबर्थप्रत्ययस्य लोपश्छान्दसः ।

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवस्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥२॥

(वृत्रतूर्ये) हे परमात्मन् ! पापनाशन में—पाप नष्ट करने के निमित्त* (मनः-भद्रं कृणुष्व) हमारे मन को पवित्र या स्तुति करने योग्य कर (येन समत्सु सासहिः) जिससे कि उनके संघर्षों में अत्यन्त सहनशील—साहसी हो जावें (भूरि शर्धताम्) बहुत प्रबल हुए पापों के (स्थिरा अव तनुहि) स्थिर जमावों को दुर्बल करदे (ते वनेम) तेरी सम्भक्ति करें (अभिष्टये) अभिवाञ्छा पूरी करने के लिए ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोतमो राहूगणः (राग आदि से रहित स्तुतिवाला अत्यन्त गतिशील परमात्मा)

देवता:—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ८७)

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
स ईधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
३ २ ३ १ २
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥२॥

* "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

(सः-अग्निः) वह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (इधानः) प्रकाशित हुआ—साक्षात् हुआ* (वसुः) वसानेवाला (कविः) क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (गिरा-ईडेन्यः) स्तुतिवाणी से स्तुति करने योग्य है, वह ऐसा तू परमात्मन् ! (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (रेवत्) मोक्षैश्वर्यवाले (पुर्वणीकम्) बहुत बहुत काल वाले जीवन† मोक्ष के जीवन को (दीदिहि) प्रज्वलित कर‡ प्रसिद्ध कर ॥ २ ॥

३ १ २ ३१२ ३ १ २३१२ २२
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३॥

(राजन्-तिग्मजम्भ-अग्ने) हे सर्वत्र राजमान पापियों के लिए तीक्ष्णनाशन शक्तिवाले परमात्मन् (सः) वह तू (त्मना-'आत्मनः') उपासक आत्मा के (रक्षसः) हानिकर पापों को (उतवस्तो) दिन में भी (उत-उषसः) रात्रि में भी* (क्षपः) तिरस्कृत कर (प्रति दह) दग्ध कर ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोपवनः सप्तवध्रिर्वा (इन्द्रियों को पवित्र करने रखने वाला या पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि इन सात को बान्धने नियन्त्रण में रखने वाला उपासक)

---

* 'इधानः-इन्धानः' नकारलोपश्छान्दसः ।

† "अन प्राणने" [अदादि०] ततः-ईकन् प्रत्ययः "अभि तृषिभ्यां किच्च" [उणा० ४।१७]

‡ "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

* "रक्षिर्वा क्षपा" [निघ० १।७]

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ७५)

छन्दः—गायत्री ।

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
३ १ २ ३ १ २
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥२॥

(हविष्मन्तः-जनासः) पवित्र आत्मरूप भेंट वाले† उपासक जन (सर्पिः-आसुतिं मित्रं न) प्राप्त होने वाले❀ साक्षात् मित्र समान (यम्) जिस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (प्रशस्तिभिः-प्रशंसन्ति) प्रशंसाओं से—स्तुतियों से प्रशंसित करते हैं वह सिद्ध उपास्य हैं ॥ २ ॥

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।
३ १र २र ३ २
हव्यान्यैरयद् दिवि ॥३॥

(यः) जो परमात्मा (देवतावि-उद्यता हव्यानि) 'देवतातौ'

† "आत्मा वै हविः" [काठ० ८।५]

❀ "सर्पति गतिकर्मा" [निघं० २।१४]

अध्यात्मयज्ञ में* उत्तम सम्पन्न आत्माओं को† (दिवि-ऐरयत्) मोक्षधाम में प्रेरित करता है—भेजता है (पन्यांसं जातवेदसम्) उस अत्यन्त स्तुति करने योग्य उत्पन्नमात्र के ज्ञाता परमात्मा को प्रशंसित करते हैं वह उपास्य है ॥ ३ ॥

द्वितीयं तृच

ऋषिः—बार्हस्पत्यो भरद्वाजो वीतहव्यो वा (ऊंचे आचार्य से सम्बद्ध अर्चनबल को धारण करने वाला या गृह-यज्ञ से निवृत उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
समिद्धमग्निँ समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विप्रँ होतारं पुरुवारमद्रुहं कविँ सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥१॥

(गिरा समिधा) स्तुतिरूप समित्-'समिधा' के द्वारा (समिद्धम्) प्रकाशमान (अध्वरे) अध्यात्मयज्ञ में (शुचिम्) दोष-शोधक (ध्रुवम्-अग्निम्) नित्य परमात्मा को (पुरः) प्रथम (गृणे) स्तुत करूं—स्तुति में लाऊं (विप्रं होतारम्) विशेष कामनापूरक दाता (पुरुवारम्) बहुत वरणीय (कविम्) क्रान्तदर्शी (जात-वेदसम्) उत्पन्नमात्र के ज्ञाता परमात्मा को (सुम्नैः-ईमहे) साधु भावों से‡ मांगते हैं—चाहते हैं ॥ १ ॥

---

* "देवताति 'देवतातौ' सुपां सुलुक्" [अष्टा० ७।१।३९] ङि विभक्ते लुंक् ।

† "आत्मा वै हविः" [काठ० ८।५]

‡ 'सुम्ने मा धत्तमिति'''''साधौ मा धत्तमित्येवैतदाह" [श० १।८।३।७]

१४६८

२ ३१२ ३१२३१२ ३१२ २१र २र
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
३१२३१२ ३ १२ ३२३२३१२३१२
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥२॥

ऋ० ६.१५.८

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वां दूतं हव्यवाहम्) तुझ दोषनिवारक* दातव्य स्तुतिसमूह† को वहने वाले—प्राप्त करने वाले (पायुम्-अमृतम्-ईड्यम्) रक्षक अमर करने वाले स्तुतियोग्य परमात्मा को (युगे युगे दधिरे) ध्यान के प्रत्येक अवसर पर उपासक धारण करते हैं (देवासः-च मर्तासः-च) देव—मुमुक्षु उपासक भी और साधारण जन भी (जागृविं विभुं विश्पतिम्) स्वयं जागरूक—सदा सावधान और उपासकों को जागरूक करने वाले—सावधान करने वाले व्यापक ज्येष्ठ स्वामी‡ परमात्मा को (नमसा निषेदिरे) नमस्कार नम्र प्रार्थना द्वारा अपने अन्दर बिठा लेते हैं ॥ २ ॥

१४६९

३१२ ३२३ १२३२ ३२३२३ १२३ १२
विभूषन्नग्न उभयाँ अनुव्रता दूतो देवानाꣳ रजसी समीयसे।
१२३१ २३१२ ३१र २र ३१२ ३१२
यत्ते धीतिꣳ सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥३॥

ऋ० ६.१५.९

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (उभयान्) दोनों जीवन्मुक्तों तथा साधारण उपासकजनों को (व्रता-'व्रतानि' अनु) कर्मों के* अनुरूप (विभूषन् 'विभूषयन्') त्रिविधरूप से पुर-

---

* "दूतो····वारयतेर्वा" [निरु० ५।१]

† "जुहोति दानकर्मा" [निरु० १०।१०]
"हुदानादनयोः" [जुहो०]

‡ "ज्येष्ठो विश्पतिः" [तै० ऐ० २।३।१।३]

* "व्रतं कर्मनाम" [निघ० २।१]

स्कृत करता है। परन्तु (देवानां दूतः) मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों का प्रेरक—मोक्ष में प्रेरित करने वाला है (रजसी समीयसे) उन्हें तू दोनों दिनों* में या दोनों लोकों में† प्राप्त रहता है (यत् ते) तेरी (धीतिं सुमतिम्-आवृणीमहे) धारणा ध्यान क्रिया को कल्याणकारी मति—अर्चना को हम अपनाते हैं (अध) अनन्तर—तव (नः) हमारे लिये तू (त्रिवरूथः शिवः-भव स्म) तृतीय‡ घर° मोक्षधाम वाला कल्याणस्वरूप हो—होता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्निप्रज्वलनवेत्ताओं की परम्परा में प्रयोगकर्ता उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
उप त्वा जामयो गिरो देदिशती र्हविष्कृतः ।
३ १र २र
वायोरनीके अस्थिरन् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३)

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र
यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दितम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २
आपश्चित्रिदधा पदम् ॥२॥

* "अहनी रजसी उच्येते" [निरु० ४।१६]

† "लोकारजांसि" [निरु० ४।१६]

"अहश्च कृष्णमतरजुनं च" [ऋ० ६।६।१]

"अहश्च कृष्णं रात्रिः शुक्ल चाहरर्जुनं विवस्से" [निरु० २०।१]

‡ "त्रिनाके त्रिदिवे" [ऋ० ६।११३।६] यथा तृतीय नाके ।

° "वरूथं गृहनाम" [निघ० ३।५]

(यस्य) जिस अग्नि—ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (त्रिधातु—अवृतम्—असन्दितं पदम्) तीन धारणाओं—स्तुति प्रार्थना उपासनाओं वाला या श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा अवृत—प्रत्यक्ष—साक्षात् 'असन्दित' सर्वथा अविचल* एकरस पद—स्वरूप (बर्हिः-तस्थौ) हृदय आकाश में स्थित है उसे (आपः-चित्) आप्तजन† ऊँचे उपासक‡ (निदधा) अपने अन्दर धारण करते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
३ १र १र ३ २
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥३॥

(मीढुषः-देवस्य) सुख सिंचने वाले परमात्मदेव का (पदम्) प्रापणीय स्वरूप (अनाधृष्टाभिः-ऊतिभिः) अबाध्य रक्षाओं से सुरक्षित है (उपदृक्-भद्रा) दर्शनानुभूति कल्याणकारी (सूर्यः-इव) जैसे सूर्य की आभा कल्याणकारी है ॥ ३ ॥

इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥

—:०:—

* "दीयति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

† "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

‡ "चित् पूजायाम् आचार्यश्चिदिदं ब्रूयादिति पूजायाम्" [निरु० १।४]

अथ षोडश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम द्वयृच

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा से अतन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २०५)

३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (अस्य सुतस्य विष्णवि मदे इत्) उपासक द्वारा प्रस्तुत किए इस पूर्वपान निष्पन्न, भारी उपासनारस के व्यापने वाले हर्ष में—हर्ष के निमित्त कृपालु होजाने पर ही (वृषणं शवः-वावृधे) उपासक के सुखवर्षण योग्य बल को* बढ़ाता है, अतः (अद्य-आयवः) आज—अब उपासकजन†

* "शवः बलनाम" [निघ० २।९]

† "आयवः मनुष्यनाम" [निघ० २।३]

(पूर्वथा) पूर्व—पहिले उपासकों के समान उनकी परम्परा में (अस्य) इस इन्द्र—परमात्मा की (महिमानम्) महिमा की (अनुष्टुवन्ति) परम्परागत वैसी ही स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—विश्वामित्र (सर्वमित्र उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥१॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वाम्) तुझ दोनों रूपों वाले को (उक्थिनः) स्तुतिवाणी वाले* (नीथाविदः) अध्यात्मदृष्टि वेत्ता† (जरितारः) स्तोता उपासकजन‡ (प्र-अर्चन्ति) प्रकृष्ट अर्चित किया करते हैं, (इषे-आवृणे) अपनी कामनापूर्ति के लिये समन्तरूप से तुझे वरण करता हूं॥१॥

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
३ १२ २२३ १ २
साकमेकेन कर्मणा ॥२॥

---

* "वागुक्थम्" [ष० १।५] तद्वन्तः ।

† "हनिकुशिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्" [उणा० २।२] नीयते येन स नीथ नयनम् [दयानन्दः]

‡ "जरिता स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (दासपत्नीः-नवतिं-'नवतीः' पुरः) उपक्षय करने वाले काम आदि को पालने वाली—उभारने वाली गतिशील* मनोवृत्तियों† को (एकेन कर्मणा साकं-अधूनुतम्) एक कर्म—साक्षात् दर्शन के साथ ही कम्पाता—नष्ट कर देता है॥ २॥

१ २ ३ १२३१३ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी अपसस्परयुप प्रयन्ति धीतयः।
३१ २ ३ २ १ २
ऋतस्य पथ्या३ऽअनु॥३॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् (अपसः-परि) तेरे दर्शन कर्म को अधिकृत कर—लक्ष्य कर (धीतयः) प्रज्ञाएँ—अर्थात् स्तुतियां‡ (ऋतस्य पथ्याः-अनु) अध्यात्मयज्ञ के मार्गों के* अनुसार (उप प्रयन्ति) तेरी ओर या तुझे प्राप्त होती हैं॥ ३॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वाᳲं सधस्थानि प्रयाᳲंसि च।
३ २३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्यं॰ हितम्॥४॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्!

* "नवते गतिकर्मा" [निघ० २।१४]
† "मन एव पुरः" [श० १०।३।५।७]
‡ "पञ्चम्यः-परावध्यर्थे" [अष्टा० ८।३।५१]
* "ऋतस्य धीतिः....ऋतस्य प्रज्ञाः" [निरु० १०।४१]
○ "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे ..." [अष्टा० ७।१।३९] इति पथिन् शब्दनत्-उभा प्रत्ययः।

(वाम्) तेरे (तविषाणि) महान्※—महत्त्ववाले—महत्त्वपूर्ण (सधस्थानि) सहस्थान—सहयोग स्थान (प्रयांसि) अत्यन्त प्रिय मोक्ष सुख है (युवोः 'युवयोः') तेरे अन्दर (अप्तूर्य-हितम्) तुझे प्राप्त कर श्रेयान् होजाना† मुक्त होजाना या आप्तगतिपाना‡ निहित है ॥ ४ ।

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानतेज से जाज्वल्यमान तेजस्वी उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २०३)

३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ ३ ३ २ ३ १र २र
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥२॥

(देव) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मदेव ! तू उपासकों के (अश्वस्य) पौरः) व्यापनशील मनोरूप पुर्—पुरी* का वासी—स्वामी है

※ "तविषः-महन्नाम" [निघ० ३।३] "तविषेभिः-महद्भिः" [निरु० २।२४]

† अप्तुरमिति "आप्त्वा श्रेयांसम्" [जै० १।६०]

‡ "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०] "ततः-तूरीगत्याम्" [दिवादि०]

* "मन एव पुरः" [श० १०।३।५।७]

(गवां पुरस्कृत-असि) इन्द्रियों का पुरस्कर्ता—सदुपयोगदाता है (हिरण्ययः-उत्सः) अमृत* अमृत भरा कूँवा है† (दानं न किः-हि परि मर्धिषत्) तेरे दान को कोई नहीं नष्ट कर सकता या परिहृत नहीं कर सकता‡ (त्वे यत्-यत्-यामि) तेरे में तेरे पास जो जो दान देने योग्य है मैं उपासक मांगता हूं* (तत्-आभर) उसे आभरित कर—समन्तरूप से प्रदान कर ॥ २ ॥

चतुर्थ द्व्यृच

ऋषिदेवते—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

त्वꣳ ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद् वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९१)

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मꣳहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥२॥

(त्वम्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (दानाय) आत्मदान-

* "अमृतं वै हिरण्यम्" [काठ० ११।४]

† "उत्सः कूपनाम" [निघ० ३।२३]

‡ "मर्दति वधकर्मा" [निघ० २।१९] दकारस्य धकारश्छान्दसः, अथवा मृधवधार्थे छान्दसो धातुर्यस्य "मृधः संग्रामनाम" [निघ० २।१७]

* "यामि याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१९]

आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये॰ (शतानि) सैंकड़ों (सहस्राणि) सहस्रों (च) अपितु (यूथः 'यूथानि') सब—सारे† (पुरू 'पुरूणि') कामना पूर्तियों को‡ (मंहसे) देता है (पुरन्दरम्) बन्धन पुर–शरीर को अपने दयादर्शन से दीर्ण विदीर्ण–छिन्न-भिन्न करने वाले—(इन्द्रम्) तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (विप्रवचसः) विशेष प्रकृष्ट स्तुतिवचन जिनका है वे (गायन्तः) गुणगान करते हुए हम उपासक (अवसे) आत्मतृप्ति के लिये° (आचक्रम्) अङ्गीकार करें—अपनावें या स्मरण करें* ॥ २ ॥

पञ्चम द्वयृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने वाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
यो विश्वादयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
मघोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमायन्त्वग्नये ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८)

छन्दः—बृहती ।

॰ "यो ददाति सोऽर्यमा दानमर्यमा" [मै० २।३।६]

† "यूथस्य माता सर्वस्य माता" [निरु० ११।४६]

‡ "पॄ पालनपूरणयोः" [जुहो०] ततः कुः प्रत्ययः [उणा० १।२३]

° "अव रक्षणगति कान्तिप्रीतितृप्ति····" [भ्वादि०]

* "आ वाक्यस्मरणयोः" [अव्ययार्थं निबन्धनम्]

१ ३ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न गीर्भी रथ्यꣳ सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
३ २ ३ १ २ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥२॥

(विश्पते दस्म) हे हम, उपासक प्रजाओं के पालक, एवं दर्शनीय* (रथ्यम्-अश्वं व) रथवहन योग्य समर्थ घोड़े के समान तुझ संसारवाहक को (गीर्भिः) स्तुतियों द्वारा (देवयवः सुदानवः) तुझ देव को चाहने वाले शोभनदान—आत्मदान—आत्मसमर्पण करने वाले उपासक (मर्मृज्यन्ते) भलीभांति अलंकृत पूजित या प्राप्त किया करते हैं† (उभये तोके तनये) दोनों रूप पुत्र और पौत्र—पुरातन और नवीन उपासक के अन्दर (मघोनां राधः पर्षि) ज्ञानधनवाले अध्यात्म धनवाले उपासकों का जो धन हुआ करता है उसे पूरित करता‡ भरता है ॥ २ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम एकर्च

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—वरुणः (वरनेयोग्य तथा वरने वाला परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

---

* "दस दर्शने" [चुरादि०] ततः 'मन् प्रत्ययः' [उणा० १।१४५]

† "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

‡ "पॄ पालनपूरणयोः" [जुहा० क्रमादि०] विकरणस्य लुक् छान्दसः ।

३ १ २ ३ १२ ३ १ २
1585 इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
१ २ ३ १२ २२
त्वामवस्युराचके ॥१॥ ऋ— 1-25-19

(वरुण) हे वरने योग्य परमात्मन्! (मे) मेरे (इमं हवम्) इस आमन्त्रण या प्रार्थना को (श्रुधि) सुन—स्वीकार कर (च) और (अद्य मृडय) आज—तुरन्त इसी जीवन में मुझे सुखी कर (अवस्युः) रक्षा चाहने वाला मै (त्वाम्-आचके) तुझे चाहता हूँ* तेरी प्राप्ति एवं दर्शन की कामना करता हूं ॥१॥

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—सुकक्षः (उत्तम अध्यात्मकक्षा वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत्।

२ ३ १ २ ३ १२ २
1586 कया त्वं न ऊत्याभि प्रमन्दसे वृषन्।
१ २ ३ २ ३ १ २
कया स्तोतृभ्य आभर ॥१॥ ऋ— 8-93-19

(वृषन्) हे सुखवर्षक परमात्मन्! (त्वम्) तू (कया-ऊत्या) किसी भी रक्षा विधि से (नः-अभिप्रमन्दसे) हमें प्राप्त होकर आनन्दित करता है (कया स्तोतृभ्यः-आभर) किसी भी कृपा से स्तोताओं में अपने दर्शन को आभरित करता है ॥ १ ॥

* "आचके कान्तिकर्मा" [निघ० २।६]

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा पवित्रवृत्ति से अतन-गमन—प्रवेश करने वाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क १२ ३२
इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र॑ँ समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २००)

१ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥२॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (रोदसी) द्यावापृथिवीमय जगत्❀ को (मह्ना) अपनी महिमा—महती शक्ति से (पप्रथत्) प्रथित करता है—विविधरूप से फैलाता है (इन्द्रः-शवः सूर्यम्-अरोचयत्) परमात्मा अपने बल से† सूर्य को चमकाता है (इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे) परमात्मा के अन्दर ही उसके शासन में सब लोक लोकान्तर नियमित गति करते हैं (इन्द्रे स्वानासः-इन्दवः) परमात्मा के अन्दर प्रथम उत्पन्न होते हुए सूक्ष्मभूत या परमाणु प्रकट हुए नियमित रहते हैं अथवा उपासनारस वाले‡ मुक्त आत्माएं वर्तमान रहते हैं ॥ २ ॥

❀ "रोदसी द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]

† "शवः-बलनाम" [निघ० २।६] लुक्छान्दसः ।

‡ मतुब्लोपश्छान्दसः ।

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—विश्वकर्मा भौवनः (भुवन–संसार में जन्मा हुआ सब अध्यात्मकर्म करने में समर्थ उपासक)

देवता—विश्वकर्मा (विश्व–जगत् जिसका कर्म है जगत् का रचयिता–जीवात्माओं का कर्मफलदाता परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १र २र
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वाꣳ३स्वा हि ते।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥१॥

(विश्वकर्मन्) हे विश्व के कर्ता—रचयिता परमात्मन्! (हविषा वावृधानः) मुझ उपासक आत्मा के समर्पण से* बढ़ता हुआ या बढ़ने के हेतु (स्वयं तन्वं यजस्व) स्वयं अपने में आत्मा को सङ्गत कर (स्वा हि ते) यह आत्मा अपनी ही तेरी तनु देह है† (अन्ये जनासः) अन्य जन जो तेरे प्रति अपना समर्पण नहीं करते वे (अभितः-मुह्यन्तु) प्रलय में वे नितान्त मुग्ध हो जाते हैं (इह-अस्माकं मघवा सूरिः-अस्तु) इस स्थिति में हम उपासकों का प्रेरक‡ परमात्मा ही होता है॥ १ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अनानतः पारुच्छेपिः (पापों में न झुकनेवाला स्पर्शज्ञान में अत्यन्त समर्थ)

---

* "आत्मा वै हविः" [काठ० ८।५]

† "आत्मनि तिष्ठन् यस्य आत्मा शरीरम्" [श० १४।३०]

‡ "सुमखस्य सूरिः-सुमहतो बलस्येरयिता" [निरु० १२।३]

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—अत्यष्टिः ।

३ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः
२ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २
सूरो न सयुग्वभिः । धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८०)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३
प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो
१ २ ३ १र २र १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
दैव्यो दर्शतो रथः । अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥२॥

(चेकितत् प्राचीं प्रदिशम्-अनुयाति) धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक को चेताता हुआ उसके सामने की दिशा में अनुगत होता है—उसे सीधा साक्षात् होता है (रश्मिभिः-संयतते) अपनी ज्ञानज्योतियों के द्वारा उपासक में सङ्गत होता है—उससे मिलता है✻ वह (दर्शतः-रथः) दर्शनीय अनुभवनीय रसरूप† (दैव्यः दर्शतः-रथः) वह लौकिक रस नहीं किन्तु दैव्य—देवोंमुक्तों का अलौकिक अनुभवनीय रस है (पौंस्या-उक्थानि-इन्द्रम्-अग्मन्) उपासक के बल प्रबल स्तुतिवचन उस ऐश्वर्यवान् सोम—शान्त परमात्मा के प्रति पहुँचते हैं

✻ "यतते गतिकर्मा" [निघं० २।१४]

† "तं वा एतं रसं सन्तं रथ[illegible]" [गो० १।२।२१]

(जैत्राय हर्षयन्) काम आदि पर विजय पाने के लिये* उपासक को हर्षित करता हुआ (वज्रः-च) और वज्रवान् ओजस्वी† (यद्-भवथः) और उपासक दोनों मिले हुए होजाते हैं (अनपच्युता) पृथक् न होने वाले (समत्सु-अनपच्युता) कामादि से संघर्षों में सफल होते हैं ॥ २ ॥

१५०३

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
त्वँ ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे। परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
धीतयः। त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥३॥

(त्वं ह) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू निश्चय‡ (पणीनाम्) अर्चना—स्तुति करने वालों के° योग्य दातव्य (त्यत्-वसु) उस अध्यात्म धन को (विदः 'अविदः') प्राप्त कराता है (स्वे दमे मातृभिः-आ सम्मर्जयति) उसके अपने हृदय स्थान में प्राप्त हो अध्यात्म जीवन निर्माण करने वाली* आनन्द धाराओं द्वारा अलङ्कृत करता है* (ऋतस्य धीतिभिः-दमे) अध्यात्मयज्ञ की प्रज्ञाओं से§ उनके हृदयगृह में (यत्र) जहां

---

* "जि जये" [भ्वादि०] ततः अण् बाहुलकादौणादिकः ।

† "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]

मतुब्लोपश्छान्दसः ।

‡ "ह निश्चये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्]

° "पणते अर्चतिकर्मा [निघं० ३।१४] "पण् स्तुतौ" [भ्वादिः]

* "मातरो निर्मात्र्यः" [निरु० १२।७]

* "मृजू शौचालङ्करणयोः" [चुरादि०]

§ "धीतिः प्रज्ञा" [निरु० १०।४१]

(धीतयः) प्रज्ञाएं (परावतः-न) उपासकों से प्रेरणा प्राप्त की हुईं‡ (सामारणन्ति) सन्तोष-सान्त्वना को† गाती हैं‡ (अरुषीभिः-त्रिधातुभिः) प्रसिद्ध हुई तीन धारणा, ध्यान, समाधियों द्वारा° (आरोचमानः-वयः-दधे) साक्षात् हुआ परमात्मा अध्यात्म अवस्था को धारण करता है (वयः-दधे) हां अध्यात्मजीवन—मुक्तजीवन धारण कराता है ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम एकर्च

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को अपने लिये धारण करने वाला उपासक)
देवता—पूषा (पोषणकर्ता परमात्मा)
छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
३ १ २ ३ १ २
नृवत् कृणुह्यूतये ॥१॥

(उत नः-ऊतये) हे पोषणकर्ता परमात्मा ! तू ही हम उपासकों की तृप्ति* शान्ति के लिये (नृवत्) जीवन्मुक्तों जैसीऽ

---

‡ "परावतः प्रेरितवतः" [निरु० ११।४८]

† "अरुषी-आरोचनाः" [निघ० १२।७]

‡ "साम सान्त्वप्रयोगे" [चुरादि०]

° "रण शब्दे" [भ्वादि०]

* "अव रक्षण गतिकान्ति तृप्ति·······[भ्वादि०] अव धातोः त्रिता प्रत्ययो निमात्यते तृप्तिरर्थश्चेष्येता ।

ऽ "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९]

(गोषणिम्) स्तुतिवाणी की सम्भाजिका—परमात्मा की स्तुति कराने वाली (अश्वसाम्) परमात्मा में व्यापनशील मन की सम्भाजिका—(उत वाजसाम्) और मोक्षामृत अन्नभोग की सम्भाजिका—(धियं कृणुहि) प्रज्ञा※ प्रकृष्ट ज्ञानदृष्टि बनादे—प्रदान कर ॥ १ ॥

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में विशेष गतिशील उपासक)

देवता—मरुतः (वासनाओं को मार देने वाला परमात्मा)

छन्द—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
३ १२ २२ ३ १ २
विदा कामस्य वेनतः ॥१॥

(सत्यशवसः-नरः) हे सत्यबलवाले नायक उन्नत पथ पर ले जाने वाले वासनाओं को मारने वाले परमात्मन् !† तू (शशमानस्य) शंसमान—प्रशंसा करने वाले—स्तुति करने वाले‡ के (वा) और° (स्वेदस्य) तुझ से स्नेह करने वाले*—अनुरक्त श्रद्धावान् के (वेनतः) तेरे दर्शन की कामना करने वाले उपा-

---

※ "धीः प्रज्ञाननाम" [निघ० ३।६]

† बहुवचनं पूजार्थम् ।

‡ "शशमानः शंसमानः" [निरु० ६।८] "शंसुस्तुतौ" [भ्वादि०]
वाच्छीलिके चानशि शशभावः ।

° "वा अथापि समुच्चयार्थे" [निरु० १।५]

* "ष्विदा स्नेहने" [भ्वादि०]

सकक्ष के (कामस्य 'कामम्' विद) काम—कमनीय स्वदर्शन एवं मोक्षानन्द को प्राप्त करा ॥ १ ॥

तृतीय एकर्च

ऋषिः—ऋजिश्वाः (ऋजुगामी उपासक)

देवता—विश्वेदेवाः (समस्त दिव्य गुण वाला परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
३ १ २
सुमृडीका भवन्तु नः ॥१॥

(ये) जो (अमृतस्य सूनवः) अमृत सुख को उत्पन्न करने वाला परमात्मा है‡ (नः-गिरः) हम उपासकों की स्तुतियों को (उप शृण्वन्तु) समीप से सुने (नः) हमारा (सुमृडीकाः-भवन्तु) आ सुखकारक हो ॥ १ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)

देवता—द्यावापृथिव्यौ° (प्रकाशस्वरूप और आधार परमात्मा)

क्ष "वेनति कान्तिकर्मा" [निघ० २।६]

† द्वितीया स्थाने षष्ठी व्यत्ययेन ।

‡ "बहुवचनं पूर्ववदादरार्थम्" ।

° "द्यावापृथिवी हि प्रजापतिः" [श० ५।१।५।२६] "द्यौर्मे पिता.... माता पृथिवी महीयम्" [ऋग्वेद] 'तृतीये मन्त्रे मही पाठाद गम्यते द्यावापृथिव्यौदेवते" मही द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
२ ३ २ ३ १ २
शुची उप प्रशस्तये ॥१॥

(द्यवी शुची वाम्-अभि) हे द्योतमान— अध्यात्मदृष्टि में प्रकाशमान और पवित्र प्रजापति—पिता और माता परमात्मन् ! तुझे लक्ष्य कर (उपस्तुतिं प्र भरामहे) समीपी स्तुति समर्पित करते हैं (प्रशस्तये-उप) गुणगान करने के लिये पास जाते हैं॥१॥

३ २ ३क २र ३२उ ३ १ २
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
३ १ २ ३ २ ३ १
ऊह्याथे सनादृतम् ॥२॥

(तन्वा मिथः पुनाने) हे परमात्मन् ! तू संसार का प्रकाशक और धारक साथ ही (स्वेन दक्षेण राजथः) अपने बलसे स्वामित्व करता है (सनात्-ऋतम्-ऊह्याथे) सदा से ब्राह्मण° उपासक जन को मोक्ष की ओर पहुंचाता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १२ ३ २
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
१ २ ३ १र २र
परियज्ञं निषेदथुः ॥३॥

(मही) हे प्रकाशमान और आधाररूप परमात्मन् ! तू मित्रस्य साधथः) स्नेही उपासक का अभीष्ट साधता है (ऋतं तरन्ती पिप्रती) ब्राह्मण उपासक को संसार सागर से तराता है और

° "ब्राह्मणः-ऋतम्" [मै० ५।८।७]

पालन करता है (यज्ञं परिनिषेदथुः) सङ्गतिकर्ता उपासक को परिप्राप्त होता है ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
२ ३ १ २
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १४८)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
१ २ ३ १ २
विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥

(राधानां पते) हे सिद्धियों के स्वामिन् ! ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (वीर) विरोधी शक्तियों पर पराक्रम करने वाले (गिर्वाहः) स्तुतियों द्वारा उपासक को वहन करने वाले (यस्य ते स्तोत्रम्) जिस तेरा स्तुति वचन हम करते हैं, हमारे लिये (विभूतिः-सूनृता-अस्तु) तेरी विभूति—वैभवमय सत्ता कल्याणकारी हो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ २
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो ।
२ ३ १ २
समन्येषु ब्रवावहै ॥३॥

(शतक्रतो) हे बहुत प्रज्ञान कर्मवाले परमात्मन् ! तू (नः-ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (अस्मिन्-वाजे) इस काम क्रोधादि संघर्ष में* (ऊर्ध्वः-तिष्ठ) हमारे ऊपर विराजमान रह (ब्रवावहै) यह सम्यक् प्रार्थना करता हूं† ॥ ३॥

षष्ठ तृच

ऋषिः—हर्यतः प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—उत्तम स्तुति में कुशल कान्तिमान् उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गाव उपवदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३ १२ २२ ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०३)

३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु ।
३ १ २ ३ १ २
अवटस्य विसर्जने ॥२॥

(अद्रयः-'अद्रिभिः') स्तुतिकर्ता उपासकजनों‡ ने° (अभ्यारम्-इत्) समन्तरूप से रमणस्थान लक्ष्य कर (विसर्जने-अवटस्य 'अवटे' पुष्करे) सृष्टि विसर्जन करने वाले§ सृष्टि रचयिता रक्षण

* "वाजः संग्रामनाम" [निघ० २।१७]

† व्यत्ययेन द्विवचनं छान्दसम् ।

‡ "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५]

° "अद्रिभिः तृतीयास्थाने प्रथमा सुपां सुपो भवन्तीति वक्तव्यम् छन्दसि ।

§ विपूर्वकसृजधातोः कर्तरि ल्युप्रत्ययश्छान्दसः विभक्तिव्यत्ययश्च ।

स्थान पूजनीय* परमात्मा में (मधु निषिक्तम्) अपने आत्मा को† नियत रूप से सींच दिया—समर्पित कर दिया ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
३ १ २ ३ १ २
नीचीनवारमक्षितम् ॥३॥

(अक्षितम्) क्षयरहित—अविनाशी—(उच्चाचक्रम्) उच्च सर्वोच्च तृप्तिकर्ता‡ (परिज्मानम्) सर्वत्र परिप्राप्त—व्याप्त° (नीचीनवारम्) नीचे हम उपासकों की ओर द्वारवाले॰ प्रवृत्त होने वाले आनन्दस्रोत परमात्मा को (नमसा सिञ्चति) उपासकजन नमस्कारों—नम्र स्तुतियों से अपने आत्मा को समर्पित करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम द्वयृच

ऋषिः—देवातिथिः (परमात्मदेव में अतन-प्रवेश करनेवाला)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

---

* "पुष्करं पूजाकरं पूजनीयम्" [निरु० ५।१४]
† "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० २।३।२।९]
‡ "चक्रं चकतेः" [निरु० ४।२७] "चक तृप्तौ" [भ्वादि०] ततोरक् [उणादि०]
° "परिज्मा" [उणादि०] परिपूर्वात् ज्रू गतो [भ्वादि०] वकारस्य मकारश्छान्दसः ।
ऽ "नीचीनवारं निचीनद्वारम्" [निरु० १०।५]

छन्दः—प्रागाथः (विषमा बृहती)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥१॥

(तव-उग्रस्य-वृष्णः) तुझ प्रतापी सुखवर्षक ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (सख्ये) सखित्व—मित्रता में (माभेम) हम न भय करें—किसी भी भयप्रद या भयावह से दुःख न पा सकें (मा श्रमिष्म) न स्वयं हम खेद को प्राप्त करें—न खिन्न* हो सकें यह निश्चित है (ते) तेरा (कृतम्) सखिकार्य—मित्रत्व का कार्य (महत्-अभि चक्ष्यम्) महान् सर्वथा प्रशंसनीय—स्तुत्य है† जिसे हम (तुर्वशं यदुं पश्येम) समीप‡ देखते हैं—जो सूंघने को नासिका, स्वाद लेने को जिह्वा, रूप दर्शन के लिये नेत्र, स्पर्श करने को त्वचा, शब्द सुनने को कान—भोग साधन और भोग दिया है तथा दूसरा कार्य मित्रता का है अपवर्ग—मोक्षप्रदान करना जो दूर का है—इस लोक का नहीं, तुर्वश समीप की तुलना से दूर का कार्य हुआ अपवर्ग—मोक्ष प्रदान कार्य 'तुर्वश' तुरन्त वश में होने वाला—मिलने वाला जो° 'यदुम्' यजनीय—सङ्गमनीय कहा जा सकता है§ ॥ १ ॥

* "श्रमु तपसि खेदे च" [दिवादि०]

† "चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि" [अदादि०]

‡ "तुर्वशः-अन्तिकनाम" [निघ० २।१६]

° "तुर त्वरणे" [जुहो०] ततः क्विप् ।

§ "त्यजितनियजिभ्यो जित्- अदिः" [उणा० १।१३२] "दद-ततः-उङ्, "शब्दे" [भ्वादि०] यजनीयं च वक्तव्यं च कर्मणि क्विप् छान्दसः ।

३ १र २र ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२॥

(वृषा) सुखवर्षक परमात्मा (सव्यां स्फिग्यम्-अनु वावसे) वाम जङ्घा के साथ सारे संसार को आच्छादित करता है परमात्मा की विभुता के सम्मुख एकदेशी तुच्छ है पाद मात्र सो भी वाम पाद मात्र है* (दानः-अस्य न रोषति) इसका खण्डयिता-खण्डन करने वाला† नास्तिक जन उसे हिंसित नहीं कर सकता किन्तु अपनी हिंसा है—वार बार जन्म लेकर मृत्यु का ग्रास बनता है (सारघेण मध्वा सम्पृक्ताः-धेनवः) ब्राह्मणों—ब्रह्मवेत्ता उपासकों के‡ आत्मा° से सम्पृक्त—सङ्गत हुई स्तुति वाणियां* समर्पित की जा रही हैं उनके रस को पान करने (तूयम्-एहि) शीघ्र आ (द्रव पिब) हम उपासकों के प्रति द्रवित हों—पास आ और पान कर स्वीकार कर ॥ २ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—मेधातिथिः (परमात्मा में मेधा से गति प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

---

* "प्रादो अस्य विश्वा भूतानि" [ऋ० १०।९०।३]
  "तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्" [ऋ० १०।१।   ]

† "दो अवखण्डने" [दिवादि०]

‡ "ब्राह्मणाः सरघाः" [जै० २।३९६]

° "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [तै० सं० २।३।२।९]

* "धेनुः वाङ्नाम" [निघ० १।११]

छन्दः—बृहती ।

३ १ २ ३ १२ ३ १र २र
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो अभि स्तोमैरनूषत ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २००)

३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥

(अयम्) यह इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सहस्रम्-ऋषिभिः) सब* ऋषियों अमृत उपासकों द्वारा (सहस्कृतः) आत्मबल से साक्षात् किया हुआ (समुद्रः-इव पप्रथे) उनके अन्दर समुद्र के समान विस्तृत होगया (अस्य सः सत्यः-महिमा) इस का यह यथार्थ स्थिर महत्त्व है (विप्रराज्ये) स्तुतिकर्ताजनों के धर्म में° वर्तमान (यज्ञेषु) अध्यात्मयज्ञ में—योगाङ्गों में उसके (शवः-गृणे) में बलगुणों की प्रशंसा करूं—करता हूं ॥ २ ॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—पुष्टिगुः (पुष्टि—आत्मपुष्टि—आत्मसमृद्धि के लिये स्तुति जिसकी है ऐसा उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

---

* "सर्वं वै सहस्रम्" [श० ४।६ १।१५]
° "राज्यं वै धर्मः" [जै० ३।२३१]

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
३१ २३३ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥१॥

(यस्य) जिस ऐश्वर्यवान् परमात्मा का (अयं विश्वः) यह सब (आर्यः) अर्य—जगत्स्वामी* जगदीश परमात्मा का ज्ञाता ब्राह्मण (दासः) भृत्य कर्म कर्ता शूद्र (शेवधिपाः) धन कोष का रक्षक वैश्य (अरिः) शस्त्र प्रहारकर्ता—दण्डदाता क्षत्रियजन (तिरश्चित्) छिपकर वन में रहनेवाला निषाद—वनवासी भील† (रुशमे पवीरवि तुभ्य-'त्वयि' अर्ये इत्) रोचमान‡ शस्त्रधारी° तुझ सर्वस्वामी परमात्मा के निमित्त ही (रयिः-अज्यते) आत्मदान स्तुतिप्रदान समर्पित करता है^ᴕ वह तू उपास्य देव है ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
३ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यꣳ शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥२॥

(तुरण्यवः) तीव्र संवेगी (विप्रासः) उपासक विद्वान् (मधुमन्तम्) आनन्द रसवान्—(घृतश्चुतम्) तेज प्रसारक—(अर्कम्) अर्चनीयदेव§ इन्द्र परमात्मा को (आनृचुः) अर्चित करते हैं

---

* "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" [अष्टा० ३।१।]

† "तिरोऽन्तर्धौ" [अष्टा० १।४।७०]

‡ "रुशत्-वर्णनाम रोचते ज्वलतिकर्मा:" [निरु० ६।१३]

° "पविः शल्योभवति''''तद्वत् पवीरमायुधं तद्वान्-इन्द्रः" [निरु० १२।३०]

ᴕ कर्तरि कर्मप्रत्ययो व्यत्ययेन ।

§ "अर्को देवो यदेनमर्चन्ति" [निरु० ५।४]

(अस्मे रयिः-वृष्ण्यं शवः पप्रथे) हमारे अन्दर अध्यात्म धर्मसुख वर्षण योग्य और अध्यात्म बल प्रथित हो (अस्मे स्वानासः-इन्दवः) हमारे अन्दर परमात्मा के प्रति उपासनारस प्रथित हो ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—अत्यन्त तृप्तिमान् और नर विषयक ज्ञानदाता)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)

छन्दः—उष्णिक् ।

1611 गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव ।
४६८. शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥१॥ ऋ. ९.१०५.४

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४७२)

1612 स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥२॥ ऋ. ९.१०५.५

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (सः) वह तू (देवप्सरस्तमः) मुमुक्षुओं का अत्यन्त दर्शनीयरूप* (नः-हरिणां पते) हम उपासक जनों† के पालक ! (सख्ये सखा-इव) मित्र के लिये मित्र के समान (नर्यः-रुचे भव) हम मुमुक्षुओं का‡ हितकर तू अमृतत्व के लिये हो ॥ २ ॥

* "प्सरः-रूपनाम" [निघ० ३।७]
† "हरयः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३]
‡ "अमृतत्वं वै रुक्" [श० ६।४।३।१४]

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कञ्चिदत्रिणम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अपद्वयुम् ॥३॥

(इन्दो) हे आनन्दरसपूर्ण परमात्मन्! (त्वम्) तू (अस्मत्) हमारा* (सनेमि) पुराना साथी—मित्र है† (आ) और‡ (अदेवम्-कंचित्-अत्रिणं साह्वान्) तुझे अपना देव न मानने वाले किसी भी नास्तिक विचार को तथा पाप को° अभिभव करने वाला—हटानेवाला—तिरस्कृत करने वाला है (बाधः परि) बाधाओं—बाधक विघ्नों को 'परिवर्जय' परे हटा§ (द्वयुम्-अप) द्विधा—संशय या मन में कुछ आचरण में कुछ ऐसे दोष को 'अप गमय' पृथक् करदे ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—अत्रिः (अत्र—इस जन्म में ही तृतीय धाम को प्राप्त करने वाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—जगती ।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।

---

* "सुपां सुलुक्....." [अष्टा० ७।१।३९] इति, षष्टी विभक्ते लुक् ।

† "सनेमि पुराणनाम" [निघ० ३।२७]

‡ "एतस्मिन्नेवार्थे 'समुच्चये' आकारः" [निरु० १।४]

° "पाप्मानोऽत्रिणः" [ष० ३।१]

§ "अपपरी वर्जने" [अष्टा० १।४।] "परिवर्जने अपवर्जने" [अव्ययार्थ निबंधनम्]

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४६४)

विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥२॥

(विपश्चिते पवमानाय गायत) उपासकजनो ! सर्वज्ञ आनन्द धारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा का स्तुतिगान करो (अन्धः-मही न धारा-अति-अर्षति) जो आध्यानीय* ध्यान में आया हुआ वृष्टिधारा के समान अपनी आनन्दधारारूप में बरसता है (अहिः-न जूर्णां त्वचम्-अति-सर्पति) सर्प जैसे जीर्ण त्वचा को छोड़ देता है ऐसे उपासक की पुरातन वासना को अति सर्पित करता है—निकाल देता है (वृषा हरिः) सुखवर्षक दुःखहर्ता परमात्मा (अत्यः-न क्रीडन्-असरत्) घोड़ा जैसे† क्रीड़ा करता हुआ अच्छी गति करता हुआ आगे बढ़ता है ऐसे परमात्मा स्वभावतः रमण करता हुआ उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥२॥

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नांभुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः॥३॥

(अग्रेगः) शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक को आगे ले जाने वाला (राजा) राजमान—प्रकाशमान (अप्यः) आप्त जनोंका‡

* "अन्धः-आध्यानीयो भवति" [निरु० ५।१]
† "अत्यः-अश्वनाम" [निघ० १।१४]
‡ "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

हितकर (भुवनेषु-अर्पितः) लोकों में* प्राप्त हुआ (अह्नां विमानः) उनके दिनों—दिनमानों का व्यवस्थापक (तविष्यते) महत्त्व को प्राप्त करता है† (हरिः) दुःखहर्ता (घृतस्नुः) तेज का सर्जनकर्ता (सुदृशीकः) सुदर्शनीय (अर्णवः) प्राणस्वरूप‡ (ज्योतिः-रथः) ज्योति का रमणस्थान—ज्योतिर्मयः (ओक्यः) समवेत—सङ्गतियोग्य—आश्रयणीय (राये-पवते) ज्ञानानन्द धन देने के लिये प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इति षोडश अध्यायः ।

—()-:०:-()—

* "इमे वै लोका भुवनम्" [काठ० १।४०।७]

† "तविषः-महन्नाम" [निघ० ३।३]

‡ "प्राणो वा अर्णवः" [श० ७।५।२।५१]

अथ सप्तदश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ २२
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
१ २
चनो धाः सहसो यहो ॥१॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! तू (विश्वेभिः-अग्निभिः) सभी ब्राह्मणों* ब्रह्मज्ञाता उपासकों द्वारा उपासित हुआ उपासना में लाया—ध्याया हुआ (इमं यज्ञम्-इदं वचः) हमारे अध्यात्म-यज्ञ की प्रार्थना को स्वीकार कर (सहसः-यहो) योगाभ्यास बल से प्राप्तव्य और दातव्य—आमन्त्रणीय† परमात्मन् ! तू (चनः-धाः) पूज्य अमृत अन्न धारण करा ॥ १ ॥

२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यच्चिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे ।
१२ २२ ३ २
त्वे इद्धूयते हविः ॥२॥

---

* "अग्निर्वै ब्राह्मणः" [काठ० ६।६]

† "यह्वः-यातश्च हूतश्च भवति" [निरु० ८।८]

(यत्-चित्-हि) हे अग्ने अग्रणेता परमात्मन्! यद्यपि (शश्वता तना-'तनया:) बहुत—अनेक श्रद्धा* अनेक प्रकार श्रद्धा—इच्छा भावना से (देवं देवम्) इन्द्र मित्र वरुण आदि देव को—इन्द्र मित्र वरुण नाम से कहे जाने वाले देव को (यजामहे) पूजते हैं—उन उनकी स्तुति करते हैं परन्तु (त्वे-इत्-हविः-हूयते) तेरे अन्दर ही आत्मा† समर्पित किया जाता है—आत्मसमर्पण किया जाता है कारण कि अग्नि नाम से परमात्मा सब देवता है‡ तथा अन्य इन्द्र मित्र वरुण देव नाम अग्निनामक परमात्मा के ही हैं° ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १र २र
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
३ २ ३१२ ३२
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३॥

(विश्पतिः) प्रजापालक (होता) दाता (वरेण्यः) वरने योग्य (मन्द्रः) हर्षकारक अग्रणेता परमात्मा (नः) हमारा प्रिय हो (वयम्) और हम (स्वग्नयः) अग्रणायक परमात्मा के सु स्तुति किया करने वाले (प्रियाः) उसके प्रिय होजावें ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला)

---

* "तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि०]

† "आत्मा वै हविः" [काठ० ८।५]

‡ "अग्निः सर्वा देवताः" [सं० ६।३]

° "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो स दिव्यः सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः" ॥
[ऋ० १।१६४।४६]

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
३ १ २ ३ १ २
अस्माकमस्तु केवलः ॥१॥

(वः-जनेभ्यः) तुम जनों—साधारण जनों के—अनुपासकों के लिये (परि) पर्याप्त– बस भोग वस्तु द्वारा परिपालक है, परन्तु हम (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (विश्वतः-हवामहे) सर्व प्रकार के अपने अन्दर आमन्त्रित करते हैं—उपासनार्थ आमन्त्रित करते हैं (केवलः-अस्माकम्-अस्तु) बस वह हमारा इस रूप से सर्वथा सहायक हो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपावृधि ।
३ २ ३ १ २
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥२॥

(सः) वह तू (सत्रादावन्) हे सब कुछ भोग पदार्थ देने वाले परमात्मन् !※ (नः) हम उपासकों के लिये (वृषन्) अमृत-वर्षक (अमुं चरुम्) उस अपवर्ग—मोक्षरूप अमृतभरे पात्र को (अपावृधि) खोलदे, आशा है तू ऐसा करेगा, कारण कि तू (अस्मभ्यम्) हम उपासकों के लिये (अप्रतिष्कुतः) अस्खलित है—अविचलित है तथा किसी भी प्रकार प्रतीकार करने योग्य नहीं है† ॥ २ ॥

※ "सर्वं वै सत्रम्" [श० ४।६।१।१५] 'सत्र सत्रा' अन्येषामपि-दृश्यते" [अष्टा० ६।३।१३५] इति दीर्घः ।

† "अप्रतिष्कुतोऽप्रतिष्कृतोऽप्रतिस्खलितो वा" [निरु० ६।१६]

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा यूथेव वꣳसगाः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
१ २ ३ १ २
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥३॥

(वृषा यूथा-इव) गौओं के समूह में साण्ड की भांति (अप्रतिष्कुतः-ईशानः) प्रतिरोधन करने वाला—अपनाने वाला परमात्मा (वंसगाः-कृष्टीः) सम्भजन को प्राप्त मनुष्यों* अर्थात् उपासकजनों को (ओजसा-इयर्ति) आत्मतेज से आत्मभाव से—अपनेपन से प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

तृतीय द्वृच

ऋषिः—तृणपाणिः शंयुः (तृणसमान तुच्छ भेंट हाथ में जिसके है ऐसा समित्पाणि के जैसा, शम्—कल्याणकारी परमात्मा का इच्छुक उपासक)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय ।
३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३६)

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने हेडाꣳसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वराꣳसि च ॥२॥

* "कृष्टयः-मनुष्यनाम" [निघ० २।३]

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! तू (अप्रयुत्वभिः) दबाए न जाने वाले—अबाधित—पृथक् न होने वाले—सदा साथ रहने वाले—(पतृभिः) पालन करने वाले गुणों से (तोकं तनयं पर्षि) पुत्र पौत्ररूप उपासकों का तू पालन रक्षण करता है, तथा (दैव्या हेडांसि) देवों—वायुसूर्य आदि से हुए आधिदैविक कोपों* दुःखों को (च) और (अदेवानि ह्वरांसि) आधिभौतिक और आध्यात्मिक कोपों† दुःखों को भी (नः-युयोधि) हमारे—हमारे से या हमारे पास से अलग करदे ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—विष्णुः (व्यापक परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१२ २२ ३ २ ३ २ ३ १२ २३ १ २ ३ १ २
किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
१२ २२ ३ १२ २२ ३२३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा वर्पो अस्मदपगूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥१॥

(विष्णो) हे व्यापक परमात्मन् ! (किम्-इत् ते परि चक्षि नाम) क्या ही तेरा व्याख्या करने योग्य नाम है जो लोक लोकान्तरों में व्याप्त छिपा हुआ हो, जबकि (यद्-शिपिविष्टः-अस्मि प्रववक्षे) ज्ञानरश्मियों‡ से विष्ट—आविष्ट—भरपूर हूं ऐसा कहना उपासकों के प्रति ध्यान में आकर (अस्मत्) हम उपा-

---

* "हेडः क्रोधनाम" [निघ० २।१३]

† "ह्वरः क्रोधनाम" [निघ० २।१३]

‡ "शिपयो रश्मयः-उच्यन्ते" [निरु० ५।८]

सकों से (वर्पः-मा-अपगूह) अपने रूप° को मत छिपा—नहीं छिपाता है, अन्यों—साधारण जनों के सामने तेरा रूप छिपा रहता है वे तुझे स्थूल दृष्टि से देखते हैं लोकों में मात्र व्यापक है—छिपा हुआ है ऐसा ही मानते हैं (एतत्-यत्-अन्यरूपः) यह जो अन्यरूपवाला—ज्ञानदृष्टिवाला (समिथे बभूथ) अभ्यास वैराग्य द्वारा वृत्तिनिरोधसंग्राम में—विजय पर तू साक्षात् हो जाता है॥१॥

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्य मर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥

(शिपिविष्ट) हे ज्ञानरश्मियों से पूर्ण व्यापक परमात्मन्! (अद्य) आज इस जन्म में (ते तत्) तेरे उस (हव्यम्) हृदय ग्राह्यस्वरूप को (वयुनानि विद्वान्) जो कि तू हमारे प्रज्ञानों—विचारों को या कमनीय अभिप्रायों को जानने वाला है॰ उसे (अर्यः शंसामि) मैं अभ्यास वैराग्य से चित्तवृत्तियों का स्वामी बना प्रशंसित करता हूं (अस्य रजसः पराके क्षयन्तम्) इस लोक समूह—जगत् के पराक्रान्त†—द्युलोक मोक्षधाम में रहते हुए—(तं त्वा तवसम्) उस तुझ महान्‡ परमात्मा को (अतव्यान्-गृणामि) मैं अल्पस्थानी अणु आत्मा स्तुत करता हूं—स्तुति में लाता हूं ॥ २ ॥

° "वर्पः-रूपनाम" [निघ० ३।७]

॰ "वयुनानि विद्वान् प्रज्ञानानि विद्वान्" [निरु० ८।२०]
"यमुनं वेतेः कान्ति" [निघ० ५।१५]

† "पराके पराक्रान्ते" [निरु० ५।६] "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]

‡ "तवस इति महन्नामधेयम्" [निरु० ३।६]

वषट् ते विष्णोवास आकृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभि सदा नः ॥३॥

(शिपिविष्ट विष्णो) हे ज्ञानरश्मियों—ज्योतियों से आविष्ट तथा सब में व्यापक परमात्मन् ! (आसः) आस्य* मुख से (ते) तेरे लिये (वषट्-आकृणोमि) मैं स्तुतिवाणी† समर्पित करता हूँ (मे तत्-हव्यं जुषस्व) मेरे उस ग्राह्य स्तुतिवचन 'वषट्' को सेवन कर—स्वीकार कर (मे सुष्टुतयः-गिरः) मेरी उत्तम स्तुतिवाली वाणियां (त्वा वर्धन्तु) तुझे बढ़ावें—प्रसन्न करे या अधिक साक्षात् करावे (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तू‡ कल्याणकारी साधनों द्वारा हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वामदेव (वननीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा उपासक)

देवता—वायुरिन्द्रश्च (जीवनगतिदाता और ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।

* "पददानो····आसद्यपप्रभृतिषु" [अष्टा० ६।१।६३]
† "वाग्वै वषट्कारः" [श० १।७।२।२१]
‡ "बहुवचनं पूजार्थम्"

१ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आयाहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥
ऋ० ४.४६.१ - यजु: 26.30.

(वायो) हे अध्यात्मजीवन के प्रेरक परमात्मन् ! (दिविष्टिषु) मोक्षधाम प्राप्त कराने वाली स्तुतियों में* उनके निमित्त (शुक्रः) मैं निर्मल और सत्यवान्† (ते) तेरे लिये (अग्रे मध्वः-'मधुः') श्रेष्ठरस—उपासनारस को (अयामि) पहुंचाता हूं‡ अर्पित करता हूँ (स्पार्हाः-देव) स्पृहणीय—कमनीय देव ! तू (सोम पीतये) उपासनारस पान—स्वीकार करने के लिये (नियुत्वता-आयाहि) स्पृहणीय अमृत अन्नभोग के साथ° आ—प्राप्त हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्च वायवेषांᳪसोमानां पीतिमर्हथः ।
३ १र २र ३ २उ ३ ३क २र
युवाᳪहि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥
ऋ० ४.४६.२

(वायो) हे अध्यात्मजीवनप्रेरक (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (एषां सोमानाम्) इन सोमों—उपासनरसों को (पीतिम्) पान को—स्वीकार करने को (अर्हथः) योग्य हो (इन्दवः) आर्द्र रस भरे उपासनारस प्रस्तुत करने वाले उपासक आत्माएं* (युवां हि) तेरी ओर ही (यन्ति) जाते हैं (निम्नम्-आपः-न सध्र्यक्) नीचे स्थान—समुद्र को जैसे जलप्रवाह एक दूसरे मिलकर चले जाते हैं ॥ २ ॥

---

* "दिविष्टिषुदिव एषणेषु" [निरु० ६।२२]

† "सत्यं वै शुक्रम्" [श० ३।६।३।२५]

‡ "अन्तर्मंतणिजर्थः" ।

° "असौ वै स्पार्होऽन्नं नियुत्वत्" [जै० २।३६]

* "इन्दुरात्मा" [निरु० १४।१६]

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
१५३० वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नियुत्वन्ता न ऊतय आयातं सोमपीतये ॥३॥
ऋ. ४.४६.२

(वायो) हे अध्यात्मजीवन के प्रेरक (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शुष्मिणा) बलवान् (शवसः-पती) बलों के पालक (नियुत्वन्ता) अमृत अन्नभोग वाला—अमृतान्न भोग देने वाला (सोमपीतये) उपासनारस पान के लिये—स्वीकार करने के लिये आ ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—काश्यपौ रेभसूनू ऋषी (द्रष्टा से सम्बन्ध स्तोता और साक्षात्कर्ता उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १२ ३ २र ३ १ २ ३ १र २र
१६३१ अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्रगाहसे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥१॥
ऋ. ९.९९.२

(क्षपा-अध) रात्रि के* अनन्तर उषाकाल—प्रभातवेला में (परिष्कृतः) उपासक द्वारा भूषित पूजित स्तुत हुआ तू परमात्मन्! (वाजान्-अभि प्रगाहसे) अमृत अन्नभोगों को† प्राप्त कराता है

---

* "क्षपा रात्रिनाम" [निघ० १।७] "सुपां सुलुक्....." [अष्टा० ७।१।३९] आकारादेशः ।

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

(यदी विवस्वतः-धियः) यदि उपासक जन❀ की स्तुतिवाणियां† (हरिं यातवे हिन्वन्ति) तुझ दुःखहर्ता परमात्मा को उपासक के प्रति प्राप्त होने को प्रेरित करती हैं—खींचती हैं प्रेरणा देती हैं॥१

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥२॥

(अस्य) इस सोम परमात्मा के (तम्) उस मद—हर्ष आनन्दरस को (मर्जयामसि) प्राप्त करें‡ (यः-मदः-इन्द्र पातमः) जो आनन्दरस अत्यन्त पीने योग्य है—अन्दर धारण करने योग्य है° (यम्) जिस आनन्दरस को (गावः-आसभिः पुर दधुः) स्तुतिगानकर्ताऽ आसन आदि योगाङ्गों द्वारा पूर्वकाल में धारण करते रहे (नूनं च सूरयः) और आज—इस समय भी* स्तुतिकर्ता उपासकजन धारण करते हैं॥ २ ॥

१र २र ३ १ २ ३ २ ३क २र
तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

❀ "विवस्वन्तः-मनुष्यनाम" [निघ० ३।३]

† "वाग्वै धीः" [श० ४।२।६।१३]

‡ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४] लेट् प्रयोग ।

° "पातमः" इति शब्दो न तमप्प्रत्ययान्तस्ताद्धितः किन्तु कृत्यार्थेश्छान्दसः, अतः पातमः पातव्यः, तथाकृत्वा "कृत्यानां कर्तरि वा" [अष्टा० २।३।७१] षष्ठी, पुनः इन्द्रशब्देन सह षष्ठीसमासः ।

ऽ "गौः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

* "सूरिः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३॥
ऋ. ९.९९-४.

(तं पुनानम्) उस पवित्रकारक परमात्मा को (पुराण्या (गाथया) सनातनी वेदवाणी† के द्वारा (अभ्यनूषत) उपासक जनो ! आन्तरिकभाव से स्तुत करो—स्तुति में लाओ° (देवानाम्-उत-उ) और मुमुक्षुओं के भी (नाम बिभ्रतीः) नम्रभाव को धारण करने के हेतु (धीतयः) प्रज्ञाएं* (कृपन्त) समर्थ होती हैं—सफल करती हैं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

अग्नि तराणिः

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
१६३४/१६. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
३ १ २ ३ १ २
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१॥ ऋ. १.२६.१.
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १७)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
१६३५ स घा नः सूनुः शवसा पृथु गामा सुशेवः ।
३ २ ३ १ २
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२॥ ऋ. १.२६.२

(सः-घ) यह अग्रणायक परमात्मा (नः सूनुः) हम उपा-

---

† "गाथा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

° "णू स्तवने" [तुदादि०]

* "ऋतस्य धीतिः ऋतस्य प्रज्ञा" [निरु० १०।४१]

सकों का प्रेरक* (सुशेवः) शोभन सुख† आध्यात्मिक अमृत जिससे मिले ऐसा (शवसा पृथुगामा) बल से विस्तृत—व्यापक गतिवाला‡ है (अस्माकं मीढ्वान् भवतु) हमारा कामनावर्षक हो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ २ ३ २
स नो दूराच्चाराच्च नि मर्त्यादघायोः ।
३ २ ३ ३ २ ३ १ २
पाहि सदमिद् विश्वायुः ॥३॥

(सः) वह तू अग्रणायक परमात्मन् ! (अघायोः) पाप चाहने वाले—अनिष्ट चाहने वाले—(मर्त्यात्) मनुष्य से (दूरात्-च-आरात्-च) दूरवर्ती से और निकटवर्ती से भी° (सदम्-इत्-नः-निपाहि) सदा ही हमारी पूर्ण रक्षा कर (विश्वायुः) तू पूर्ण आयु का निमित्त बन ॥ ३ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—नृमेधाः (मुमुक्षु मेधावाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २
त्वामिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २५५)

* "षू-प्रेरणे" [तुदा०] "सुवः किच्चनुः" [उणा० ३।३५]

† "शिवः सुखनाम" [निघ० ३।६] बहुव्रीहिसमासे सुशेवः ।

‡ "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णा" [अष्टा० ७।१।३६] आकारादेशः ।

° "आसात्-अन्तिकनाम" [निघ० २।१६]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
१ २ ३ १ २ ३ १२ ३१ २२ ३ १२
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२॥

(ते-'त्वां' तुरयन्तं शुष्मम्†-अनु) हे परमात्मन् गति करते हुए तुझ* बलवान् को पीछे (क्षोणी) द्युलोक से पृथिवीलोक तक‡ (ईयतुः) चलते हैं (शिशुं न मातरा) शंसनीय प्रिय पुत्र के पीछे जैसे माताएं या माता पिता चलते हैं (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यत्-वृत्रं तूर्वसि) जब तू पाप° पापी को हिंसित करता है (ते मन्यवे) तुझ मन्युरूप के लिये—क्रोधरूप के लियेऽ (विश्वाः स्पृधः श्नथयन्त) उपासक में वर्तमान सारी संघर्ष करने वाली वासनाएं स्वयं हत हो जाती हैं मर जाती हैं§ ॥ २ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वनावृषी (इन्द्रिय सम्बन्धी अच्छी प्रार्थना करने वाला, विषय व्यापनशील मनके सम्बन्ध में अच्छी प्रार्थना करने वाला)

---

* "तुर त्वरणे" [जुहो०] "बहुलं छन्दसि" [अष्टा० २।४।७६] इति शम् ।

† "शुष्मं बलनाम" [निघ० २।९] अकारोमत्वर्थीयश्छान्दसः ।

‡ "क्षोणी द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]

° "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

ऽ "मन्युरसि मन्युमयि धेहि" [यजु० १९।९]

§ "श्नथति वधकर्मा" [निघ० २।१९]

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

३ १२ २र ३ २उ ३ १२
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।
३ १ २ ३ २ ३ २
चक्राण ओपशं दिवि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०५)

२ १२ ३ २ ३ १२ ३ २
व्या३न्तरिक्षमातिरन् मदे सोमस्य रोचना ।
२ ३ १२ २र ३ २
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥२॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सोमस्य मदे) उपासनारस के प्रतीकार में (रोचना 'रोचनम्' अन्तरिक्षम्) रुचि करनेवाले—कामनावाले उपासक आत्मा को* (वि-अतिरत्) विशेषरूप से ऊपर चढ़ा देता है या संसार सागर से तरा देता है (यत्-वलम्-अभिनत्) जो आत्मा को घेरने वाले†—बान्धने वाले अज्ञान या राग या भोग को छिन्न भिन्न कर देता है ॥ २ ॥

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १२ २र ३ २
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
३ १ २ ३ २
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३॥

(गुहा सतीः-गाः) गुहा—संवरण करने वाली‡ ढकने—छिपाने वाली प्रकृतिरूप जड़ प्रवृत्तियों में वर्तमान वाणियों—वेद-

* "आत्माऽन्तरिक्षम्" [काठ० १६।२]

† "वलं वृणोतेः" [निरु० ६।२]

‡ "गुहू संवरणे" [भ्वादि०]

वाणियों को* (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गों को प्रेरित करने वाले आरम्भिक ज्ञानी अग्नि आदि उपासकों के लिये† (आविष्कृण्वन्) साक्षात् कराने के हेतु (उदाजत्) ऊपर उभार दिया प्रकाशित कर दिया (बलम्-अर्वाञ्च नुनुदे) उपासक आत्मा के आवरक अज्ञान राग को इधर वा बाहर फेंक देता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (अध्यात्म कक्ष सुन लिया जिसने या अच्छी कक्षा जिसकी है ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
१ २ ३ १ २
आच्यावय-स्यूतये ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १३८)

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
युष्मंऽ सन्तमनर्वाणंऽ सोमपामनपच्युतम् ।
१ २ ३ १ २
नरमवार्यक्रतुम् ॥२॥

(युध्मम्) हे उपासक ! तू पाप—पापियों के प्रहर्ता नाशक

---

* "गौः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]
† "अग्निनोऽङ्गिरसः पर्यपश्यन्" [जै० २।१४२]
"अङ्गिरसां क एकोऽग्निः" [ऐ० ६।३४]

(अनर्वाणम्) दूसरे पर अनाश्रित स्वयं सर्वशक्ति सम्पन्न* (सोमपाम्) उपासनारस के पानकर्ता स्वीकारकर्ता—(अनपच्युतम्) स्वगुण कर्म से अपच्युत न होने वाले एकरस वर्तमान (अवार्यक्रतुम्) अबाध्य प्रज्ञानवाले—निर्भ्रान्तज्ञानवाले—(सन्तम्) होते हुए (नरम्) नायक—उन्नतपथ मोक्ष की ओर ले जाने वाले परमात्मा को अपनी ओर प्रेरित करता हूं ॥ २ ॥

१ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २
शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
१ २ ३ २ ३ १२
अवा नः पार्ये धने ॥३॥

(ऋचीषम-इन्द्र) हे ऋचों मन्त्रों के प्राप्त कराने वाले या ऋचों-मन्त्रों के दर्शन† ज्ञान कराने वाले परमात्मन् (नः) हमें (रायः) ज्ञानधन (पुरु) बहुत (शिक्षा) दे प्रदान कर‡ (विद्वान्) ज्ञानधनों का स्वामी या ज्ञाता है, अतः (नः पार्ये धने-आ-अव) पर—परधाममोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ स्वदर्शन धन के अन्दर हमें समन्तरूप से रख ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (इन्द्रियविषयक अच्छी प्रार्थना एवं व्यापनशील मनसम्बन्धी अच्छी प्रार्थना वाला)

* "अनर्वाऽप्रत्यतोऽयस्मिन्" [निरु० ६।२३]

† "ऋचामीषयितः-गमयितो दर्शयितो वा" ईश गतिहिंसादर्शनेषु" [भ्वादि०] ततः—अमच् प्रत्ययः औणादिकः, अनेकार्थप्रसंगे नैगमकाण्डेऽर्थं एष सङ्गच्छतेऽत्र मन्त्रे ।

‡ "शिक्षति दानकर्मा" [निघ० ३।२०]

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३२ ३२उ ३ १ २ ३१२ २२
तव त्यादिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३२ ३ १२
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१॥

(धिषणा) हे परमात्मन् ! स्तुति वाणी* (तव) तेरे (त्यत्) उस (बृहत्-इन्द्रियम्) महान् लिङ्ग—स्वरूप को (तव) तेरे (दक्षम्) बलको (उत) अपि—और (क्रतुम्) प्रज्ञान—प्रकृष्ट ज्ञान को या दर्शनभान को (वरेण्यं वज्रम्) वरने योग्य ओज को† स्वात्मबल को (शिशाति) तीक्ष्ण कर देता है—विकसित कर देता है—उपासक के लिये साक्षात् करने योग्य बना देता है॥१

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
२उ ३ १ २
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (द्यौः) द्युलोक—विशाल ज्योतिर्मण्डल (तव) तेरे (पौंस्यम्) बलको‡ और (पृथिवी) अन्नादि से पूर्ण प्रथित भूलोक (श्रवः) यश को* (वर्धति) बढ़ाता है° (त्वाम्) तुझे (आपः) अन्तरिक्ष में वर्तमान जल—

* "धिषणा वाङ्नाम" [निघ० १।११]

† "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]

‡ "पौंस्यानि बलानि" [निघ० २।९]

* "श्रवः-श्रवणीयं यशः" [निरु० १।९]

° "वर्धति-वर्धयति" अन्तर्गतणिजर्थः, यथा—"तमिद् वर्धन्तुनो गिरः-वर्धयन्तु नो गिरः" [निरु० १:१२]

जल धाराएं—वर्षा—जल (च) और (पर्वतासः) मेघ भी॥ (हिन्विरे) बढ़ाते हैं† स्वरूपमहत्ता दर्शाते हैं ॥ २ ॥

१र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
१र २र ३ २ ३ १ २
त्वाꣳशर्द्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥

(त्वाम्) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तुझे (बृहन् क्षयः-विष्णुः) महान् निवास हेतु व्यापक आकाश जो सब को अपने अन्दर स्थान देता है (मित्रः) अग्नि‡ (वरुणः)* समुद्र (गृणाति) स्तुति करता है—तेरा गुण गाता है (त्वाम्) तुझे (मारुतं शर्द्धः) मरुतो 'वातस्तरों'—प्रत्येक लोक के वायुस्तरों का बल° (अनुमदति) अनुरूप अर्चित करता हैऽ ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विशेष निरूपित करने वाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

※ "पर्वतः-मेघनाम" [निघ० १।१०]

† "हि वृद्धौ च" [स्वादि०]

‡ "एषः-अग्निः-भवति मित्रः" [श० २।३।२।१२]

* "समुद्रो वै वरुणः" [मै० ४।७।८]

° शर्द्ध-बलम्" [निघ० २।६]

ऽ "मदति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
१ २ ३ १ २
अमैरमित्रमर्दय ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ११)

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
कुवित् सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् ।
१ २ ३ १ २
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२॥

(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव ! (नः-गविष्टये) हमारी वागिष्टि—स्तुतियज्ञ के लिये* (सुरयिम्) शोभन धन—सुदर्शन धन को (कुवित् संवेषिषः) बहुत† समाविष्ट करा (उरुकृत्-नः-उरुकृधि) हे बहुत प्रकार या महान् संसार को करने रचनेवाले हमें महान् आत्मा या महान् उपासक जीवन्मुक्त बनादे ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ २ ३ १ २
मा नो अग्ने महाधने परा वग्भारभृद्यथा ।
३ २ ३ २ ३ १ २
संवर्गं सं रयिं जय ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (महाधने) महान् धन—महती तृप्ति करनेवाले मोक्षैश्वर्य मोक्षधाम में (नः) हम उपासकों को (मा परि वर्क्) मत त्यागना (यथा भारभृत्)

* "गौः-वाङ्नाम" [निघ० १।२१]
† "कुवित् बहुनाम" [निघ० ३।१]

जैसे राष्ट्र का※ भरण पालनकर्ता राजा अपनी प्रजा को नहीं त्यागता है (संवर्गं रयिं सञ्जय) संवर्जनीय—त्यागने योग्य पापभोग धन पर सम्यक् जय करा हमें संयमी बना, जैसे राष्ट्रभृत् राजा अपनी प्रजा को पापों से बचाता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—काण्वो वत्सः (मेधावी से सम्बद्ध स्तुतिवक्ता उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
३ २ ३ १ २
समुद्रायेव सिन्धवः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ११७)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि चिद् वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
१ २ ३ १ २
वज्रेण शतपर्वणा ॥२॥

(दोधतः-वृत्रस्य) आत्मा के कम्पाते† आवरक पाप बन्धन के‡ (शिरः-चित्) शिरोरूप राजा को भी (वृष्णिना-'वृष्णिः') सुखवर्षक* इन्द्र—परमात्मा (शतपर्वणा वज्रेण वि बिभेद)

※ "राष्ट्रं वै भारः" [तै० ३।९।७।१]

† "अन्तर्गतणिजर्थः"

‡ "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

* व्यत्ययेन प्रथमास्थाने तृतीया ।

बहुन पर्व—पालन साधन ओज* आत्मीय बल के द्वारा क्रष्ट देता है॥ २॥

२ ३ १ १ ३२उ ३ १ २
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत्।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३।

(अस्य) इस इन्द्र परमात्मा का (ओजः) आत्मबल (तित्विषे) प्रदीप्त हो रहा है (यत्-इन्द्रः-उभे रोदसी) जिससे परमात्मा दोनों—द्युलोक पृथिवीलोक को—द्यावापृथिवीमय जगत् को (चर्म-इव समवर्तयत्) चमड़े की भांति लपेटता है और खोलता है॥ ३॥

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगतः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा उत्थान का इच्छुक)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् एवं अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—एकपदा विराट्।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥१॥

(सुमन्मा) उपासक के लिये परमात्मा शोभन ज्ञानवाला (वस्वी) वासधन देनेवाला (रन्ती) रमणीय सुखवाला (सूनरी) शोभन नीतिवाला—शोभन नेता है॥ १॥

छन्दः—गायत्री।

---

* "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि।
२ ३ १र २र
ताविमा उपसर्पतः ॥२॥

(सरूप वृषन्) हे प्रकाशसहित और सुखवर्षक परमात्मन्! (आगहि) मुझ उपासक की ओर आ (इमौ) यह तू अग्निरूप और इन्द्ररूप (भद्रौ) कल्याणकारी (धुर्यौ) संसारधुरा को सम्भालने वाला (तौ) वह दोनों रूपों वाला (अभि-उपसर्पतः) उपासक को लक्ष्य कर उपगत होता है—पास आता है ॥ २ ॥

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
नीव शीर्षाणि मृढ्वन् मध्य आपस्य तिष्ठति।
१ २ ३ १ २ ३ २
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥३॥

(आपस्य मध्ये तिष्ठति) वह परमात्मा आप्त-प्राप्त किया जाता है जहां—उस हृदय देश के* मध्य—अन्दर रहता है (दशभिः शृङ्गेभिः-दिशन्) दृष्टार्थ† देख लिये—जान लिये अर्थ—पदार्थ-मात्र जिनके द्वारा ऐसे विविध ज्ञानप्रकाशों द्वारा‡ उपासक को ज्ञान उपदेश एवं अध्यात्म मार्ग का निर्देश करता हुआ रहता है (शीर्षाणि नि मृढ्वम्-इव) हे उपासको! तुम उस परमात्मा के उपदेशों से अपने को अवश्य* अलंकृत करो—संस्कृत करो ॥३॥

इति सप्तदशोऽध्यायः ॥

---

* "आप्यते प्राप्यते यस्मिन् स आपो हृदयदेशः," "आप्लृ धातोर्घञ् अधिकरणे ।

† "दश दृष्टार्थः" [निरु० ३।१०]

‡ "शृङ्गाणि ज्वलतोनाम" [निघ० १।१०]

* " अत्र 'इव शब्द एवार्थः परोक्षप्रिया इव हि देवाः" [ ] इति यथा, अथवा पदपूरणः "इवोऽपि दृश्यते" [निरु० १।१०]

अथ अष्टादश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (परमात्मा में मेधा से अतन करने वाला और पवित्र हो अतन प्रवेश करनेवाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पन्यं पन्यमित्सोतार आधावत मद्याय ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०७)

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
१ २ ३र २र
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२॥

(ब्रह्मयुजा) ब्रह्म—महान् इन्द्र—परमात्मा में युक्त होने वाले—उस तक पहुंचने वाले—(शग्मा) सुखकारी सङ्गम कराने वाले (हरी) परमात्मा को मेरी ओर ले आने वाले ऋक् और साम—स्तुति और उपासना* (गिर्वणसम्-इन्द्रं गीर्भिः) वाणियों को सेवन करने वाले परमात्मा को प्रार्थनाओं के द्वारा (इह-

* "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [ऐ० २।२४]

आवहतः) इस मुझ उपासक में या मेरे हृदय में आवाहन करते हैं—ले आते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ ३ १२ २र ३ १२ ३ ३ २
पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् ।
१ २ ३ १ २
नियमते शतमूतिः ॥३॥

(वृत्रहा) पापनाशक ॐ परमात्मा (सुतं पाता) मेरे द्वारा निष्पादित उपासनारस का पान करने—स्वीकार करने के शील-वाला (घ—आगमत्) अवश्य आवे (न-आरे-अस्मत्) हम से दूर न हो—रहे (शतम्-ऊतिः-नियमते) बहुत रक्षणक्रि-याओं से हमारी सम्भाल करता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने या सु-शोभन है कक्षा में जो ऐसा उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
२३ ३ १ २
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १५८)

३ १ २ ३ १ २ ३१२ २र
विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षं सोमस्य जागृवे ।
१ २ ३१२
य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥

ॐ "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

† पा धातोस्ताच्छीलिकस्तृन् प्रत्ययः ।

(वृषन्-जागृवे-इन्द्र) हे सुखवर्षक जीवों के कर्मफल प्रदान में न्याय करने में निरन्तर जागरूक सावधान ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (महिना) अपनी महती कृपा से (सोमस्य मद्दं विव्यक्थ) उपासक के द्वारा समर्थित उपासनारस के खान-पान को निमित्त बनाता है* अपना समागम आनन्द प्रदान करने को (यः-ते जठरेषु) जो उपासनारस तेरे मध्य में† कृपा प्रसाद बन बैठ जाता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
१ २ १ २ ३ १ २
अरं धामभ्य इन्दवः ॥३॥

(वृत्रहन्-इन्द्र) हे पापनाशक ऐश्वर्यवन्‡ परमात्मन् ! (ते-कुक्षये) तेरे कोख-जठर-मध्य में समाने के लिये उपासक का (सोमः) उपासनारस (अरं भवतु) 'अलम्' पर्याप्त या बहुत होवे, उपासक अपनी अल्प शक्ति के अनुसार उपासनारस प्रस्तुत कर सकेगा, तू अनन्त है अतः तेरा कुक्षि या जठर-मध्य अवकाश भरा नहीं जा सकता, एवं (इन्दवः) निरन्तर असंख्य धारा-प्रवाह से आर्द्र उपासनारस (धामभ्यः-अरम्) तेरे व्यापनशील अङ्गों° उपासक के अन्दर वर्तमान तेरे कृपांशों के लिये बहुत या पर्याप्त हो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—आजीगर्तः शुनःशेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में

---

* व्यच व्याजीकरणे" [तुदादि०] व्यच् धातोर्लिटिथलिरूपम् ।

† "मध्यं वै जठरम्" [श० ७।१।१।२२]

‡ "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

° "अङ्गानि वै धामानि" [का० श० ४।३।२।११]

शरीरगते में गिरा उत्थान का इच्छुक जन)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
१ २ ३ १ २ ३ २
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १५)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरश्चन्द्रः ।
३ १र २र
धियें वाजाय हिन्वतु ॥२॥

(सः) वह परमात्मा (महान्-अनिमानः) महान् है और गुणों से न मापने योग्य—अनन्त गुणबल क्रिया वाला है (धूमकेतुः) पाप पापी को कम्पाने योग्य प्रज्ञान वाला (पुरश्चन्द्रः) बहुत आह्लादक (नः-धियें वाजाय हिन्वतु) हमें बुद्धि के लिये और बल के लिये प्राप्त हो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
३ २ ३ १ ३ १ २
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥३॥

(सः-अग्निः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दैव्यः केतुः) दिव्यप्रेरक है (बृहद्भानुः) महातेजस्वी (नः-उक्थैः) हमारे स्तुतिवचनों को* (रेवान् विश्पतिः-इव शृणोतु) धनवान या राजा की भांति सुने—सुनता है—स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

* द्वितीयार्थे तृतीया व्यत्ययेन ।

चतुर्थ तृच

ऋषिः—बार्हस्पत्यः शंयुः (विद्यानिष्णात से सम्बद्ध कल्याण का इच्छुक उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
१६६८ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
११५ २उ ३ २ ३ १ २
शंयद्गवे न शाकिने ॥१॥ अथर्व २०.६८.१ ऋ० ६-४५-२२

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०१)

१६६६ २ ३ २ ३ १ १ ३ १र २र ३ १ २
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
२ ३ २ ३.२ ३ १ २
यत् सीमुपश्रवद् गिरः ॥२॥ ऋ०-६-४५-२. अथर्व-२०.६८.१.

(वसुः) बसाने वाला परमात्मा (यत्) जबकि (सीं गिरः-उपश्रवत्) सर्वतः—प्रार्थना वचनों को पास से सुनता है, और (गोमत वाजस्य दानम्) वाक्ज्ञान से युक्त आध्यात्मिक अन्न के दान को (न घ नियमते) न कभी नियमित करें—रोके किन्तु देता ही चला जावे । अतः वह स्तुतियोग्य है ॥ २ ॥

१६६७ ३ १ २ ३ २उ ३ १र २र ३ १र २र
कुवित् सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
१ २ ३ १ २
शचीभिरप नो वरत् ॥३॥ ऋ० ६.४५.२४ अथर्व २०.६८.२

(दस्युहा) सद्गुणों के क्षयकर्ता का नाशक परमात्मा (कुवित्सस्य) कु—निन्दित—दुराचरण को प्राप्त हुए (गोमन्तं

व्रजम्) इन्द्रियों वाले स्थान मन—अन्तःकरण में (हि) ही—वहीं (प्र-आगमत्) चला जावे पहुंच जावे (नः) हम उपासकों को (शचीभिः-अपवरत्) अपनी प्रज्ञान दान कृपाओं के द्वारा दूर रखे ॥ ३ ॥

—

द्वितीय खण्ड

प्रथम षड्च

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

देवता—विष्णु (व्यापनशील परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३२उ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
१ २ ३ २
समूढमस्य पांसुले ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १७६)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अतो धर्माणि धारयन् ॥२॥

(गोपाः) जगत् का पालक (अदाभ्यः) न दबने वाला—अहिंसनीय (विष्णुः) व्यापक परमात्मा (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीन पदों—प्रापणीय स्थानों में विक्रम करता है—पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक में (अतः-धर्माणि धारयन्) अतः सदाचरण तथा उपासना को धारण करता हुआ—आस्तिक बना रहे ॥ २ ॥

२ ३   १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ २
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
१ २ ३ २ ३   १ २
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥

(विष्णोः कर्माणि पश्यत) व्यापक परमात्मा के कर्मों—जगद्रचन चालन धारण जीवों के लिये भोगप्रदान कर्मानुसार फल प्रदान आदि को देखो (यतः-व्रतानि पस्पशे) जिन्हें देखकर मनुष्य अपने सङ्कल्पों आचरणों कर्तव्यों को स्पर्श करता है* उसके प्रति और संसार में रहने के लिये (इन्द्रस्य युज्यः सखा) उपासक आत्मा का योग से प्राप्त होने वाला साथी मित्र है, अतः उससे योग करना चाहिए ॥ ३ ॥

१र   २र   ३ २ ३१र   २र   ३ १ २
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
दिवीव चक्षुराततम् ॥४॥

(सूरयः) स्तोता उपासक विद्वान्† (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (तत् परमं पदम्) उस परम आनन्द स्वरूप को (सदा पश्यन्ति) सदा अपने आत्मा में देखते हैं (दिवि-इव-चक्षुः-आततम्) आकाश में प्रकाशित हुए सूर्य की‡ भांति ॥ ४ ॥

१र २र   ३   १ २   ३ २ ३ १ २
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
२   ३ १   २ ३ २ ३ २
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥५॥

---

* "स्पर्श बाधनेस्पर्शयोः" [भ्वादि०]
† "सूरिः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]
‡ "चक्षुरसावादित्यः" [ऐ० आ० २।१।५]

(विष्णोः-यत् परमं पदम्) व्यापक परमात्मा का जो उत्कृष्ट आनन्द स्वरूप है (तत) उसे (विप्रासः) मेधावी* (जागृवांसः) जागरूक—सावधान (विपन्यवः) विशेष स्तुति करने वाले† (समिन्धते) अपने अन्दर सम्यक् प्रकाशित करते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥६॥

(पृथिव्याः-अधि सानवि) पृथिवीलोक से लेकर ऊपर द्युलोक तक में (यतः-विष्णुः-विचक्रमे) जिससे कि व्यापक परमात्मा ने अपनी व्याप्तिरूप विक्रम किया है (अतः) इससे वह परमात्मा सर्वत्र है (देवाः-नः-अवन्तु) जीवन्मुक्त आत्माएं हमें उस व्यापक परमात्मा का श्रवण एवं बोध करावें‡ ॥ ६ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसनेवाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ १र २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आगहीह वा सन्नुपश्रुधि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २३०)

* "विप्रः-मेधाविनाम" [निघ० ३।१५]

† "पन स्तुतौ" [भ्वादि०] ततो विपूर्वात्-बाहुलकादौणादिको युच् प्रत्ययः" [उणा० ३।२०]

‡ "अवरक्षणगतिकान्ति प्रीतितृप्तचवगमप्रवेश श्रवण" [भ्वादि०]

३ १र २र ३ १ २ ३१उ ३ २ ३ २उ ३ १ २
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २उ ३ १ २
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥

(ते हि) हे परमात्मन् ! तेरे ही (इमे ब्रह्मकृतः) ये स्तुतिकर्ता* (सुते) तुझ उपासित के आश्रय (सचा-आसते) समवेत होकर बैठते हैं (मधौ न मक्षः) मधु के आश्रय—मधु पर जैसे मक्खियां बैठती हैं (वसुयवः-जरितारः) अपने वासयोग्य आश्रय की कामना करने वाले स्तुतिकर्ता जन† (इन्द्रे कामम्-आदधुः) तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा के अन्दर अपने कमनीय अभीष्ट को रख देते हैं (रथे न पादम्) जैसे रथ—यान—गाड़ी में पैर को रख देते—जमा देते हैं ॥ २ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काण्वः आयुः (कण्व मेधावी से सम्बद्ध परमात्मा में गमनशील उपासक जन)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥

(अस्तावि) ऐश्वर्यवान् परमात्मा स्तुत किया जाता है, अतः (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये (पूर्व्यं मन्म ब्रह्म

* "वाग्वै ब्रह्म" [ऐ० ६।३, जै० १।१०२]
† जरिता स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

वोचत) शाश्वत मननयोग्य मन्त्र* को बोलो (ऋतस्य पूर्वीः-बृहतीः-अनूषत) ब्रह्मयज्ञ की पूर्ववर्ती स्तुति वाणियों को† स्तुति में लाओ (स्तोतुः-मेधाः-असृक्षत) स्तुतिकर्ता की बुद्धियां इस ब्रह्मयज्ञ में प्रवृत्त हों ॥ १ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २२ ३ २ ३ १ २
सꣳ शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (बृहतीः-रायः सम्-अधूनुत) बड़ी धनसम्पत्तियों को सम्यक् प्रकट करता है (क्षोणी सम् सूर्यम्-उ सम्) द्युलोक पृथिवीलोक को‡ सम्यक् प्रकट करता है, सूर्य को भी सम्यक् प्रकट करता है। उस ऐसे (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (शुक्राशः शुचयः सम्-अमन्दिषुः*) सत्य और पवित्र प्रार्थनाएं स्तुतियां सम्यक् हर्षित करें (गवाशिरः सोमाः सम् अमन्दिषुः) स्तोता के° आश्रय उपासनारस हर्षित करें ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—अम्बरीषः (हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

---

* "ब्रह्म वै मन्त्रः" [जै० १।८८]

† "वाग्वै बृहतीः" [श० १४।७।१।२२]

‡ "क्षोणी द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]

* "सत्यं वै शुक्रम्" [श० ३।९।३।२५]

° "गौः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

छन्दः—अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३१र २र
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परिषिच्यसे ।
१२ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या उत्तरार्चिक पृ० ३५५)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥२॥

(सखायः सूरयः) हे समानधर्मी स्तुतिकर्ता* जनो ! (वयं यूयं च) हम और तुम मिलकर (तं पुरूरुचम्) उस बहुत दीप्ति वाले—(वाजगन्ध्यम्) अमृत† अन्नभोग गन्धयुक्त शान्तस्वरूप परमात्मा को सेवन करें—जीवन में धारण करें, तथा (वाजपस्त्यम्) अमृत अन्न के गृह‡ भण्डार शान्तस्वरूप परमात्मा को (सनेम) सम्भजन स्तवन करें ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
२ ३२उ ३ २उ ३ १२ ३१र २र
यो देवान् विश्वाँ इत् परिमदेन सह गच्छति ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४५२)

पञ्चम तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

* "सूरिः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]
† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]
‡ "पस्त्यं गृहनाम" [निघ० ३।४]

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

१२ २र ३ १२ २र
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २२६)

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददाति प्रिया वसु ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥२॥

(हर्यश्व) हे दुःखहरण शीलगुण कर्म हैं व्यापने वाले जिसके ऐसे परमात्मन् ! (मघोनः 'मघोने') तुझ मघवा के लिये (प्रिया 'प्रियाणि' वसु 'वसूनि' ददति) जो प्रिय धनों को दान कर देते हैं—त्याग देते हैं (वृत्रहत्येषु चोदय स्म) उन्हें तू पापनाशक* कार्यों में प्रेरित कर—करता है (तव प्रणीती) तेरी प्रकृष्टनेतृत्व में (सूरिभिः) पूर्व स्तुतिकर्ताओं† के समान (विश्वा दुरिता तरेम) सब दुःख कठिनाइयों को हम तर जावें—पार कर जावें ॥२॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वैयश्वो विमनाः (विशेष संस्कृत इन्द्रिय घोड़ों से सम्पन्न प्राणिमात्र के विशेष मनोभाव रखने वाला)

---

* "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

† "सूरिः स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रदु मघोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः
३ २उ ३ १र २र ३ १ २
एवाहि वीरस्तवते सदावृधः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३२०)

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उदानंश शवसा न भन्दना ॥२॥

(हरीणां स्थातः-इन्द्र) हे मनुष्यों के* अन्दर स्थान लेनेवाले परमात्मन् ! मनुष्य ही तुझे जान सकते हैं (ते पूर्व्यस्तुतिं न किः-उदानंश) तेरी पूर्व से चली आई—शाश्वती स्तुति को कोई नहीं सम्भाल सकता है—नहीं पा सकता† (शवसा न भन्दना) न बलसे—बल के हेतु या कल्याण द्वारा, तेरा बल महान् है कल्याण प्रदान महान् है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥

(तं वः 'त्वाम्' वाजानां पतिम्) उस तुझ अमृत अन्नभोगों‡

---

* "हरयः-मनुष्याः" [निघ० २।३]

† "आनशे व्याप्तिकर्मा" [निघ० २।१८]

‡ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

के स्वामी परमात्मा को (श्रवस्यवः) श्रवणीय यशोरूप परमात्मा को* चाहते हुए हम उपासकजन (अहूमहि) आहूत करते हैं—आमन्त्रित करते हैं (अप्रायुभिः-यज्ञेभिः) प्रमादी जन न हों जिन में ऐसे सावधान जनों† से सम्पादित अध्यात्मयज्ञों से (वावृधेन्यम्) बढ़ने बढ़ानेवाले परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं ॥ ३ ॥

द्वितीय द्व्यृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरने में कुशल उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—ककुप् ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
३ २ ३ १ २
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ९५)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥२॥

(सौभरे विप्र) हे परमात्मा के आनन्दज्ञान को अपने अन्दर भरने में कुशल उपासक ! तू (विभूतरातिम्) बहुतदान जिसके हैं ऐसे महादानी (चित्रशोचिषम्) चायनीय—दर्शनीय प्रकाशवाले—(यन्तुरम्-अग्निम् ईडिष्व) विश्व नियन्ता ज्ञानप्रकशस्वरूप

* "यस्यनाम महद्यशः" [यजु० ३२।३]

† "अप्रायुवो प्रमाद्यन्तः" [निरु० ४।१९]

परमात्मा को स्तुत करो—स्तुति में लाओ (अस्य मेधस्य सोम्यस्य) इस पवित्र शान्तिप्रद—(ईम्-पूर्व्यम्) हां शाश्वत परमात्मा को (अध्वराय) अध्यात्मयज्ञ के लिये स्तुत कर ॥ २ ॥

तृतीय द्वयृच

ऋषिः—सप्तर्षयः (सात ऋषि—परमात्मा को प्राप्त होने योग्य उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
२ ३ २ ३२ ३क २२ ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदोवनेषुदध्रिषे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ४१७)

१ २ ३ १र २२ ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥२॥

(सः-पवमानः सोमः) वह आनन्दधारारूप में प्राप्त होने-वाला शान्तस्वरूप परमात्मा (मेष्यः) अपनी आनन्दधाराओं द्वारा उपासक को सींचने वाला* (अण्वानि तिरः-मामृजे) उपासक आत्मा के सूक्ष्मकरणों—अन्तःकरणों—मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार के प्रति—इनके अन्दर होकर† उपासक आत्मा को प्राप्त

---

* "मिषु सेचने' [भ्वादि०] ततो ण्यत् प्रत्ययः कर्त्तरि" कृत्यल्युटो-बहुलमितिवार्तिकेन ।

† "तिरोऽन्तर्धौ" [अष्टा० १।४।७०]
"तिरो दधे-अन्तर्दधाति" [निरु०१०.३२]

होता है (वाजयुः-मीढ्वान् सप्तिः-न) जैसे* वीर्य सेचन—समर्थ घोड़ा† अपने तबेले में अन्न खाने का इच्छुक हुआ प्राप्त होता है (मनीषिभिः-विप्रेभिः-ऋक्वभिः-अनुमाद्यः) मनसे सोचने से सोचनेवाला बुद्धिमानों स्तुतिकर्ताओं द्वारा अर्चनीय‡ है ॥२॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—कलिः (गुण कथनकर्ता)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २१९)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

२उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

सेमं न स्तोमं जुजुषाण आगहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥

(वृकः-चित्) चोर जन—भीतर कुछ बाहिर कुछ—वास्तविकता को न प्रकट करने वाला* कोई (उरामथिः) स्वदोषाच्छन्न स्वभाव को मथनेवाला° जन (वारणः) वरयिता वरने वाला

* "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

† "सप्तिः-अश्वनाम" [निघ० १।१४]

‡ "मदति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

* "वृकः स्तेनसाम" [निघ० ३।२४]

° "उरामथिः-उरणमथिः, उरणवान्, ऊर्णावृणोते रूर्णातेर्वा" [निरु० ५।२१]

वयुनम्—मतः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा। अवयुनम्—तमः। वयुनवत्—प्रज्ञानवत्। नि-घ्रू-

बनकर* (अस्य वयुनेषु-आभूषति) इस परमात्मा के प्रज्ञानों—गुण संकेतों—गुणगानों में अपने को समन्तरूप से अलंकृत करता है—सजाता है (सः) वह तू (इन्द्र) परमात्मन् (नः) हमारे (इमं स्तोमं जुजुषाणः) इस स्तुतिसमूह को सेवन करने के हेतु (चित्रया धिया) विचित्र—चमत्कारी अपनी कृति एवं बुद्धि से (प्र-आगहि) प्राप्त हो ॥ २ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—विश्वमित्रः (सब का मित्र सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी देवते (ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१६८२ इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्रवीर्यम् ॥१॥ ऋ० - ३-१२-९

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् एव ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (दिवः-रोचना) तू मोक्षधाम का प्रकाशक है (वाजेषु परिभूषथः) अर्चनावसरों में† सर्वतः भूषित होता है, (वाम्) तुझ को (वां वीर्यं तत् प्रचेति) तेरा जो गुण सामर्थ्य है वह तुझे जनाता है ॥ १ ॥

---

* "वृञ् वरणे" [स्वादि०] ततः-ण्युश्छान्दसः ।

† "वाजयति अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

१ २ ३ १२३२उ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी अपसस्परयुप प्रयन्ति धीतयः ।
३ १ २ ३ २ १ २
ऋतस्य पथ्या३अनु ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या उत्तरा० पृ० ४८८)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वाᳬ सधस्थानि प्रयाᳬसि च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्यᳬ हितम् ॥४॥

(देखो अर्थव्याख्या उत्तरा० पृ० ४८८)

षष्ठ तृच

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन प्रवेश करने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १२ १२
क ईं वेदसुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
३१२ २२ ३१२ २२ ३ २ ३ १ २
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पृ० पृ० २४२)

३ २ ३ १२ २२३ १ २ ३ २ ३ १ २
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥२॥

(दाना) दान से* आत्मदान—आत्मसमर्पण द्वारा (मृगः)

* "टा विभक्तेः स्थाने-आकारादेशश्छान्दसः ।

अन्वेषणीय※ (न) इस जीवन में ही† वारणः) वारक—वरने वाला‡ इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा (पुरुत्रा चरथं दधे) उपासक के बहुत अध्यात्म प्रसङ्गों में चरण—प्रापण—समागम धारण करता है (सुते) साक्षात् प्रसिद्ध होने के निमित्त (आगमः) तू आता है (न किः-त्वा नियमत्) न कोई तुझे रोक सकता है, कारण कि तू (महान्-ओजसा-चरसि) महान् है, निज आत्म-बल से गति करता है ॥ २ ॥

२ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्यागमत् ॥३॥

(यः) जो (उग्रः-अनिष्टृतः) तेजस्वी नितान्त किसी प्रकार हिंसित न होने वाला—अविनाशी (स्थिरः) एकरस रहने वाला (सन्) होता हुआ (रणाय संस्कृतः) रमण करने के लिये° उपासना द्वारा सम्यक् उपासित या साक्षात्कृत है (स्तोतुः-हवम्) स्तुतिकर्ता के प्रार्थनावचन या आमन्त्रण को (यदि-यद्-ई) जब कि (मघवा शृणवत्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा सुनले—सुन लेता है (इन्द्रः-न योषति) परमात्मा उपासक से पृथक् नहीं होता, किन्तु (आगमत्) उपासक को समन्तरूप से प्राप्त रहता है ॥३॥

—

※ "मृग अन्वेषणे" [चुरादि०]
† "नः सम्प्रत्यर्थे" [निरु० ६।८]
‡ "वृञ् वरणे" [स्वादि०] ल्युप्रत्यये नन्दनोयथा।
° "नाहमिन्द्राणि रारण-नाहमिन्द्राणि रमे" [निरु० ११।३१]

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—निध्रुविः (नियत स्थिर वृत्ति वाला उपासक)

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
३ १र २र ३ १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

(पवमानाः) धारारूप प्राप्त होने वाला (शुक्रासः) शुभ्र निर्मल अधर्माज्ञान दोषरहित (इन्दवः) आनन्दरसपूर्ण (सोमाः) शान्तस्वरूप परमात्मा* (विश्वानि काव्या) सब वेदरूप काव्यों को† अभिलक्षित कर—उनके अनुसार उपासित हो उपासक के अन्दर (असृक्षत) पहुंचता है ॥ १ ॥

१ २ ३१उ ३ १२
पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥

(पवमानाः) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा (दिवः-अन्तरिक्षात् परि) द्युलोक में अन्तरिक्षलोक में‡ (पृथिव्याः-अधिसानवि) पृथिवीलोक में वर्तमान इनके सम्भजन स्थान—

* सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम् ।

† "त्रयी वै विद्या काव्यंछन्दः" [श० ८।५।२।७]

‡ "पञ्चम्याः परावध्यर्थे" [अष्टा० ८।३।५१] इति सकारः ।

उपासनास्थान—आत्मा के उपकरण मूर्धा* हृदय† और शरीर‡ में कर्मेन्द्रियगण में (असृग्रन्त) उपासना द्वारा पहुंचता है जिससे क्रमशः सद्विचार सद्भाव सदाचार प्रवाहित होता रहता है ॥ २ ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
२ ३ २ ३ २३ १ २
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥

(आशवः) व्यापनशील (शुभ्राः) शुभ्र—निर्मल (पवमानासः) धारारूप में प्राप्त होने वाला (इन्दवः) आनन्दरसपूर्ण परमात्मा (विश्वाः-द्विषः) सारी द्वेषभावनाओं को (अपघ्नन्तः) नष्ट करता हुआ (असृग्रम्)° आत्मा के अन्दर पहुंचता है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्र (सब का मित्र या सब जिसके मित्र हैं)

देवता—इन्द्राग्नी (ऐश्वर्यवान् और ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

---

* "एतद्वै प्रत्यक्षं दिवोरूपं यन्मूर्धा" [जै० २।४०४]

† "तद्यदस्मिन्निदं सर्वमन्तस्तः-यदन्तर्यक्षम् । अन्तर्यक्षं ह वै नामैतत् । तदन्तरिक्षमित्ति" [जै० उ० १।६।१।५]

‡ "यच्छरीरं सा पृथिवी" [ऐ० आ० २।३।३]

° "पुरुषवचनव्यत्ययश्छान्दसः ।

३ १ २ ३ १ २　　३ २　३ १ २
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
३　१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥१॥

(तोशा 'तोशौ') दोषनाशक* (वृत्रहणा) पापहन्ता† (सजित्वाना) समान प्रभावक (अपराजिता) पराजित न होने वाला—सदा विजयी (वाजसातमा) अमृत अन्नभोग देनेवाला‡ (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (हुवे) प्रार्थित करता हूं—प्रार्थना में लाता हूं ॥ १ ॥

१ २　३ १ २　३ १ २　३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥२॥

(देखो अर्थव्याख्या उत्तरार्चिक पृ० ४८७)

१ २　३ १र २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
३ १र २र३ १ २
साकमेकेन कर्मणा ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या उ० पृ० ४८७)

तृतीय तृच

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाला उपासक)

---

* "नितोशते वधकर्मा" [निघ० २।१९]
† "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]
‡ "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

1605 १ २ ३ १ २ ३ १
उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥१॥ ग्र० ८-१६-३६

(सहस्कृत-अग्ने) हे अध्यात्मबल से साक्षात् करने योग्य ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (प्रयस्वन्तः) योगाभ्यासरूप प्रयत्नवान् हम उपासक* (त्वा रण्वसन्दृशम्) तुझ रमणीय स्वरूप को† (गिरः-उपससृज्महे) स्तुतियों‡ को उपसृष्ट करते हैं—उपहार देते हैं—समर्पित करते हैं ॥ १ ॥

1606 १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
२ ३ १ २
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥२॥ ग्र० ८-१६-३२

(अग्ने) हे परमात्मन् ! (ते घृणेः-हिरण्यसन्दृशः) तुझ जाज्वल्यमान—दीप्त* अमृतस्वरूप° के (शर्म छायाम्-इव वयम्-उप-अगन्म) वृक्ष छाया समान घर*—आश्रय को हम उपाश्रित करें पास प्राप्त करें ॥ २ ॥

---

* "यसु प्रयत्ने" [दिवादि०] प्र पूर्ववात् क्विपिरूपम् ।

† 'रण रमणे' "रणाय चक्षसे'''रमणीयाय चक्षसे" [निरु० ६।२६]

‡ "स्तुतयो गिरो गृणातेः" [निरु० १।१०]

* "घृणिः-ज्वलतोनाम" [निघ० १।१७]

° "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० ५।२।७।२]

* "शर्म गृहनाम" [निघ० ३।४]

१६०७ य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३॥ ऋ. ६.१६.३९

(यः) जो परमात्मा (शर्यहा-उग्रः-इव) शर्य—इषु—बाण* से हनन करने वाले शस्त्रधारी उग्र—बलवान् के समान प्रहार-कर्ता (वंसगः-तिग्मशृङ्गः-न) कमनीय—यथेष्टमार्ग को जाने वाला† तीक्ष्ण सींगों वाले साण्ड के समान आगे आने वाले के अङ्ग भङ्ग करता हुआ (अग्ने) परमात्मन् ! तू (पुरः-रुरोजिथ) हमारे मनो को‡ निरुद्ध कर ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक)

देवता—वैश्वानरोऽग्निः (विश्वनायक परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

१६०८. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥१॥ ऋ. ६.७.१ ... यजु. २६.६ ... ३६.१

(ऋतावानम्) अमृतवाले मोक्षानन्द देने वाले°—(ऋतस्य

* "शर्या इषवः शरमय्यः" [निरु० ५।४]

† "वनोति कान्तिकर्मा" [निघ० २।६] ततोबाहुलकात् सः प्रत्ययः [उणा० ३।६२]

‡ मन एवपुरः" [श० १०।२।६।५१]

° "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१५०]

ज्योतिषः-पतिम्) अमृतज्ञान ज्योति के स्वामी (अजस्रं घर्मम्-ईमहे) आलस्य अनश्वर तेजोरूप* अमृतानन्द परमात्मा को मांगते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २
य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् ।
३ १र २र ३ २
ऋतूनुत्सृजते वशी ॥२॥

(यज्ञस्य स्वः-उत्तिरन्) उपासकों के अध्यात्मयज्ञ के सुखफल को देने के हेतु (यः) जो विश्वनायक परमात्मा (इदं प्रतिपप्रथे) इस जगत् को पुनः पुनः प्रथित करता है—मनुष्यों के कर्म करणार्थ (वशी ऋतून्-उत्सृजते) वह वशकर्ता परमात्मा जगत् में ऋतुओं को उत्सर्जित करता है—उत्पन्न करता है पुनः मोक्ष की ओर भी लेजाता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
३ २उ ३ १२
सम्राडेको विराजति ॥३॥

(प्रियेषु धामसु) प्रिय मन नेत्र आदि अङ्गों में† (भूतस्य भव्यस्य कामः 'कामस्य') हुए और आगे होने वाले काम—इच्छाभाव‡ (एकः सम्राट्-अग्निः-विराजति) अकेला सम्राट् परमात्मा विराजमान है ॥ ३ ॥

इति अष्टादश अध्यायः ।

* "तेजो घर्मः" [मै० २।२।८]

† "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१९]

‡ "अङ्गानि वै धामानि" [श० ४।३।४।१]

अथ एकोनविंश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—आङ्गिरसो विरूपः (अङ्गों के प्रेरण नियन्त्रण में कुशल विशेष रूपमें परमात्मा को निरूपित करने वाला)

देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २
१६११ अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वाꣳ३स्वाम् ।
३ १ २ २ २
कवि र्विप्रेण वावृधे ॥१॥ ऋ. ८. ४४. १२

(कविः-अग्निः) सर्वज्ञ अग्रणायक परमात्मा (प्रत्नेन जन्मना) पुरातनशाश्वतिक—स्वाभाविक अभौतिक प्रादुर्भाव से या पुरातन स्वाभाविक कर्म से* या दिव—मोक्षधाम वाले† अमृतस्वरूप से (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपनी तनुरूप उपासक आत्मा को‡

---

* "जन्मसु कर्मसु" [निरु० ११।२३]

† "असौ वै द्युलोकः प्रत्नम्" [मै० १।२।५] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]

‡ "वृणुते तनूं स्वाम्" [कठो० २।२३, मुण्ड० ३।२।३] "य आत्मनि तिष्ठन्-यस्यात्मा शरीरम्" [श० १४।७।६।३०] "आत्मा वै तनूः" [श० ६।७।२।६]

शोभित करने वाला (विप्रेण वावृधे) मेधावी उपासक द्वारा स्तुत हुआ—स्तुति में लाया हुआ बढ़ता है—महत्त्व को प्राप्त होता है—उपासक के अन्दर साक्षात् होता है ॥ १ ॥

३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्नि पावकशोचिषम् ।
३ २ ३ १ २ ३२
अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥

(अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे) इस शोभन प्राणप्रद* अध्यात्मयज्ञ में (ऊर्जः-नपातम्) अध्यात्म रसों† के न गिराने वाले (पावक-शोचिषम्) पवित्रकारक दीप्तिवाले (अग्निम्) अग्रणायक परमात्मा को (आहुवे) आमन्त्रित करता हूं ॥ २ ॥

१ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
३१र २र ३ १ २
देवैरासत्सि बर्हिषि ॥३॥

(सः-त्वम्) वह तू (मित्रमहः-अग्ने) स्नेह करने वाले उपासकों के प्रशंसनीय स्तुतियोग्य अग्रणायक परमात्मन् ! (शुक्रेण शोचिषा) निर्मल दीप्ति से‡ (देवैः) अपने दिव्यगुणों के साथ (बर्हिषि) हृदयाकाश में (आ सत्सि) आ बैठ ॥ ३ ॥

द्वितीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षा करते हुए का अनुसरणकर्ता उपासक)

---

* "प्राणोऽध्वरः" [श० ७।२।१।५]
† "ऊर्ग्वै रसः" [श० ५।१।२।८]
‡ "शोचिः-ज्वलतोनाम" [निघ० १।१०]

देवता—सोमः (शान्तस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥

(अद्रिवः) हे स्तुतिकर्त्ताओं वाले॥ (ते शुष्मासः) तेरे बल वेगशक्ति—प्रवाह (रक्षः भिन्दन्तः) अपने को जिससे रक्षित रखना बचाना ऐसे काम आदि दोष को विदीर्ण करने के हेतु (उद्-अस्थुः) उठ रहे हैं (याः-स्पृधः) जो हमारी स्पर्द्धा करने वाली विरोधी प्रवृत्तियां हैं उन्हें (परि नुदस्व) परे निकालदे ॥१॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ २
अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।
२ ३ १ २ ३ २
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥

(अया-ओजसा) इस स्वात्मबल से—इसके आधार पर (निजघ्निः) पापों का हनन कर्त्ता हैं (रथसङ्गे धने हिते) मेरे साथ रमणीय सङ्ग में अन्तर्हित—अन्दर रखे अध्यात्म धन—मोक्षैश्वर्य के निमित्त (अबिभ्युषा हृदा स्तवैः) भयरहित—सङ्कोच-रहित हृदय से—मन से तेरी स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३क २र
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।

॥ "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५]

† "आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च" [अष्टा० ३।२।१७१] किः प्रत्ययः ।

३ १२ २२ ३ १२
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥

ऋ० ९-५३-२

(अस्य पवमानस्य) इस धारारूप में प्राप्त होने वाले परमात्मा के (व्रतानि) कर्मों* नियमों को (दूढ्या) दुष्टबुद्धि—अन्यथा विचार से† (न-आधृषे) कोई भी नहीं दबा सकता है (यः-त्वा पृतन्यति) जो तुझे—तेरे साथ संग्राम चाहता है परमात्मन् ! तू उसे (रुजः) भग्न कर देता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ २३ १२ ३१२ ३१२
1616 तꣳ हिन्वन्ति मदच्युतꣳ हरिं नदीषु वाजिनम् ।
२ ३१ २ ३२
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥ ऋ० ९-५३-४

(तम्) उस—(मदच्युतम्) हर्ष बहाने वाले (हरिम्) दुःखहर्ता—(वाजिनम्) बलवान्—(मत्सरम्) आनन्दस्वरूप—(इन्दुम्) दीप्त परमात्मा को (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (नदीषु हिन्वन्ति) स्तुतिधाराओं में‡ उपासकजन प्राप्त करते हैं* ॥ ४ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब का मित्र और सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

---

* "व्रतं कर्मनाम" [निघ० २।१]

† "धीः प्रज्ञानाम" [निघ० ३।९]

‡ "नदः-नदतेः स्तुतिकर्मणः" [निरु० ५।२]
"नदति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

* "हिन्वन्ति....आप्नुवन्ति" [निरु० १।२०]

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ १
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९७)

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
वृत्रखादो बलꣳ रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥२॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (वृत्रखादः) पाप का भक्षक—नाशक❀ (बलं रुजः) वरण—वारक—अज्ञान भञ्जक† (पुरां दर्मः) मन का विदीर्णकर्ता—मनोवृत्तिहर्त्ताऽ (अपाम्-अजः) कामनाओं‡ वासनाओं को निकाल फेंकने वाला (रथस्य स्थाता) रमणीय* मोक्षानन्द का स्थापक—प्राप्त कराने वाला (हर्योः-अभिस्वरः) ऋक और साम°—स्तुति और उपासना के अर्चन-सेवन में§ (दृढा-चित्-आरुजः) दृढ़ दुर्वृत्तियों का भी अस्तव्यस्त करने वाला है ॥ २ ॥

❀ "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

† "बलं वृणोतेः" [निरु० ६।२]

ऽ "मन एव पुरः" [श० १०।३।५।७]

‡ "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०।५।४।१५]

* "रथो……रममाणोऽस्मिन् तिष्ठतीति" [निरु० ९।११]

° "ऋकसामे वा इन्द्रस्य हरी" [ऐ० २।२४]

§ "स्वरति अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

३ १ २३ १ २३१२ ३ १२
गम्भीराँ उदधीँ रिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
१ २ ३ १र १र ३१ २ ३२३ १ २
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥

(गम्भीरान्-उदधीन्-इव) हे परमात्मन् ! तू गहरी जलधाराओं को जैसे, तथा (गाः-इव) गौओं को जैसे (सुगोपाः) अच्छा रक्षक राजा रक्षित करता है उनकी रक्षा करता है ऐसे तू (क्रतुं पुष्यसि) प्रज्ञावान्* उपासक को पुष्ट करता है (धेनवः-यथा यवसम्) गौएं जैसे घास को (कुल्याः-इव ह्रदम्-आशत) नहरें जैसे महान् जलाशय—नद को प्राप्त होती हैं ऐसे तुझे उपासक प्राप्त होते हैं† ॥ ३ ॥

चतुर्थ द्व्यृच

ऋषिः—देवातिथिः (इष्टदेव परमात्मा में अतन गमन-प्रवेश करनेवाला उपासक)
देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १र २र
यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २०२)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधो देयाय सुन्वते ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
आमुष्या सोममपिबश्चमूसुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥२॥

---

* "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघ० ३।९]
† उपमेयलुप्तालङ्कारः ।

(मघवन्-इन्द्र) हे अध्यात्मयज्ञ के आधार परमात्मन्! (त्वा) तुझे (इन्दवः-मदन्तु) आर्द्रभावनापूर्ण उपासनारस हर्षित करें (राधः-देयाय सुन्वते) राधनीय—साधनीय मोक्ष देय दातव्य जिससे है अतः उपासनारस निष्पादन करते हुए उपासक के लिये (आमुष्य सोमम्-अपिवः) सामने आ—साक्षात् होकर* उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर—करता है पर निश्चय है, और (चमू सुतम्) चमनी—आचमनी† वाक्—वाणी के अन्दर निष्पन्न किया है उसे स्वीकार कर (तत्-ज्येष्ठं सहः-दधिषे) मुझ उपासक के अन्दर उस अपने श्रेष्ठ साहस को‡ धारण कराता है ॥ २ ॥

पञ्चम द्वयृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के अन्दर अत्यन्त गतिशील)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १९८)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
मा ते राधाꣳसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदाचनादभन् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२॥

---

* "आमुष्य उपसर्गबलाद्धातोरर्थविकरणं 'विशिष्टत्वकरणं' भवति" [निरु० १।३]

† "कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः चमूः" [उणा० १।८०]

‡ "सहोऽसि सहोमयि धेहि" [यजु० १९।९]

(वसो) हे वसाने वाले परमात्मन् ! (ते राधांसि) तेरे ज्ञान आदि धन (अस्मान् कदाचन) हमें कभी भी (मा दभन्) नहीं दबाते—नहीं सताते (ते-ऊतयः) तेरी रक्षाएं हमें कभी नहीं दबाती—सताती हैं अन्य जन को सता सकती हैं (मानुष) हे हम मननशील उपासकों के हितकर परमात्मन् ! (च) और (नः-चर्षणिभ्यः) हम दर्शनेच्छुकों के (विश्वा वसूनि) सब वसाने वाले निर्वाहक धनों को भी (आ-उपमिमीहि) समन्तरूप में उपस्थापित कर ॥ २ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वामदेव : (वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)

देवता—उषाः *(परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मा की ज्योति)

छन्दः—गायत्री ।

1624 प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परिस्वसुः ।

दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥ ऋ॰ ४-५२-१

(स्या) वह परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मज्योति (सूनरी) उपासकों की सुनेतृत्व करने वाली (जनी) उत्तम जीवन देनेवाली (स्वसुः परि) सम्यक् अज्ञान को फेंकने वाली† मानवीय ज्ञान

---

* "अत्र स्त्रीलिङ्गे परमात्मरूपादीप्तिर्लक्ष्यते यथाऽन्यत्र वागम्भृणी पारमेश्वरी [ऋ॰ १०।१२५]

† "स्वसा-सु-असा" [निरु॰ ११।३३]

से ऊपर (व्युच्छन्ती) अन्दर प्रकाशित होती हुई (दिवः-दुहिता प्रति-अदर्शि) मोक्षधाम की दोहने वाली उपासक के अन्दर प्रत्यक्ष होती है ॥ १ ॥

१ २　　३ १ २　　३ १र　　२र ३ १ २
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।
१ २　　३ १ २ ३ २
सखा भूदश्विनोरुषाः ॥२॥

(उषाः) परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मज्योति (अश्वा-इव) व्यापनशील※ (चित्रा) चायनीया दर्शनीया (अरुषी) आरोचमान† (गवां माता) स्तोताओं‡ का मान करनेवाली (ऋतावरी) अमृतवाली* (अश्विनोः-सखाः-अभूत्) श्रोत्रों—कानों° की सखा—समान ख्यान धर्मवाली है, कान सुनते हैं, वह भी उपासक की स्तुति सुनती है ॥ २ ॥

३ १र　२र　　३ १ २ ३ २　३ १र　　२र
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
३ २ ३ १ २
उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥

(उत-अश्विनोः सखा-असि) हां तू कानों की सखा—समान ख्यान—समान धर्मवाली है (उत गवां माता) और स्तुतिकर्ताओं का मान करने वाली है (उत) और (उषः) तू परमात्मरूप

※ "इवोऽपि दृश्यते पदंपूरणः" निरु० १।१०]
† "अरुषीरारोचनाः" [निरु० २।१६]
‡ "गौः स्तोतृनाम" [निघ० २।१६]
* "ऋतममृतमित्याह" [जै०१६०]
° "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० [illegible]]

दीप्ति या परमात्मज्योति (वस्वः-ईशिषे) जगत् की वस्तुमात्र का* स्वामित्व करती है ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—प्रस्कण्वः (मेधावी का पुत्र† प्रकृष्ट मेधावी उपासक)

देवता—अश्विनौ देवते (ज्ञानप्रकाशस्वरूप एवं आनन्दरस-रूप दोनों धर्म वाला परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत्।

१६२८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥ ऋ० १-४६-१

(एषा-उ-उषाः) अहो यह उषा—परमात्मरूप दीप्ति या परमात्मज्योति (अपूर्व्या प्रिया) सर्वश्रेष्ठ समाधि प्रज्ञा में साक्षात् होने वाली तृप्तिकारी (दिवः-व्युच्छति) मोक्षधाम से‡ उपासक के अन्दर प्रकाशित हो रही है (अश्विना वां बृहत् स्तुषे) हे ज्ञानज्योतिस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मन्! तुझे—तेरी बड़ी स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

१६२९ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्।
धिया देवा वसुविदा ॥२॥ ऋ० १-४६-२

---

* "यद्वै किञ्च विन्दते तद् वसु" [काठ० १०।६]

† "प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः" [निरु० ३।१७]

‡ "त्रिपादस्यामृतंदिवि" [ऋ० १०।९०।३]

(या दस्रा) जो दर्शनीय※ (सिन्धुमातरा) स्यन्दमान उपासनारस का मान कराने वाले जिसके हैं ऐसा दोनों धर्मों युक्त (रयीणां मनोहरा) धनों के मन को धन संग्रह के मनो विचार को हराने हटाने वाला (धिया वसुविदा) ध्यान धारणा से वसाने योग्य वस्तु को प्राप्त कराने वाला (देवा) इष्टदेव उपास्य ज्योतिस्वरूप आनन्दरसरूप परमात्मा है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

(ककुहासः) महान् आत्मा जीवन्मुक्त† (जूर्णायाम्) जीर्ण तनु अन्तिम देह समाप्त होजाने पर (अधिविष्टपि) मोक्षधाम में‡ (वां वच्यन्ते) तुझ परमात्मा को प्राप्त होते हैं* (यत्-वाम्-रथः) जो तेरा रमणस्थान मोक्ष (विभिः-पतात्) उपासकों द्वारा प्राप्त किया जाता है° ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला उपासक)

※ "दस दर्शने" [चुरादि०[ततो रक [उणा० २।१३]

† "ककुहो महन्नाम" [निघ० ३।३]

‡ "तदेव ब्रध्नस्य विष्टपं तस्मिन्नेतद् देवाः सर्वान् कामान् दुहे" [जै० ३।३३९]

"यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् । तत्र माममृतं कृधि" [ऋ० ९।११३।१०]

* "वञ्चुगत्यर्थः" [भ्वादि०] कर्तरि कर्मप्रत्ययश्छान्दसः ।

° "कर्मणि कर्तृप्रत्ययश्छान्दसः ।

देवता—उषाः (परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति)

छन्दः—उष्णिक् ।

२ ३ २ ३१२ २२३ १ २
1631 उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
१ २ ३ २ ३ १२ ३ १२
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१॥ ऋ॰ १-९२-१३

(वाजिनीवति-उषः) हे अमृत अन्नवाली परमात्मदीप्ति ! या परमात्मज्योति ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (तत्-चित्रम्-आभर) उस चायनीय दर्शनीय अमृत अन्नभोग को आभरित कर (येन) जिससे (तोकं तनयं च धामहे) तोदने में व्यथित करने वाले मन को* और इन्द्रियगण को† तेरे अन्दर धरते समर्पित करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३१२ २२३ १ २
1632 उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
३२३ १ २
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥२॥ ऋ॰ १-९२-१४

(उषः) हे परमात्मस्वरूप दीप्ति ! या परमात्मज्योति ! तू (अद्य) आज—अब (इह) इस जीवन में (गोमति) वाक्—विद्यावाली—ज्ञान देने के लिये (अश्वावति) व्यापनशील मन-वाली—मननशक्ति देने के लिये (विभावरि) विशेष मतिवाली—विशिष्ट बुद्धि या सूझ देने के लिये (सुनृतावति) उत्तम वाणी वाली सुसंयत सत्यवाणी देने के लिये (अस्मे) हमारे

* "तोकं तुद्यतेः, तनयं तनोतेः" [निरु॰ १०।७]

† "तुद व्यथते" [तुदादि॰]

"तनु श्रद्धोपकरणयोः" [चुरादि॰] उपकरणम्-इन्द्रियम् ।

लिये* (रेवत्-व्युच्छ) वीर्य† आत्मबलयुक्त प्रकट हो—साक्षात् हो ॥ २ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ ३ १ २
युङ्क्ष्वाहि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणां उषः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा नो विश्वा सौभगान्यावह ॥३॥

(वाजिनीवति-उषः) हे अमृत अन्नभोगवाली परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति ! तू आज (अरुणान्-अश्वान् युङ्क्ष्वहि) ओरोचन‡ ज्ञान से प्रकाशमान तथा ईश्वर° इन्द्रिय संयम में प्रकृष्टयुक्त समर्थ उपासकों को अपने में अवश्य युक्त कर (अथ) अनन्तर (नः) हमारे लिये (विश्वा सौभगानि) सारे सौभाग्यों को (आवह) ले आ—प्राप्त करा ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—अश्विनौ (ज्ञानज्योतिस्वरूप और आनन्दरस पूर्ण परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
अश्विना वर्त्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ।
३ २उ ३ १ १ ३ १ २
अर्वाग्रथं समनसा नियच्छतम् ॥१॥

---

* "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे...." [अष्टा० ७।१।३९] इति शे

† "वीर्यं वै रयिः" [श० १३।४।२।१३] "रयेर्मतौ सम्प्रसारणम्" [अष्टा० ६।१।३४]

‡ "अरुष आरोचनः" [निरु० ५।२१]

° "ईश्वरो वा अश्वः प्रयुक्तः परा परावतो गन्ता" [तै० ३।८।६।३]

(दस्रा-अश्विना) हे दर्शनीय ज्योतिस्वरूप एवं आनन्दस्वरूप परमात्मन्! (अस्मत्-वर्त्तिः) हमारा* अध्यात्ममार्ग† (गोमत्) स्तुतिवाला‡ (हिरण्यवत्) अमृतवाला°—अमृतानन्दवाला हो (रथम्) इस अध्यात्ममार्ग में रथरूप, अपने रमणीय स्वरूप को (अर्वाक्) इधर—हमारी ओर (समनसा) समान मन हुआ (नियच्छतम्) नियतकर स्थिर कर ॥ १ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
1632 एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी ।
३ १ २ ३ १ २
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥२॥ ऋ० १-९२-१८

(मयोभुवा) हे सुखों को भावित करने वाले—(हिरण्यवर्तनी) हृदयरमण मार्गवाले§—(दस्रा) दर्शनीय (देवा) दिव्य गुणवाले—परमात्मन्! (इह) इस अध्यात्ममार्ग में चलने, वर्तमान (उषर्बुधः) तेरी ज्योति को समझनेवाले उपासक जन (सोमपीतये) तु उपासनारस को पान कराने—स्वीकार कराने के लिये (आवहन्तु) तुझे प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

२ ३ १उ १ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
1633 यावित्था श्लोकमादिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
२ ३ १ २ ३ २
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥३॥ ऋ० १-९२-१६

---

* "सुपां सुलुक्……" [अष्टा० ७।१।३२] इति अस्मत् शब्दात् षष्ठी विभक्तेर्लुक् ।

† वर्तते गतिकर्मा" [निघ० २।१४] "वृतेश्छन्दसि-इन्" [उणा० ४।१४१]

‡ "गौः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]

° "अमृतं वै हिरण्यम्" [श० ६।४।४।५]

§ "हिरण्यं……हृदयरमणम्" [निरु० २।१०]

(यौ) जो ज्योतिस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मा (इत्था) सत्य*—अविनाशी (श्लोकं ज्योतिः) प्रशंसनीय या ज्ञान ज्योति को† (दिवः) मोक्षधाम से (युवम् 'युवाम्'-अश्विना) तू हे ज्योतिस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मन्! (जनाय चक्रथुः) उपासकजन के लिये प्रकाशित करता है (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्-आवहतम्) अध्यात्मरस को प्राप्त करा ॥ ३ ॥

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—वसुश्रुतः (वसानेवाले परमात्मा का श्रवण किया जिसने ऐसा उपासक)

देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—पंक्तिः ।

३ १२ २२ ३ २उ ३२ ३ १२ २२ ३ १२
1636 अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
२ ३ १२ ३२उ ३ १ २ ३ २ १२ ३ २ ३ १२
4२५ अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

ऋ० ५-६-१ (देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५१)

३२उ ३ १२ ३ १२ २२ ३ १२
1632 अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
३ २ ३२ ३२३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १२
अग्नी राये स्वाभुवꣳ स प्रीतो याति वार्यमिष स्तोतृभ्य आभर ॥२॥

ऋ० ५-६-३

---

* "इत्था सत्यनाम" [निघ० ३।१०]

† "श्लोकः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]

(विश्वचर्षणिः-अग्निः-हि) सर्वद्रष्टा अग्रणायक परमात्मा ही (विशे) उस में विष्ट-प्रविष्ट उपासक प्रजाजन॥ के लिये (वाजिनं ददाति) आत्मबल को देता है† (सः-अग्निः) वह अग्रणायक परमात्मा (प्रीतः) प्रसन्न हुआ (राये स्वाभुवं याति) उसमें रमण करने वाले या रमणीय‡ प्रिय उपासक के लिये अपने सम्यक् प्रकटरूप—साक्षात् स्वरूप को° प्राप्त कराता है§ (स्तोतृभ्यः-इषम् आभर) स्तुतिकर्ताओं के लिये एषणीय सुख को आभारित कर ॥ २ ॥

२ ३ १२ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सो अग्नियो वसुर्गृणे सं यमा यन्ति धेनवः ।
१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
समर्वन्तो रघुद्रुवः स सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आभर ॥३॥

(सः-अग्निः यः-वसुः-गृणे) वह अग्रणायक परमात्मा जो मोक्षधाम में वसाने वाला उपासकों द्वारा स्तुत किया जाता है (यं धेनवः सम्-आयन्ति) जिसे स्तुतिवाणियां॥ सम्यक् प्राप्त करती हैं (रघुद्रुवः-अर्वन्तः) मृदुगति करने वाले एवं प्रेरणा

॥ "आद्या ही मनः प्रजाविशः" [श० ४।२।१।१७]

† वाजिन शब्दोऽकारान्तोबलार्थः, यथा "वाजिना वाजिनम्" [मै० १।१०।१]

‡ "राये....." [ऋ० १।८४।१७] अत्र निरुक्तम् "राय-रणाय रमणीय" [निरु० १४।३६]

° 'सु-आभुवम्' इति पदपाठः, सु-आभूः-सम्यक् प्रकटभावः, यथा "इयं निसृष्टिर्यत आबभूव" [ऋ० १०।१२६।७] "प्राणं वा अनुप्रजाः पशव आभवन्ति" [जै० ३०२।२।४]

§ याति-यापयन्ति अन्तर्गतणिजर्थः ।

॥ "धेनुः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]

वाले* अपने को अर्पित करने वाले (सुजातासः सूरयः सम्) शुद्ध संयत स्तुतिकर्ता† सम्यक् प्राप्त करते हैं (स्तोतृभ्यः-इषम्-आभर) उन स्तुतिकर्ताओं के लिये एषणीय सुख को आभरित कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—सत्यश्रवाः (सत्यस्वरूप परमात्मा श्रवणीय है जिसका)

देवता—उषाः (परमात्मा की दीप्ति या ज्योतिः)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
यथाचिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३४७)

१ २ ३ १ २ ३१र २र
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

(या) जो तू परमात्मा की दीप्ति या ज्योति ! (सुनीथे) हे अध्यात्ममार्ग में शोभननेत्री—सम्यक् ले जाने वाली‡ (शोचद्रथे) प्रकाशमान रमणीय स्वरूप वाली (दिवः-दुहितः) मोक्षधाम की तत्रस्थआनन्दरस की दूहनेवाली (व्यौच्छ) तू मुझ

* "अर्वैरणवान्" [निरु० १०।३१]
† "सूरिः स्तोतृनाम" [निरु० ३।१६]
‡ "नी धातोः क्थन् प्रत्ययः" [उणा० २।२]

उपासक के अन्दर प्रकाशित हो (सा सहीयसि व्युच्छ) वह तू पापों अज्ञानों को अत्यन्त प्रसहन करने दबाने वाली मेरे अन्दर प्रकाशित हो, तथा (सत्यश्रवसि) हे सत्यस्वरूप परमात्मा का श्रवण कराने वाली (वाय्ये) वरणीय (सुजाते) सुप्रसिद्ध (अश्वसुनृते) व्यापक परमात्मा की वाणी जिस में हो ऐसी परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति मेरे अन्दर प्रकाशित हो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३१ २ ३क २र
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसुनृते॥३॥

(सा) वह तू परमात्मा की दीप्ति या ज्योति ! (आभरद्वसुः) वसाने वाले परमात्मा को आभरित करती हुई (दिवः-दुहितः) हे मोक्षधाम की दूहने वाली (अद्य) आज—इस जन्म में मुझ उपासक के अन्दर प्रकाशित (या-उ) जो ही तू (व्युच्छः) प्रकाशित हो चुकी पूर्व भी (सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसुनृते) पापों अज्ञानों को प्रसहन करने वाली दबाने वाली सत्यस्वरूप परमात्मा का श्रवण कराने वाली वरणीय सुप्रसिद्ध व्यापक परमात्मा की वाणी जिसमें है ऐसी तू मुझ उपासक के अन्दर प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—अवस्युः (परमात्मप्राप्ति का इच्छुक)

देवता—अश्विनौ (ज्ञानज्योतिःस्वरूप और आनन्दरसरूप परमात्मा)

छन्द—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमꣳ रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३४५)

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहꣳ सना ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥

(अश्विना) हे ज्योतिस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन् ! (अहं सना विश्वाः-तिरः) मैं उपासक सदा सारी कामनाओं को—वासनाओं चित्तवृत्तियों को तिरस्कृत करता हूँ, अतः तू (आयातम्) समन्तरूप से प्राप्त हो (दस्रा) हे दर्शनीय (हिरण्यवर्तनी) हृदयरमण मार्ग वाले (सुषुम्णा) शोभन सुख वाले—शोभन सुखप्रद (सिन्धुवाहसा) स्यन्दशील—बहते हुए उपासनारसों को प्राप्त करने वाला (माध्वी) जीवन में अध्यात्म मधु लाने वाले परमात्मन् ! (मम हवं श्रुतम्) मेरे प्रार्थनावचन सुन ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३

(अश्विना) हे ज्योतिस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन् ! (युवम्-'युवाम्') तू (नः) हम उपासकों के लिये (रत्नानि बिभ्रता) रमणीय सुख साधनों को धारण करता हुआ (आगच्छतम्) आ—प्राप्त हो (रुद्रा) हमें बुलाता हुआ* (हिरण्य-

* "रुद्रो रौतीति सतः" [निरु० १०।६]

वर्तनी) हितरमण मार्ग वाला (जुषाणा) हम उपासकों को प्रेम करता हुआ (वाजिनीवसु) अमृत अन्नवाला* मुक्ति में बसाने वाला (माध्वी मम हवं श्रुतम्) जीवन अध्यात्म मधु लाने वाले परमात्मन् ! मेरे प्रार्थना वचन को सुन ॥ ३ ॥

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—बुधगविष्ठरावृषी (ज्ञानी और स्तुतिवाणी में स्थिर)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छं ॥१॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ६३)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

(होता-अग्निः) स्वीकारकर्ता ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (यजथाय देवान्-अबोधि) अध्यात्मयज्ञ करने के लिये मुमुक्षु-उपासकों को सावधान करता है (सुमनाः) शोभन मनोभाव जिससे हो ऐसा है (प्रातः-ऊर्ध्वः-अस्थात्) जीवन के प्रकृष्ट मार्ग

* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

करते हुए बढ़ते समय में उत्कृष्ट रूप में* आत्मा में साक्षात् होता है जरावस्था में नहीं (समिद्धस्य रुशत् पाजः) प्रसिद्ध हुए का प्रकाशमान बलस्वरूप† साक्षात् होता है (महान् देवः) महान् देव परमात्मा (तमः-निरमोचि) अज्ञानान्धकार से छुड़ा देता है॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

(यद्-ईम्-अग्निः) जब यह ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (गणस्य रशनाम्) स्तुतिकर्ता की‡ रसीली स्तुति को* (अजीगः) प्राप्त करता है तो (शुचिः) प्रकाशमान एवं पवित्र परमात्मा (शुचिभिः-गोभिः-अङ्क्ते) प्रकाशमान वाग्ज्योतियों—ज्ञानधाराओं से युक्त कर देता है, तब (दक्षिणा) उपासक की कामना° (वाजयन्ती) अमृतअन्नभोग को चाहती हुई* (आयुज्यते) पूरी हो जाती है (उत्तानाम्) उस उत्कृष्ट कामना को (जुहूभिः) स्तुतिवाणियों से§ (ऊर्ध्वः-अधयत्) ऊपर संरक्षक बन उसे अपना आनन्दरस पिलाता है ॥ ३ ॥

---

* "युवैव धर्मशीलः स्यात्" [महाभारत शान्ति० मो० १७५]
† "पाजः-बलनाम" [निघ० २।९]
‡ "गणः, गणा-वाङ्नाम" [निघ० १।११]
* "ऊर्ध्वं रशना" [तै० सं० ६।१।४।५]
° "कामो वै दक्षिणा" [मै० १।९।४]
* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]
§ "वाग् जुहूः" [ऐ० आ० २।१७।२]

द्वितीय तृच

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतियों का कर्ता उपासक*)

देवता—उषाः (परमात्मदीप्ति या परमात्मज्योति)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१॥

(इदं श्रेष्ठम्) यह श्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः-आगात्) ज्योतियों की ज्योति मेरे अन्दर आगई—साक्षात् होगई (चित्रः-विभ्वा प्रकेतः) चायनीय-दर्शनीय मेरे अन्दर बाहिर व्याप्त चेतानेवाला प्रकाश है (यथा प्रसूता सवितुः सवाय) जैसे सविता—उत्पादक परमात्मा के साक्षात् कराने के लिये समाधिप्रज्ञा होती है, सो (रात्रि-उषसे योनिम्-आरैक्) पापवासना† दूर होकर परमात्म-ज्योति के लिये स्थान रिक्त कर देती है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ २ १ २ ३ २
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२॥

(रुशद्वत्सा रुशती) ज्ञानप्रकाशक वेद है वक्ता जिसका ऐसी परमात्मज्योति चमचमाती हुई (श्वेत्या-आगात्) निर्मल वाणी शुभ्ररूपा मुझ उपासक में साक्षात् होगई—होती है (अस्याः सद-

* "ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३।१२]

† "पाप्मा रात्रिः" [कौ० १७।६]

नानि कृष्णा-आरैक्-उ) इसके स्थानों—'मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार' को पापवासना ने रिक्त कर दिया (समानबन्धू) ये दोनों परमात्मज्योति और पापवासना समान आश्रयवाली—आत्मा में अनुभूत होनेवाली (अमृते) संसार में सदा रहनेवाली (अनूची) एक दूसरे के पीछे अनुगत होती है—पर्याय से अनुभूत होती है (आमिनाने द्यावा वर्णं चरतः) एक दूसरे की तुलना में आई हुई अपने अपने घने ज्ञानप्रकाश और घने पापभाव को प्राप्त होती है ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २उ३ १ २ ३ १ २
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न मेथते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषसा समनसा विरूपे ॥३॥

(स्वस्रोः) परमात्मज्योति और पापवासना दोनों बहिन जैसियों का (समानः-अध्वा) समान अनन्तमार्ग है, परम्परा से, प्रवाहरूप (तं देवशिष्टे-अन्या-अन्या चरतः) उसको मन* द्वारा प्रेरित या लक्षित दोनों भिन्न भिन्न हुई कार्य करती हैं—अपवर्ग—मोक्ष और भोग—संसार में ले जाती है (नक्तोषसा) नक्त—न-अक्त—जिसमें कल्याण नहीं सूझता, वह पापवासना और उषा-बोध देने वाली परमात्मज्योति दोनों (विरूपे) भिन्न भिन्न रूप-वाली—वस्तु को अलग अलग निरूपित करनेवाली (समनसः) एक मन से अनुभूत होने वाली (सुमेके न मथेते न तस्थतुः) समानकाल संवत्सर में† हिंसित नहीं करते न ठहरते हैं—उपासक में परमात्मज्योति, भोगी नास्तिक में पापवासना, चलती रहती है ॥ ३ ॥

* "मनो देवः" [गो० १।२।१०]

† "सुमेकः संवत्सरः" [श० १।७।२।२६]

तृतीय तृच

ऋषिः—अत्रिः* (इस जन्ममें तृतीयधाम मोक्ष को प्राप्त करने योग्य होजाने वाला उपासक)

देवता—अश्विनौ (ज्योतिःस्वरूप परमात्मा एवं आनन्दरसरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत्।

१६४२ आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

(उषसाम्) कामनाओं का† (अनीकम्-अग्निः) आधार ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (आ भाति) उपासक आत्मा में समन्तरूप से भासित होता है-साक्षात् होता है, जिसको (विप्राणां देवया-वाचः-उदस्थुः) ब्राह्मणो‡—ब्रह्मज्ञानियों—उपासकों की देव तक जानेवाली—स्तुतिवाणियां उसमें आश्रित होती हैं वही (अश्विना) ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! तू (रथ्या) रमणीय मोक्षधाम के स्वामिन्! (नूनम्) निश्चय (अर्वाञ्चा) इधर प्रवृत्त हुआ (इह) इस जीवन में (पीपिवांसं घर्मम्) प्रवृद्ध अध्यात्मयज्ञ को (आयातम्) भलीभांति प्राप्त हो॥१॥

१६४३ न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।

---

* "अत्रैव तृतीयमृच्छतेत्यूचुस्तस्मादत्रिः" [निरु० ३।१७]

† "उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः" [निरु० १२।६]

‡ "ब्राह्मणा ह वै विप्राः" [जै० ३।८४]

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥

(उपस्तुता-अश्विना) पास से स्तुत किया गया ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मा (संस्कृतं न प्रमिमीतः) सम्पन्न अध्यात्मयज्ञ को हिंसित नहीं करता है अपितु बढाता रक्षित करता है (इह) इस अध्यात्मयज्ञ में (अन्ति नूनं गमिष्ठा) समीप—आन्तरिक भाव से निश्चय प्राप्त होने वाला है (दिवा-अभिपित्वे) दिन के अभिप्राप्त—उभयतः प्राप्त—प्रातःकाल और सायंकाल में (अवसा) रक्षण साधन से (आगमिष्ठा) समन्त-रूप प्राप्त होने वाला है (अवर्ति प्रति) वृत्तिरहित चित्त को लक्ष्य कर (दाशुषे) समर्पित करनेवाले उपासक के लिये (शम्-भविष्ठा) कल्याणरूप होनेवाला है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उतायातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

(अश्विना) हे ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन् ! (उत-आयातम्) हमें आ—प्राप्त हो (सङ्गवे) जिसमें सूर्यकिरणें सूर्य में मिल जाती हैं या गौएं जङ्गल से चरकर घर में प्राप्त होती हैं उस ऐसे सायं समय में, तथा (प्रातः) प्रातःकाल में (अह्नः-मध्यन्दिनं) दिन के मध्याह्न में (सूर्यस्य-उदिता) सूर्य के उदय होने पर (दिवानक्तम्) दिन रात में जब भी (शन्तमेन-अवसा-आयातम्) कल्याणकारी मार्ग से आ—प्राप्त हो (इदानीं पीतिः न-आततान) इस समय विषय पान—भोग को उपासक नहीं सेवन करता है ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिशील उपासक)

देवता—उषाः (परमात्मज्योतिः)

छन्दः—जगती ।

३ २ ३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रतिगावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥१॥

(एताः-त्याः-उषसः-उ) यह वह ही परमात्मज्योति* (रजसः-पूर्वे-अर्धे) रञ्जनात्मक भोगापवर्गरूप फल के श्रेष्ठ तथा समृद्ध† स्थान—मोक्षधाम में (भानुम् अञ्जते) प्रकाश अध्यात्म को युक्त करती हैं (केतुम्-अक्रत) मुक्तात्मा को प्रज्ञानमय बनाती है (धृष्णवः-निष्कृण्वाना-आयुधानि-इव) जैसे शत्रुधर्षणशील अपने शस्त्रों को चमकाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ऐसे (अरुषीः-गावः-मातरः प्रतियन्ति) आरोचन—प्रकाशमान ज्ञानरश्मि सबके निर्माण करने वाली, परमात्मज्योति, भोगरूप संसार के निर्माणार्थ पुनः प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

---

* "पूजार्थं बहुवचनम्" [निरु० १२।७]

† "अर्धः ऋध्नोते वी" [निरु० ३।६]

(उषासः-वयुनानि पूर्वथा-अक्रन्) परमात्मज्योति उपासक के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार को* पूर्ववत् वृत्तिरहित शुद्ध कर देती है (रुशन्तं भानुम्-अरुषीः-अशिश्रयुः) निर्मल प्रकाशमान ज्ञानवान् आत्मा को रोचमान परमात्मज्योति आश्रित हो जाती है—प्राप्त हो जाती है (स्वायुजः-अरुषीः-गाः-वृथा-अधुक्षत) स्वयं युक्त होने वाली आरोचमान ज्ञानरश्मि अनायास स्वभावतः उपासक में युक्त हो जाती है (भानवः-अरुणाः-उदपप्तन्) ज्ञान से भासमान आरोचमान हुई—उपासकजन को मोक्षधाम की ओर उत्थान कराती हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

(नारीः-विष्टिभिः) नेत्री देवियां, निविष्ट स्वभाववाली—प्राप्त प्रवृत्तियां से जैसे (समानेन योजनेन) समान धर्म्य प्रकार से (परावतः) परागत दूरदेश से† आए (अपसः 'अपस्वन्तः') कर्मवान् की सेवा करती है ऐसे (सुकृते सुदानवे) सुकर्ता—सुगम कर्मकर्ता तथा शोभनदानी—आत्मदानी (सुन्वते) उपासनारस निकालनेवाले—(यजमानाय) उपासक आत्मा‡ के लिये (इषं वहन्तीः) कामना को वहन करती—प्राप्त करती हुई (विश्वा-इत्) सब सुखों को प्राप्त कराती है ॥ ३ ॥

---

* "वयुनं प्रज्ञानम्" [निघ० ३।९]

† "परावतः परागताद्वा" [निरु० ११।४८]

‡ "आत्मा यजमानः" [कौ० १७।७]

द्वितीय तृच

ऋषिः—दीर्घतमाः (दीर्घकाल से अज्ञानान्धकार जिस में है या आयु को चाहने वाला*)

देवता—अश्विनौ (ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१६५८

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यूषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥

ऋ० १-१५७-१

(अश्विना) हे ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन् ! तू (रथे) संसार रथ में (यातवे) उसे चलाने के लिये (आयुक्षाताम् 'आयुक्षाथाम्')† समन्तरूप से युक्त होता हो तो (ज्मः-अग्निः-अबोधि) पृथिवी का अग्नि—पार्थिव अग्नि जागता है—प्रकट होता है (सूर्यः-उदेति) सूर्य उदय होता है (मही चन्द्रा-उषाः-अर्चिषा वि-आवः) महती आह्लादकारी—प्रसन्नता देनेवाली उषा प्रभातज्योति तेज के साथ प्रकट होती है (सविता देवः) वायु‡ देव (पृथक्-जगत्) पृथक् पृथक् जगत्—जङ्गम श्वास लेने वाला गति करने वाले प्राणीमात्र को प्रकट करता है ॥ १ ॥

१६५९

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

ऋ० १-१५७-२

---

* "आयुर्वैदीर्घम्" [तां० १३।११।१] "तमु कांक्षायाम्" [दिवादि०]

† पुरुष व्यत्ययेन मध्यमस्थाने प्रथमः पुरुषः ।

‡ "वायुरेव सविता" [गो० १।१।३३]

(अश्विना) हे ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मन्! (यम्-वृषणं रथं युञ्जाथे) जब संसार रथ से भिन्न मन रथ॰ रमण स्थान को—में युक्त होता है (नः) हमारे लिये (मधुना घृतेन क्षत्रम्-उक्षतम्) मधुर तेज से ओज† आत्मबल को सींचता है (अस्माकम् 'अस्मासु' पृतनासु ब्रह्म जिन्वतम्) हम उपासक जनों में‡ अमृत* को प्रेरित कर (शूरसाता वयं धना भजेमहि) बलवान्—प्रबल कामादि संघर्ष° में अध्यात्मधनों—शम दम आदि को भजें—सेवन करें ॥ २ ॥

७६८०

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३

ऋ- १.१५७.३

(अश्विनोः) ज्योतिःस्वरूप एवं आनन्दरसरूप परमात्मा का (मधुवाहनः) आत्मा को ऽ वहन करने वाला (त्रिचक्रः) तीन तृप्तियों वाला—कर्मेन्द्रियों ज्ञानेन्द्रियों और मन की तृप्ति करने वाला * (जीराश्वः) क्षिप्र शीघ्र व्यापन शक्तिवाला (रथः) रमणीय स्वरूप (सुष्टुतः) सम्यक् प्रशंसनीय (अर्वाङ्यातु)

॰ "वृषा हि मनः" [श० १।४।४।३]

† "ओजः क्षत्रम्" [तै० सं० ५।३।४।२]

‡ व्यत्ययेन सप्तमी स्थाने षष्ठी ।

// "पृतनाः-मनुष्याः" [निघ० २।३]

* "अथ यद् ब्रह्म तदमृतम्" [जै० उ० १।८।१।१०]

° "घावः क्युः" [उणा० २।८१]

ऽ "आत्मा वै पुरुषस्य मधुः" [तै० सं० २।३।२।६]

* "चक्रश्चक्रतेर्वा" [निरु० ४।२७] "चक्र तृप्तौ" [भ्वादि०]

हमारी ओर गति करें—हमें प्राप्त हो (त्रिबन्धुरः) तीन बन्धन वाला—स्तुति प्रार्थना उपासना है बान्धने वाले जिसके ऐसा (मघवा) ऐश्वर्यवान् (विश्वसौभगः) सारे सौभाग्य जिसमें है जिससे प्राप्त होते हैं ऐसा (नः) हमारे लिये (शम्-आवक्षत) कल्याण वहन करें—प्राप्त करावे (द्विपदे चतुष्पदे) दो पैर वाले के लिये चार पैर वाले के लिये भी ॥ ३ ॥

तृतीय चतुर्ऋच

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षण करते हुए परमात्मा के अनुसार चलनेवाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला शान्त-स्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

९६८। २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥ ऋ० - ९.५७-१

(ते धाराः-असश्चतः) हे परमात्मन् ! तेरी आनन्दधाराएं परस्पर न टकराती हुई—न* विरोध करती हुई* (सहस्रिणम्-अच्छ वाजं प्रयन्ति) सहस्रों में ऊंचे अच्छे अमृत अन्नभोग को प्रदान करती हैं (दिवः-न वृष्टयः) आकाश से वर्षा धाराएं जैसे भौमवाज †साधारण अन्न को देती हैं ॥ १ ॥

* "असश्चन्ती-असज्यमाने इति वा-अव्युदसन्त्याविति वा" [निरु० ५।२]

† "अमृतो अन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

३ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
१ २ ३ १र २र
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

(हरिः) दुःखहर्ता (विश्वा प्रियाणि काव्या) सारे प्रिय वेदवचनों को* (चक्षाणः-अभि-अर्षति) उपदिष्ट करता हुआ अभि प्राप्त होता है जो कि (आयुधानि तुञ्जानः) आयु—ध—स्तुतिकर्ता मनुष्यों को धारण करने वाले साधनों को पालित रक्षित करता हुआ अभिप्राप्त होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ ३ १ ३ १ २ ३ २
स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
३ १र २र
श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

(सः) वह परमात्मा (इभः) स्वयं भयरहित तथा उपासकों की भयरहित शरण† (राजा-इव) राजा के समान (सुव्रतः) श्रेष्ठ कर्मवान् (आयुभिः-मर्मृजानः) उपासकजनों‡ द्वारा स्तुति करके भूषित पूजित किया जाता हुआ (श्येन न वंसु-सीदति) शंसनीय गतिवाले पक्षी के समान सम्भागी—सम्भजन करने वाले उपासक आत्मा में विराजमान होता है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २र
स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
३ १ २ ३ १ २
पुनान इन्दवा भर ॥४॥

---

* "त्रयी वै विद्याकाव्यम्" [श० ८।५।३।४]

† "इभेन गतभयेन" [निरु० ६।१२]

‡ "आयवः-मनुष्याः" [निघ० ३।२]

(इन्दो) हे आर्द्ररस पूर्ण परमात्मन्! (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (दिवः-उत-उ पृथिव्याः-अधि) मोक्षधाम में स्थित भी पृथिवी लोक में स्थित भी (विश्वावसु) सब वसानेवाले साधनों उच्च ऐश्वर्यों—अध्यात्म ऐश्वर्यों को (पुनानः-आभर) हमारे द्वारा स्तुत किया जाता हुआ आभरित कर ॥ ४ ॥

इति एकोनविंश अध्यायः।

—()-:०:-()—

अथ विंश (बीसवां) अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु की मेधावाला उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१६५५ प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः ।
३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥ e-2e.1

(अस्य सुतस्य वृष्णः-धाराः) इस उपासित सुखवर्षक शान्तस्वरूप परमात्मा की आनन्दधाराएं (प्रभूषतः-देवान्-अनु) स्तुतियों द्वारा अलंकृत करते हुए प्रशंसित करते हुए विद्वानों—मुमुक्षु उपासकों के प्रति (ओजसः-'ओजसा') ओज से स्वतेज से (प्र-अक्षरन्) प्रवाहित होरही है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१६५६ सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरः ।
१ ३ २ ३ क २ २
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥ e-2e.2

(वेधसः) मेधावी* (गृणन्तः) गुणगान करते हुए (कारवः) स्तुतिकर्ताजन (सप्तिम्) अर्चनीया† (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय— (ज्योतिः) ज्योतिस्वरूप (जज्ञानम्) प्रसिद्ध—साक्षात् होनेवाले परमात्मा को (गिरा मृजन्ति) स्तुति द्वारा प्राप्त करते हैं‡ ॥ २ ॥

१६८६ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
१ २ ३ १ २
वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥ ९-२९-२

(प्रभूवसो-उक्थ्य सोम) हे भरपूर धनैश्वर्यवाले प्रशंसनीय शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (ते पुनानाय) तुझ अध्येषमाण—प्रार्थित किये जाते हुए या स्तुति द्वारा प्राप्त होते हुए के* (तानि सुषहा) वे सुशोभन सहन करने योग्य शान्त तेज हैं, उनसे (समुद्रं वर्ध) सम्यक्—उल्लास हाव भाव भरे उपासक पुरुष को° बढ़ा—समृद्ध कर ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—ऐश्वरयोधिष्ण्याः (ईश्वरज्ञान में कुशलवक्ताजन§)
नृमेधो वाऽ (मुमुक्षु बुद्धिवाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

---

* "वेधाः-मेधाविनाम" [निघ० ३।१५]

† "सपति अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

‡ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

* व्यत्ययेन षष्ठी स्थाने चतुर्थी षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि ।

° "पुरुषो वै समुद्रः" [जै० ३।६-७]

§ [पू० अ० ४।१०] सायणानुसारतः ।

ऽ उत्तरार्चिके सायणभाष्यतः ।

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः ।

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३६०)

१र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥२॥

(शवसः-पते) हे बल के स्वामिन् परमात्मन् ! (संयतः-गिरः-न) संयमी उपासक की स्तुतियां* (त्वाम्-इत्-यन्ति) तुझे ही प्राप्त होती हैं, अतः तू ही स्तुत्य उपासनीय है ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥३॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३७०)

तृतीय तृच

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको ऐसा उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुविकूर्मिं मृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २९३)

* "स्तुतयो गिरो गृणातेः....."[निरु० १।१०]
नकारोऽत्र सम्प्रत्यर्थो निश्चयार्थो वा, यथा [ऋ० ५।६१।२ निरु० ६।८]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।
१ २ ३ २
आ पप्राथ महित्वना ॥२॥

(तुविशुष्म) हे बहुत* बलवाले† (तुविक्रतो) बहुत कर्म—असंख्यात कर्म‡ जिसके हैं ऐसे (शचीवः) प्रज्ञावाले* (मते) मेधावी° परमात्मन् (विश्वया महित्वना) विश्व को प्राप्त होने वाला—व्यापनेवाली महिमा से (आ पप्राथ) समन्तरूप में प्रसारित हो—व्याप्त प्राप्त हो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
यस्य ते महिना महः परिज्मायन्तमीयतुः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३॥

(यस्य ते महः) जिस तुझ महान् परमात्मा की—(महिना) महिमा से (ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रम्) दिव्-द्युलोक—मोक्षधाम से पृथिवी तक§ पहुंचते हुए—चमकते हुए या अमृतऽ ओज को:: (हस्ता परिइयतुः) हस्तसमान—हंसानेवाले दोनों भोग संसार और अपवर्ग—मोक्ष दोनों प्राप्त कर रहे हैं ॥ ३ ॥

---

* "तुवि बहुनाम" [निघ० २।१]
† "शुष्म बलनाम" [निघ० २।६]
‡ "क्रतुः कर्मनाम" [निघ० २।१]
* "शची प्रज्ञानाम" [निघ० ३।६]
° "मतयो मेधाविनः" [निघ० ३।१५]
§ "ज्या पृथिवीनाम" [निघ० १।१]
ऽ "अमृतं वै हिरण्यम्" [श० ६।४।४।५]
:: "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]

चतुर्थ तृच

ऋषिः—दीर्घतमाः (ऊंची आयुको चाहने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विराट् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२३ २ १ २
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
२ ३ १ २३ २ ३ १ २
सूरो न रुरुक्वाँछतात्मा ॥१॥

(यः) जो (अत्यः) निरन्तर प्राप्त—व्यापनशील (कविः) सर्वज्ञ (नभन्यः-न-अर्वा)॰ आकाशीय विद्युत के समान गतिशील (सूरः रुरुक्वान्) सूर्य के समान तेजस्वी (शतात्मा) असंख्य—अनन्त जीवों का आत्मा परमात्मा (नार्मिणीं पुरम्) नृ—नर—मुमुक्षुजन† के मन सम्बन्धी या 'नृमन्'—आगे बढ़ने वाले‡ उपासक सम्बन्धी मोक्षपुरी भूमि को (अदीदेत्) प्रकाशित करता है* ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो
२ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्थात् । होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥२॥

॰ "अर्वा-ईरणवान्" [निरु० १०।३१]

† "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] "नृणां मनः-नृमणः, तत्सम्बन्धिनीं तद्रुचिकरीम् । अथवा "नृ नये" धातोः-मनिन् वित छान्दसः ।

‡ नृमन्-नृमा-नेता, उत्कृष्ट नेता तत्सम्बन्धिनीं मोक्षपुरीं भूमिम् ।

* "दीदयति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

तज्जपस्तदर्थभावनम्

(द्विजन्मा) दो—जप और अर्थभावन या स्वाध्याय और योग* के द्वारा अन्तरात्मा में प्रकाशित※ होने वाला परमात्मा (त्री 'त्रीणि' रोचनानि) अपने दर्शन के तीन अभिप्रीणन करने योग्य आत्मा, मन और नेत्र—आंख को (विश्वा-रजांसि) सारे रञ्ज-नीय—प्रीणन करने तृप्त करने योग्य श्रोत्र, वाक् आदि इन्द्रियों को भी (शुशुचानः) प्रकाशित करता हुआ† (यजिष्ठः) अध्या-त्मयज्ञ का महान् विधाता—आधार (होता) आदाता—अपनाने वाला परमात्मा (अपां सधस्थे-अस्थात्) आप्तजनों के‡ उपा-सक आत्माओं के समान स्थान हृदयदेश में विराजित होता है॥२॥

१६६६ अयꣳ स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या।
मर्त्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥३॥

ऋ० ७-१४९-५

(अयं सः-होता) यह वह होता—अपनानेवाला (यः-द्विजन्मा) जो दो से—जप और अर्थभावन—या स्वाध्याय और योग से साक्षात् होने वाला परमात्मा (विश्वा वार्याणि श्रवस्या दधे) सब वरने योग्य वस्तुओं तथा (श्रवस्या) यश योग्य प्रशंसनीय कर्मों को धारण कराता है (अस्मै) इस परमात्मा के लिये (यः-मर्त्तः) जो मनुष्य (ददाश) देता है अपने को समर्पित करता है वह (सुतुकः) उस परमात्मा का सुपुत्र है ॥ ३ ॥

* "तज्जपस्तदर्थभावनम्" [योग० १।२८] तत्रैव "स्वाध्याद् योग-मासीद्योगात्स्वाध्यायमामनेत् । स्वाध्याययोगसम्पत्त्या पर-मात्मा प्रकाशते ।

※ "जनी प्रादुर्भावे" [दिवादि०]

† "शोचति ज्वलतिकर्मा" [निघ० १।१६]

‡ "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]

पञ्चम तृच

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पदपंक्ति ।

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
३ १ २ ३ १ २
ऋध्यामा त ओहैः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५८)

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
३ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तू (अध हि) अनन्तर ही—बस अब ही (भद्रस्य क्रतोः) कल्याण सङ्कल्प❀ का (साधोः-दक्षस्य) अच्छे-सच्चे बलसमृद्धि का† (बृहतः-ऋतस्य) महान् अमृत‡ मोक्षानन्द का (रथीः-बभूथ) नायक है ॥२॥

❀ "स यदेव मनसा कामयते-इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एवक्रतुः" [श० ४।१।४।१]

"हृत्सु त्ययंक्रतुर्मनोजवः प्रविष्टः" [श० ३।३।४।७]

† "अथ यदस्मै थत्समृध्यते स दक्षः" [श० ४।१।४।१]

"दक्षः-बलनाम" [निघ० २।९]

‡ "ऋतममृतमित्याह" [जै० ३।१६०]

३ १ २ ३ १र २र ३ २ १र २र
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वाऽर्ण ज्योतिः।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

(अग्ने) हे परमात्मन् ! तू (नः-एभिः-अर्कैः-भव) हमारे इन अर्चनमन्त्रोंॐ द्वारा (नः-अर्वाङ्-भव) हमारी ओर हो (स्वः-न ज्योतिः) सूर्य समान ज्योति है (विश्वेभिः-अनीकैः सुमनाः) सारे अपने प्रमुख तेजों के द्वारा सुमन हमारे लिये कल्याण मन वाला—कल्याणकारी होजा ॥ ३ ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम द्व्यृच

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधो अमर्त्य।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाꣳ उषर्बुधः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३५)

२ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२॥

ॐ "अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति" [निरु० ५।४]

(अग्ने) हे परमात्मन्! तू (जुष्टः-हि) हम उपासकों द्वारा सेवित हुआ उपासित हुआ (दूतः) प्रेरक—आगे लेजाने वाला (हव्यवाहनः) स्तुतिरूप दातव्य को लेनेवाला एवं आदातव्य सद्गुण सुख शान्ति को लाने वाला (अध्वराणां रथीः) अध्यात्म यज्ञों—योगाङ्गों का नेता रथ स्वामी* के समान आधार (असि) तू है (अश्विभ्याम्-उषसा सजूः) श्रोत्रों† प्रकाश प्रज्ञा के द्वारा‡ (अस्मे) हमारे अन्दर* (सुवीर्य-बृहत्-श्रवः-धेहि) शोभनबल—आत्मबल और महान् श्रवण धारण कर॥ २॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—बृहदुक्थः (महती वाक्-ओरेम् उपास्य जिसका है ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
विधुं दद्राणꣳ समने बहूनां युवानꣳ सन्तं पलितो जगार।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २६८)

* "छन्दसीवनियौ वक्तव्यौ" [अष्टा० ५।२।१०९ वा.] रथ शब्दात्-ई प्रत्यय।

† "श्रोत्रे अश्विनौ" [श० १२।९।१।१३]

‡ "सजूः सहार्थे" [अव्ययार्थ निबन्धनम्]

* "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे" [अष्टा० ७।१।३९] इति शे प्रत्ययः अस्मद्-शब्दात्।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २ ३ १२ ३ १२ २ १२ ३ १२ २२
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १२ २२
यश्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥२॥

(यः) जो इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (शाक्मना शाकः) कर्म के लिये जगद्रचन के लिये* शक्त—समर्थ† (अरुणः सुपर्णः) आरोचन‡ ज्ञानप्रकाशक शोभन पालनकर्ता (महः) महान् (शूरः) पापदोषनाशक (सनात्) शाश्वतिक—सनातन (अनीडः) गृहरहित* एकदेशरहित—सर्वव्यापी (आ) आवे° (यत् सत्यम्-इत् चिकेत) जिसे सत्य ही जाने—जानता है (तत्-न मोघम्) वह व्यर्थ नहीं है (स्पार्ह वसु जेता-उत) स्पृहणीय-कपनीय अध्यात्म धन को स्वाधीन रखता है (दाता-उत) दान-कर्ता भी वह है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः ॥३॥

(ये देवाः) जो मुमुक्षु उपासक (क्रियमाणस्य मह्नः कर्मणः)

* "शक्म कर्मनाम" [निघ० २।१] यहां कर्मशब्दो जगद्वाची "जगद्वाचित्वात्" [वेदान्त दर्शनम्] "शकधातो र्मनिन् प्रत्ययः" [उणा० ३।१४७] 'वृद्धिश्छान्दसी' विभक्तिव्यत्ययेन चतुर्थी स्थाने तृतीया ।

† "शक्लृ शक्तौ" [स्वादि०] ततो णः प्रत्ययश्छान्दसः ।

‡ "अरुण-आरोचन" [निरु० ५।२१]

* "नीडं गृहनाम" [निघ० ३।४]

° उपसर्गबलाद् योग्यक्रियाध्याहारः ।

किये जाते हुए महत्त्वपूर्ण कर्म के (ऋते कर्मम्) कर्म के* अमृत फलों को (उदजायन्त) उद्भावित करते हैं—सम्मुख लाते हैं (एभिः-येभिः) इन जिनको हेतु बनाकर या इन जिनके लिये‡ (वज्री) ओजस्वी° परमात्मा (वृष्ट्या पौंस्यानि) सुखवर्षण योग्य बलों को (आदिहे) ग्रहण करें उन्हें (वृत्रहत्याय) पापनाशन:: के लिये (औचत्) बरसा देता है ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—विन्दुः (स्ववानसाओं को छिन्न भिन्न करने वाला)

देवता—मरुतः (समस्त वासनाओं को अमृत जीवनदाता परमात्मा

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
अस्ति सोमो अयꣳ सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत स्वराजो अश्विना ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १४१)

१ २ ३ १ २ ३ १२ १२ ३ २ ३ १ २
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।
३ २ ३ १ २
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥२॥

---

* "कर्मण ऋतम्" ऋते कर्मम् छान्दः प्रयोगः ।

† "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०]

‡ चतुर्थीस्थाने तृतीया व्यत्ययेन ।

° "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०]

:: "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

(त्रिषधस्थस्य) आत्मा, मन, वाणी तीन सहस्थान वाले उपासना, प्रार्थना स्तुति द्वारा (पूतस्य) सम्पादित—(जावतः) उपासक जनवाले (तना) धनरूप सोम—अध्यात्मरस को (मित्रः) प्रेरक परमात्मा (अर्यमा) आनन्ददाता परमात्मा (वरुणः) वरणकर्ता परमात्मा (पिबन्ति) पीता है स्वीकार करता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।
३ १र २र
प्रातर्होतेव मत्सति ॥३॥

(उत-उ नु) और हां फिर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (अस्य गोमतः-सुतस्य) इस स्तुति वाणी वाले निष्पन्न उपासना रस के (जोषं मत्सति) प्रेम को चाहता है° (प्रातः-होता-इव) प्रातःकाल में जैसे होता उपासक चाहता है:: वैसे तुझे चाहता है ॥ ३ ॥

चतुर्थ द्वयृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रकाशित ज्ञानस्वरूप परमात्मा जिसमें हो ऐसा उपासक)

---

† द्वितीयास्थाने षष्ठी व्यत्ययेन'
‡ "तना धननाम" [निघ० २।६०]
° "मदि स्तुति मोदमद स्वप्न कान्तिगतिषु" [भ्वादि०]
"मोदमहि याच्ञाकर्मा" [निघ० ३।१८]
:: "आत्मा वै होता" [ऐ० ६।८]

देवता—सूर्यः (अपनी ज्ञानरश्मियों से शरणशील व्यापक परमात्मा)

छन्दः—विषमा बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २२२)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३२उ ३ १ २
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥२॥

(सूर्य देव) हे ज्ञानरश्मियों से सरणशील परमात्मदेव ! (बट् श्रवसा महान्-असि) सच तू श्रवणीय ज्ञान के कारण से महान् है वह तुझे महान् सिद्ध करता है (सत्रा महान्-असि) तू सर्वभाव से* महान् है (मह्ना) महत्ता से (देवानाम्-असुर्यः पुरोहितः) उपासक विद्वानों का साधुप्राणप्रद है† (अदाभ्यं विभु ज्योतिः) अदम्य व्यापक ज्योति है ॥ २ ॥

---

* "सर्वं वै सत्रम्" [श० ४।६।१।२५] "सत्रा-सत्रेण" तृतीयाया आकारादेशः । "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे" [अष्टा० ७।१।३९]

† "असुः प्राणनाम" [निरु० ३।८] असून् प्राणान् राति ददाति-असुरः तत्र साधुः-असुर्यः ।

तृतीय खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुकक्षः (शोभन अध्यात्मकक्षा वाला उपासक)
देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)
छन्दः—गायत्री ।

१६९०. १ २ ३ १ २ ३१ ३ १ २
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥१॥ ऋ० ८-९३-३१

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १२६)

१६९१ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥२॥ ऋ० ८-९३-३२

(यः-इन्द्रः) जो परमात्मा (द्विता विदे) दो भावों से जाना जाता है (वृत्रहन्तमः) एक तो पाप का अतिनाशक और दूसरा अर्थापत्ति से उसके विरुद्ध—पुण्यों—स्वोपासकों का पोषक (शतक्रतुः) सैंकड़ों प्रज्ञानों का प्रदाता है (हरिभिः सुतं 'सुतः' नः-उप 'याहि') अपने दुःखनाशक गुणों के हमारे पास उपासित हुआ प्राप्त हो ॥२॥

१६९२ १२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥३॥ ऋ० ८-९३-३३

(त्वं हि) हे परमात्मन् ! तू ही (एषां सोमानां पाता-असि) इन उपासनारसों का पानकर्ता—स्वीकारकर्ता है (वृत्रहन्) हे

पापनाशक ! (सुतं 'सुतः') तू उपासित हुआ (हरिभिः-नः-उप याहि) दुःखहरणकर्ता गुणों से हमारे पास आ ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसनेवाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विराट् ।

१६९३/३२२

१ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे सुमतिं कृणुध्वम् ।
१ २   ३ १ २   २ २   ३ २
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥१॥ ऋ० ६.३१.१०

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २७२)

१६९४.

३   १ २   ३ १ २   ३ १ २   २ २ ३ १ २   ३ १ २
उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
१ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥२॥ ऋ० ६.३१.११

(विप्राः) मेधावी उपासक (महिने-उरुव्यचसे-इन्द्राय) महान् तथा बहुत व्याप्त परमात्मा के लिये (सुवृक्ति ब्रह्म जनयन्त) शोभन स्तुति* को और प्रार्थना मन्त्र को† प्रदर्शित करते हैं (तस्य व्रतानि) उसके कर्मों—नियमों को (धीराः) ध्यानी जन (न मिनन्ति) हिंसित नहीं करते हैं ॥ २ ॥

१६९५

२ ३   २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   २ २   ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।

---

* "सुवृक्तिभिः सुप्रवृत्ताभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः" [निरु० २।२४]

† "ब्रह्म वै मन्त्रः" [जै० १।८८]

१ २ ३ २ ३ २
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥३॥

(सत्रा राजानम्) सत्य राजा—(अनुत्तमन्युम्) अबाधित तेजवाले* (इन्द्रम्-एव) परमात्मा को ही (वाणीः समृध्वै दधिरे) स्तुति वाणियां काम आदि बाधकों को सहने दबाने के लिये हमें धारण करती हैं (हर्यश्वाय-आपीन् संवर्हय) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता व्यापनशील धर्मवाले तुझ परमात्मा की प्राप्ति के लिये प्राप्त सम्बन्ध वाले हम उपासकों को तू परमात्मन् सम्यक् बढ़ा ॥ ३ ॥

तृतीय द्व्यृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विषमा बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहम शीय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० २५४)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
२उ ३२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥२॥

(मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (कुहचित्-विदे) कहीं भी सर्वत्र विद्यमान—(महयते) तुझ पूजा को प्राप्त होते हुए—

---

* "मन्युर्मन्यते दीप्तिकर्मणः" [निरु० १०।२९]

पूजनीय* के लिये (दिवेदिवे) दिन दिन—प्रतिदिन† (रायः 'रायं') देने योग्य—समर्पण करने योग्य स्तुतिवचन हावभाव को (आशिक्षेयम्) मैं उपासक भली प्रकार देता हूं—समर्पित करता हूं‡ (त्वत्-अन्यत्) तुझ से भिन्न (आप्यं न हि) प्राप्त करने योग्य नहीं (न वस्यः पिता च न-अस्ति) न ही अधिक वसाने वाला—साथ रखने वाला पिता है ॥ २ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसनेवाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—विराट् ।

१६८८

३ १र २र ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्वा दुवाꣳस्यन्तमा सचेमा ॥१॥ 6-22-4

(विपिपानस्य) विशेष अध्यात्मरस पान करने वाले—(अद्रे) श्लोककृत्° स्तुतिकर्ता के (हवं श्रुधि) आमन्त्रण को सुन—स्वीकार कर (अर्चतः-विप्रस्य) अर्चना करते हुए मेधावी:: विद्वान् के मनोभाव को सुन (बोध) जान (इमा दुवांसि-अन्तमा

---

* "मह पूजायाम्" [भ्वादि०]

† "दिवे दिवे अहर्नाम" [निघ० १।९]

‡ "शिक्षति दानकर्मा" [निघ० ३।२०]

° "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० २।५]

:: "विप्रः-मेधाविनाम" [निघ० ३।२५]

सचा कृष्व) मेरे इन नम्र वचनों* या अर्चनीय कथनों या अभीष्टों† को समीप—साथ देने वाले कर ॥ १ ॥

१६७७ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
१ २ ३ १ २
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥२॥ ऋ. ६.२२.५

(तुरस्य ते) हे परमात्मन् ! संसारसागर से तारक—तुझ तराने वाले की (गिरः) स्तुतियां (विद्वान् न-अपि मृष्ये) मैं जानता हुआ उपेक्षित नहीं करता (असुर्यस्य सुष्टुतिं न) प्राणप्रदों में साधु तुझ वास्तविक प्राणप्रद की शोभन स्तुति करने को भी उपेक्षा नहीं करता (सदा ते स्वयशः-नाम) सदा तेरे स्वाधीन यशोरूप 'ओ३म्' नाम को (विवक्मि) पुनः पुनः उच्चारित करता हूं—जपता हूं ॥ २ ॥

१७०० २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
मारे अस्मन्मघवन् ज्योक्कः ॥३॥ ऋ. ६.२२.६

(मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते मानुषेषु भूरि हि सवना) तेरे लिये मननशील जनों में बहुत ही श्रद्धास्थान‡ है (मनीषी त्वाम्-इत्-भूरि हवते) स्तुति करने वाला उपासक तुझे ही बहुत° आमन्त्रित करता है (अस्मत्-आरे ज्योक्-मा कः) हमारे से दूर* सम्प्रति—अब अपने को मत कर ॥ ३ ॥

---

* "समिधाग्निं दुवस्यतेति समिधाग्निं नमस्यतेत्येतत्" [श.६।८।१।६]

† "दुस्यति-राध्नोतिकर्मा" [निरु० १०।२०]

‡ "सवना स्थानि" [निरु० ५।२५]

° "भूरि बहुनाम" [निघ० ३।१]

* "आरे दूरनाम" [निघ० ३।२६]

चतुर्थ खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—सुदाः (परमात्मा के लिये अपने को उत्तम रूपसे देने समर्पित करने वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—शक्करी।

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदुलोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा। अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

(अस्मै 'अस्य' इन्द्राय 'इन्द्रस्य') इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा के* रमणस्थान—मोक्षधाम से पूर्व जगत् में वर्तमान (शूषम्-अर्चत) जगद्रचन धारणादि बल पराक्रमको उपासकजनो! अर्चित करो—प्रशंसित करो (अभीके चित्-लोककृत्) जो समीप† में ही पृथिवी आदि लोकों का करने रचने वाला है तथा जो (सङ्गे समत्सु वृत्रहा) सदा सङ्ग में—शरीर में और शरीर से बाहर सम्मोदन स्थानों में‡ स्वास्थ्यवारक रोगों और पापों का हनन-कर्ता° है (अस्माकम् 'अस्मान्' बोधि) हमें बोधित करता है (चोदिता) प्रेरक है (अन्यकेषां ज्याकाः-अधि धन्वसु) अन्य

* षष्ठ्यर्थे चतुर्थी व्यत्ययेन।

† "अभीके-अभ्यक्ते" [निरु० ३।२०]

‡ "समदः सम्मदो वा मदतेः" [निरु० ६।१७]

° "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

कुत्सितजनों[ꕥ] की हमें अभिभव करने दबानेवाली दुर्भावनाएं[†] उनके हृदयावकाशों में[‡] नष्ट होजावें* या न होवें—न रहें[°] ॥१॥

१२०२ २३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
त्वꣳ सिंधूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् । अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे
१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वं पुष्यसि वार्यम् । तं त्वा परिष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां
३ २३ ३ १ २
ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

(इन्द्र) हे परमात्मन्! (त्वम्) तू (सिन्धून्-अधराचः-असृजः) स्यन्दनशील एक दूसरे के पास पहुँचनेवाली वेदवाणियों को[§] नीचे—अपने अन्दर से ऋषियों के अन्तःकरण में सर्जन करता है—छोड़ता है (अहिम्-अहन्) सर्वत्र प्राप्त अज्ञान को नष्ट करता है (अशत्रुः-जज्ञिषे) तू शत्रुरहित प्रसिद्ध है (विश्वं वार्यं पुष्यसि) हमारे लिये सब वरणीय वस्तु को पुष्ट करता है (तं त्वा परिष्वजामहे) उस तुझको हम सर्वतः आलिङ्गित करते हैं अन्य कुत्सितजनों की दुर्भावनाओं को उनके हृदयावकाशों में ही नष्ट हो जावें या न रहें ॥ २ ॥

ꕥ "कुत्सिते-अकच्" [अष्टा० ५।३।७४]

† "ज्या ज्यतेर्वा" [निघ० ६।१७] "जि-अभिभवे" [भ्वादि०]

‡ "धन्व-अन्तरिक्षनाम" [निघ० १।३]

* "णभ हिंसायाम्" [भ्वादि०]

° "न भन्तां मा भुवन्" [निरु० १०।६]

§ "समुद्रं न सिन्धवः उक्थशुष्मा उरुव्यचसंगिर आविशन्ति" [काठ० ३८।७] उपमायाम् ।
"सुदेवो असि वरुण यस्यते सप्त सिन्धवः, अनु क्षरन्ति काकुदम्" [ऋ० ८।६९।१२] "सिन्धुः स्रवणात्" [निरु० ५।२८]

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे
३१र २र ३ १ १ १ २ ३ २ ३ २ उ ३ १ २ १
वधं यो न इन्द्र जिघांसति। या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्य-
१.२ ३ २ उ. ३ १ २
केषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥

(इन्द्र) परमात्मन् ! (नः) हमारे लिये (विश्वाः) सारी (अर्यः) आक्रमणकारी* (अरातयः-धियः) न देनेवाली अपितु जीवनीय तत्त्व लेनेवाली अन्य दुर्बुद्धियां (सुविनशन्तु) भली प्रकार नष्ट हो जावें (यः-न-जिघांसति) जो हमें पापभाव से मारना चाहता है (शत्रवे वधम्-अस्ता-असि) तू परमात्मन् ! उस शत्रु के लिये हिंसासाधन को फेंकनेवाला है (ते या रातिः-वसुः-ददिः) तेरी जो दानक्रिया है वह वसानेवाले धन को दे, शेष पूर्ववत् ॥३॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधी वा (परमात्मा में मेधा से गमन अतन करने वाला या प्रिय है मेधा जिसको ऐसा उपासक)

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—गायत्री।

३ २ उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः।
१ २ ३ १ २
प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥१॥

(हरिवः) हे दुःखहरणकर्ता सुखाहर्ता परमात्मन् ! (रेवतः

* 'अरी' इत्यस्य बहुवचनम्।

स्तोता रेवान्-इत् स्यात्) धनवान् का स्तोता—प्रशंसक धनवान् ही होजाता है पुनः (त्वावतः-सुतस्य मघोनः) तेरे जैसे साक्षात् किए हुए ऐश्वर्यवाले परमात्मा का स्तोता (प्र-इत्) प्रकृष्ट धन-वान्—मोक्षैश्वर्य वाला अवश्य होजावे ॥ १ ॥

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
न गायत्रं गीयमानम् ॥२॥
(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १७८)

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! तू (नः) हम उपासकों को (पीय-त्नवे) हिंसक के लिये※ (मा परादाः) मत त्यागना (शर्धते मा) दबाते हुए के लिए† महत्याग (शचीवः शचीभिः शिक्षा) हे प्रज्ञानवाले‡ परमात्मन् ! तू प्रज्ञानों द्वारा मुझे शिक्षा दे—शिक्षारहित हिंसक के हाथ में न पड़ूं पाप कर दण्ड का भागी न बन सकूं, तेरी शिक्षा में रहूं ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—काण्वोनीपातिथिः (मेधावी से सम्बद्ध परमात्मा के निकट* पहुंचने वाला)

※ "पीयति हिंसाकर्मा [निरु० ४।२१]
† "स्पृधु प्रसहने" [चुरादि०]
‡ "शची प्रज्ञातनाम" [निघ० ३।६]
* "नि-अप्-[illegible]" [illegible] [अष्टा० ६।३।९५]

देवता—पूर्ववत् ।
छन्दः—अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ० १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पू० २८८)

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥

(अत्र) इस अध्यात्मयज्ञ में (एषां नेमिः) परमात्मन् ! इन हरियों अज्ञान पाप हरनेवाली शक्तितरङ्गों की नयनप्रवृत्ति* गतिविधि (उरां न) ऊन के लिये भेड़ को जैसे (वृकः-धूनुते) भेड़िया विकम्पित कर देता है—निःसत्त्व बना देता है ऐसे पापवासनाों को विकम्पित कर देता है—निःसत्त्व बना देता है‡ (दिवावसो) हे प्रकाश धनवाले या प्रकाश में वसानेवाले परमात्मन् ! (अमुष्य दिवः शासतः) उस प्रकाशमय अमृतलोक मोक्षधाम के शासन करते हुए के अपने (दिवं यय) प्रकाशमय अमृतधाम को मुझ उपासक को लेजा ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ २
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥

* "नियो मिः" [उणा० ४।४३]-नेमिः ।
† "वृकः-उरामथिः-उरणमथिः-उरण ऊर्णावान्" [निरु० ५।२१]
‡ अत्र लुप्तोपमालङ्कारः ।

(त्वा) हे इन्द्र—परमात्मन् तुझे (ग्रावा) अर्चना करने वाला* विद्वान्† (सोमी) उपासना रसवाला (इह) इस अध्यात्मयज्ञ में (घोषेण वदन्) अव्यक्त—मानसिक जप से बोलता हुआ तेरी स्तुति करता हुआ (आ-वक्षतु) भली भांति प्राप्त करे, शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित-प्रकाशित ज्ञानाग्नि जिसमें हो ऐसा उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (धारारूप में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—द्विपदा गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१॥

(सोम) शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर रसवाला (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (मन्दयन्) आनन्द देने के हेतु (पवस्व) प्राप्त हो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥२॥

(ते) वह (सुतासः) उपासित‡ (विपश्चितः) सर्वज्ञ

---

* "ग्रावाणो-गृणातेर्वा" [निरु० ९।८]

† "गृणाति-अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

"विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३।९।३।१४]

‡ बहुवचनमादरार्थम् ।

(शुक्राः) शुभ्र प्रकाशमान शान्तस्वरूप परमात्मा (वायुम्-असृक्षत) उपासक आत्मा को* मोक्ष पाने योग्य सम्पन्न करता है बनाता है ॥ २ ॥

असृग्रन् देववीतये वाजयन्तो रथाँ इव ॥३॥

(वाजयन्तः) उपासक के लिये अमृत अन्नभोग को चाहता हुआ परमात्मा (देववीतये) मुक्तात्माओं की तृप्ति जिसमें हो जाती है उस मुक्ति के लिये† (असृग्रन्) धारारूप में प्राप्त होता है (रथाः-इव) रथों के समान जैसे रथ प्रवाहरूप से गति करता है तू भी कर ॥ ३ ॥

पञ्चम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—परुच्छेपः (पर्व पर्व—अवसर अवसर पर परमात्मा का स्पर्श या स्तुतियों में पर्व-ग्रन्थि बनाने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—अत्यष्टिः ।

अग्निँ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुँ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवाच्या कृपा ।

---

* "वायुः-आत्मा" [तै० ब्रा० ३।१४।२]

† छन्दसि परेच्छायामपि क्यच् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ३८३)

1294 7-926.2

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमाङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः

३ १ २ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १
शुक्र मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यांहोतारं चर्षणीनाम् । शोचि-

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ष्केशं वृषणा यमिमाविशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

7- 9-926-2

(विप्र) हे विशेष कामनापूरक परमात्मन् ! (त्वा यजिष्ठम्) तुझ अत्यन्त यष्टा—अध्यात्मयज्ञ के आधार (अङ्गिरसां ज्येष्ठम्) अङ्गों को रसीला बनाने वालों में अत्यन्त प्रशस्त को (विप्रेभिः मन्मभिः) विशेष कामनापूरक मननीय स्तुतिसमूहों से* (यजमानाः-हुवेम) हम अध्यात्मयज्ञ के यजमान उपासक आमन्त्रित करते हैं (शुक्र मन्मभिः) हे शुभ्र परमात्मन् ! मननीय स्तुतिसमूहों—(चर्षणीनां होतारं द्याम्-इव परिज्मानम्) दर्शक मनुष्यों के अध्यात्म होता ऋत्विक को मोक्षधाम की ओर प्रेरक (शोचिष्केशम्)‡ ज्ञानरश्मि° वाले (वृषणम्) सुखवर्षक (यम्) जिस तुझ को (ऊतये) रक्षा के लिये (इमाः-विशः-प्रावन्तु) ये उपासक प्रजाएं प्रकृष्टरूप से प्राप्त हों ॥ २ ॥

1295

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
स हि पुरूचिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः पर-

---

* "मन्मभिः-मननीयैः स्तोमैः" [निरु० १०।२०]

† "इवोदकि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १।१०]

‡ "शोचिः-ज्वलतोनाम" [निघ० १।१७]

° "केशाः-रश्मयः" [निरु० १२।२५]

१२ २र ३२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३१२३ २ ४ २
शुर्न द्रुहन्तरः। वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्।
३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥

(सः-हि) वह अग्रणायक परमात्मा ही (ओजसा) स्वात्म-बल से (विरुक्मता) विशेष तेजस्विता से (पुरुचित् दीद्यानः भवति) बहुत ही द्योतमान है (द्रुहन्तरः) द्रोही—नास्तिक को तरने—ताड़ने वाला है (परशुः न द्रुहन्तरः) कुठार जैसा द्रु—काष्ठ का हननकर्ता होता है (यस्य सुमृतौ) जिस की टक्कर में (वीडु चित् स्थिरम्) दृढ स्थिर भी पाप—पापी (श्रुवत्) शीर्ण होजावे (वनाइव) जल जैसे ताप से बिखर जाता है—भाप बन जाता है (निष्षहमाणः) पापों को नितान्त हटाता हुआ (यमते) स्वाधीन करता है (न-अयते) उपासक से अलग नहीं होता है (धन्वासहा न-अयते) हृदयाकाश पर आसहन—आश्रय बनाता हुआ अलग नहीं होता है॥ ३॥

द्वितीय षड्च

ऋषिः—पावकोऽग्निः (पवित्र अग्रगन्ता उपासक)

देवताः—पूर्ववत्।

छन्दः—विष्टर पंक्तिः।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

(विभावसो बृहद्भानो-अग्ने) हे विशेष ज्ञानज्योति में बसाने वाले महादीप्तिमान् अग्रणेता परमात्मन्! (तव श्रवः-वयः-महि)

तेरा श्रवणीय यश※ ज्ञान† महान् है (अर्चयः शवसा भ्राजन्ते) तेरी ज्ञानरश्मियां जगद्रचन विषयक जगत् में प्रबलरूप से भासित हो रही हैं (कवे) हे क्रान्तदर्शी ! (दाशुषे) आत्मदानी उपासक के लिये तू (उक्थ्यं वाजं दधासि) प्रशंसनीय अमृतान्न—मोक्षानन्द को धारण करता है ॥ १ ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥

(पावकवर्चाः) हे अग्रणायक परमात्मन् ! तू पवित्रकारक—तेजवाला (शुक्रवर्चाः) शुभ्र तेजवाला (अनूनवर्चाः) पूर्ण तेज वाला हुआ (भानुना-उदियर्षि) अपने ज्ञानप्रकाश से उपासक के अन्दर उदित रहता है या उस आस्तिक को संसार में सदा भासता रहता है (पुत्रः-मातरा विचरन्-उप-अवसि) पुत्र जैसे माता पिता के पास विचरण करता हुआ उन्हें तृप्त करता है ऐसे मुझ उपासक को भी तृप्त कर‡ (उभे रोदसी पृणक्षि) दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक को—अपवर्ग स्थान मोक्षधाम को° और भोगस्थान प्रथित संसार को अभ्युदय को आत्मा के दोनों आश्रय को (पृणक्षि) हमारे लिये सम्पृक्त कराता हैऽ सम्बद्ध कराता है उनके भोग और अमृत को भुगाता है ॥ २ ॥

※ "श्रवः-श्रवणीय यशः" [निरु० ११।६]

† "वी गतिव्याप्ति·····" [अदादि०] ततः असुन् ।

‡ "अव रक्षणगतिकान्तिप्रीति तृप्ति·····" [भ्वादि०] लुप्तोपमावाचकालङ्कारः ।

° "रोदसी द्यावापृथिवीनाम" [निघ० ३।३०]
"त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।६०।३]

ऽ "पृची सम्पर्के" [रुधादि०]

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥

(ऊर्जः-नपात्-जातवेदः) हे उपासक के बल को न गिराने वाले अपितु बढ़ानेवाले उत्पन्न मात्र के ज्ञाता परमात्मन् ! (सुशस्तिभिः-धीतिभिः) उत्तम प्रशंसाओं स्तुतियों और योगाभ्यास कर्मों से* (हितः) धारण किया हुआ (मन्दस्व 'मन्दयस्व') आनन्दित कर (भूरिवर्पसः) बहुत रूप में उपासना करनेवाले—बहुत प्रकार वरने वाले† (चित्रोतयः) अद्भुत प्रीति वाले (वामजाताः) श्रेष्ठगुणजात—श्रेष्ठ गुणों से संजात प्रसिद्ध उपासक (त्वे) तेरे अन्दर (इषः) कामनाएं (सन्दधुः) सन्धानित कर देते और हम उपासकों ने तुझे ही ऐसा अपना आधार बनाया है ॥ ३ ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४॥

(अमर्त्य-अग्ने) हे मरणधर्मरहित अग्रणेता परमात्मन् ! तू (इरज्यन्) स्वामित्व करता हुआ‡ (अस्मे जन्तुभिः 'जन्तुभ्यः') हम उपासक मनुष्यों के लिये° (रायः प्रथयस्व) धनों—अध्यात्म ऐश्वर्यों—शम दम आदियों को प्रथित कर—प्रसारित कर (सः)

* "धीतिभिः कर्मभिः" [निरु० ११।१६]
† "वर्प इति रूपनामवृणोतीति सतः" [निरु० ५।८]
‡ "इरज्यति-ऐश्वर्यकर्मा" [निघ० २।२१]
° चतुर्थीस्थाने तृतीया व्यत्ययेन ।

वह तू (दर्शतस्य वपुषः) दर्शनीयरूप—स्वरूप—मोक्ष का (विराजसि) विशेष राजा होरहा है (दर्शतं क्रतुं पृणक्षि) दर्शनीय कर्म—जगत्[*] को सम्पृक्त करता है—हमारे से मिलाता है ॥४॥

1220
इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम्॥५॥

ऋ॰ १०। १४०।५; यजुः १२।११०

(अध्वरस्य-इष्कर्तारम्) हे अग्रणेता परमात्मन्! अध्यात्म यज्ञ के तुझ निष्पादक[†] (प्रचेतसम्) ज्ञान देकर सावधान करने वाले—(महः-राधसः क्षयन्तम्) महान् धन का स्वामित्व करते हुए को[‡] (वामस्य रातिम्) वननीय अध्यात्म सुखलाभ के दाता[°]—को स्तुत करते हैं—स्तुति में लाते हैं (महीं सुभगाम्-इषम्) महती सुभाग्य करने वाली कामना को, तथा (सानसिं रयिम्) सनातन[::] शाश्वतिक—स्थिर ऐश्वर्य मोक्षैश्वर्य को (दधासि) तू धारण कराता है ॥ ५ ॥

1221
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुतकर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥

ऋ॰ १०। १४०।६; यजु॰ १२।१११

(जनाः) उपासकजन (ऋतावानम्) यथार्थ ज्ञान अर्थात्

---

* "जगद्वाचित्वात्" [वेदान्तद॰]

† "निष्कतारम्" नकारलोपश्छान्दसः।

‡ "क्षियति-ऐश्वर्यकर्मा" [निघ॰ २।२१]

° "रा दाने" [अदादि॰] ततः, क्तिच्, अन्तोदात्तत्वात्।

:: "पृणक्षि सानसिं क्रतुमिति पृणक्षि सनातनं क्रतुमित्येवैतत्" [श॰ ७।३।१।१२]

वेदवाले* (महिषम्) महान्† अनन्त (विश्वदर्शतम्) सबके दर्शनीय (त्वा-अग्निम्) तुझ अग्रणेता परमात्मा को (पुरः-दधिरे) पूर्व से—आरम्भ सृष्टि से धारण करते हैं (मानुषा युगा) मनुष्य सम्बन्धी युगल—स्त्री पुरुष सब (श्रुतकर्णम्) सुन चुके हुए कान जिससे होजाते हैं—‡ अन्य श्रवण की आवश्यकता नहीं रहती—श्रवण से तृप्त श्रोत्र होजाता है (सप्रथस्तमम्) सप्रथु—अत्यन्त विस्तारवाले सावधान (दैव्यम्) देवों—मुमुक्षुओं के इष्ट अग्रणेता परमात्मा को (गिरा) स्तुति से धारण करते हैं ॥ ६ ॥

षष्ठ खण्ड

प्रथम द्वयृच

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरने धारण करनेवाला उपासक)

देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)

छन्दः—विषमा ककुप् ।

१२ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
२ ३ २ ३ १२ ३२
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१॥ ऋ० ८-१९-३०

1222 / 1.2

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० ९४)

---

* "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत" [यजु० १७।८ ऋतं वेदज्ञानम् दयानन्द]

† "महिषो महन्नाम" [निघ० ३।३]

‡ "श्रुतौ-श्रुतवन्तौ कर्णौ यस्मात्-यस्य ज्ञानाद्वा स श्रुतर्णस्तं श्रुतकर्णम्"

१२ ३ १२ २२ ३२ ३२३ १२ ३१२
तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवाददे ।
२ ३१ २३१२ ३२ ३१२ २२
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३॥

(सिष्णो) हे सर्वत्र प्राप्त* अग्रणेता परमात्मन्! (तव द्रप्सः) तेरा अणु—† अणु परिमाण वाला उपासक आत्मा, तू तो विभु है (नीडवान्) शरीररूप घर में‡ रहनेवाला एकदेशी है, (वाशः) तुझे चाहने वाला (ऋत्वियः) पितरों—माता पिता आदि से सम्बन्ध रखने वाला° (इन्धानः) उपासना द्वारा तुझे अपने अन्दर प्रकाशित करने के हेतु (आददे) ग्रहण करता है—अपनाता है (त्वम्) तू (महीनाम्-उषसां प्रियः-असि) कामना करने वाली ळ उपासक प्रजाओं का प्रिय है (क्षपः-वस्तुषु-राजसि) रात्रि में वसनेवालों अन्धकार में रहने वालों के ऊपर राजमान है—प्रकाशमान है उन्हें प्रकाश देता है ॥ ३ ॥

द्वितीय एकर्च

ऋषिः—अरुणः (आरोचमान तपस्वी उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

---

* "सिसति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

† "द्रप्सः सम्भृतः" [निरु० ५।१४] "स्तोको वै द्रप्सः" [गो० २।१।२२]

‡ "नीडं गृहनाम" [निघ० ३।४]

° "पितरो वा ऋतवः" [मै० १।१०।१७]

ळ "उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः" [निरु० १२।६]

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥१॥

(तम्-ऋत्वियं गर्भम्-अग्निम्) उस प्रत्येक ऋतु में—सर्वदा वर्तमान गर्भसमान ग्रहण करने योग्य अग्रणेता परमात्मा को (ओषधीः-दधिरे) 'दैवी विशः' जीवन्मुक्त प्रजाएं† धारण करती हैं (तम्-आपः-मातरः-जनयन्त) उस परमात्मा को आप्त मनुष्य‡ निर्माण करने वाले अपने अन्दर गृहस्थ में प्रादुर्भूत करते हैं (तम्-इत् समानं वनिनः-च) उस ही परमात्मा को वैसे ही अपने अन्दर प्रादुर्भूत करते हैं वनी जन—वानप्रस्थाश्रमीजन (वीरुधः-अन्तर्वतीः-च विश्वाहा सुवते) जीवन में विशेष रोहण करने वाली° अन्दर ज्ञान धारण करती हुई ब्रह्मचारी* व्यक्तियां सर्वदा ब्रह्मचर्य में वर्तमान उस अग्रणेता परमात्मा को सम्पन्न सम्यक् प्राप्त करती है ॥ १ ॥

तृतीय एकर्च

ऋषिः—प्रजापतिरग्निः (प्रजा स्वामी-इन्द्रियों का स्वामी विद्वान्)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

---

† "दैवी प्री एता विशो यदोषधयः" [काठ० २५।१०]
‡ "मनुष्या आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०]
° "वीरुधः-विरोहणात्" [निरु० ६।३]
* "यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" [कठो० २।१५]

३ १२ २२ ३ २ ३ १२ २२
अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति ।
१ २ ३ १ २
महिषीव वि जायते ॥१॥

(अग्निः) अग्रणेता परमात्मा (इन्द्राय पवते) उपासक आत्मा के लिये प्राप्त होता है (शुक्रः-दिवि वि राजति) जो कि शुभ्र—प्रकाशमान हुआ मोक्षधाम में विशेषरूप से विराजमान है (महिषी-इव वि जायते) महिमा* वाला† विशेषरूप से या विविध गुणयोग से साक्षात् होता है ॥१॥

चतुर्थ एकर्च

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षण करते हुए परमात्मा के अनुसार आचरण करनेवाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्द—त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
२ ३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जागार तमयꣳ सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१॥

(यः-जागार) जो सदा जागरूक है (तम्-ऋचः कामयन्ते) उस उपासक को स्तुतियां चाहती हैं (यः-जागार) जो सदा जागता है सावधान है (तम्-उ) उसके प्रति ही (सामानि यन्ति) उपासनाएं भी प्राप्त होती हैं (यः-जागार) जो जाग रहा है (तम्) उसकी (अयं सोमः-आह) यह सौम्य धर्मयुक्त उपा-

* "महिषी महन्नाम" [निघ० ३।३] तद्वान् महिषी ।

† ,,इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १।१०]

सक कहता है कि (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (न्योकाः-अस्मि) निश्चित स्थायी हूँ* प्राणवाला हूं ॥ १ ॥

पञ्चम एकर्च

ऋष्यादयः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निर्जागार तमयꣳ सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१॥

(अग्निः-जागार) अग्रणेता परमात्मा जागता है सदा जागरूक है (तम्-ऋचः कामयन्ते) उसे उपासक की स्तुतियां चाहती हैं (अग्निः-जागार) परमात्मा जागता है (तम्-उ सामानि यन्ति) उसे ही उपासनाएं प्राप्त होती है (अग्निः-जागार) परमात्मा जागता है—सावधान है (तम्) उसे (अयं सोमः-आह) यह सोम—सौम्य स्वभाव उपासक कहता है (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (अहं न्योकाः-अस्मि) मैं निश्चित स्थान वाला या स्थायी प्राणवाला हूं—अमर जीवन वाला हूं ॥ १ ॥

षष्ठ तृच

ऋषिः—मृग† (परमात्मा का अन्वेषक)

देवता—अग्निः (अग्रणेता परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

* "गृहा वा ओकः" [ऐ० ८।२६] "प्राणा ह खलु वा आरेकः" [जै० १।२१४]

† सायण भाष्ये ।

१२२८ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकन्निषेभ्यः।
३ १ २ २ २ ३ १ २
युञ्जे वाचꣳ शतपदीम् ॥१॥

(पूर्वसद्भ्यः सखिभ्यः-नमः) पूर्व से विराजमान—मोक्षधाम में विराजमान* अग्रणेता मित्र परमात्मा† के लिये स्वागत हो (साकन्निषेभ्यः) इस जन्म में निषण्ण—साथ रहने वाले परमात्मा के लिये स्वागत है (शतपदीं वाचं युञ्जे) उसके लिये बहुत पदों—बहुत प्राप्तव्य फलवाली स्तुतिवाणी को मैं प्रयुक्त करता हूँ ॥ १ ॥

१२२९ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २
युञ्जे वाचꣳ शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि ।
३ १ २ २ ३ १ २
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥२॥

(शतपदी वाचं युञ्जे) बहुत प्राप्तव्य फलवाली स्तुतिवाणी को मैं प्रयुक्त करता हूं (सहस्रवर्तनि गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्-गाये) बहुत ज्ञानमार्ग वाले गायत्री सम्बन्धी त्रिष्टुभ सम्बन्धी जगती सम्बन्धी स्तोत्र या साम को परमात्मा के लिये मैं गाता हूं ॥ २ ॥

१२३० ३ १ २ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
गायत्रं त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
३ १ २ २ २ ३ २
देवा ओकाꣳसि चक्रिरे ॥३॥

(गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्) गायत्रीसम्बन्धी त्रिष्टुपसम्बन्धी

---

* "क त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुराचित्" [ऋ० ७।८८।५]

† बहुवचनमादरार्थम् ।

जगतीसम्बन्धी स्तोत्रों या सामों को (सम्भृता विश्वारूपाणि) अपितु सम्यक् भरण धारण किए सब रूप—सब प्रकार के छन्दों वाले स्तोत्रों या सामों को परमात्मा के लिये गाता हूं (देवाः-ओकांसि चक्रिरे) उपासक विद्वान् अपना आश्रय करते हैं—बनाते हैं ॥ ३ ॥

सप्तम तृच

ऋषिः—अवत्सारो वत्सप्रीर्वा (रक्षा करते हुए परमात्मा के अनुसार चलने वाला या वक्तावन परमात्मा को प्रसन्न करनेवाला उपासक)

देवताछन्दसी—पूर्ववत् ।

३२उ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ ३ १ २
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥१॥

(अग्निः-ज्योतिः) पृथिवी स्थानी अग्नि ज्योति है (ज्योतिः-अग्निः) वह ज्योतिःस्वरूप परमात्मा है वही आग्नेय शक्ति उसमें देता है* (इन्द्रः-ज्योतिः) मध्यस्थानी विद्युत् ज्योति है (ज्योतिः-इन्द्रः) वह ज्योतिःस्वरूप परमात्मा है वही उसमें चमक देता है (सूर्यः-ज्योतिः) द्युस्थानी सूर्य ज्योति है (ज्योतिः-सूर्यः) वह ज्योतिःस्वरूप परमात्मा है उसकी ज्योति से सूर्य प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

---

* "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति तमेव भान्तमन्दभाति सर्वम्" [कठो० ५।१५]

१ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २
पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा।
१ २ ३ १ २
पुनर्नः पाह्यंᳫं हसः ॥२॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (पुनः-ऊर्जा निवर्तस्व) हमें पुनः आत्मबल देने के लक्ष्य से नितरांवर्तें—प्राप्त हो (पुनः-इषा-आयुषा) पुनः कर्मनापूर्ति—मोक्षप्राप्ति के लक्ष्य से तथा वहां की आयुप्राप्ति के लक्ष्य से नितरां प्राप्त हो (नः) हमें (पुनः) फिर (अंहसः पाहि) बन्धनकारण पाप से बचा ॥ २ ॥

३ २ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥३॥

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू (रय्या सह निवर्तस्व) रमणीय गति से नितरां प्राप्त हो (विश्वतः-परि) सब के परे उत्कृष्ट (विश्वप्स्न्या धारया पिन्वस्व) समस्त भोगप्रद आनन्दधारा से हमें सिञ्चित कर—तृप्त कर ॥ ३ ॥

सप्तम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (इन्द्रियों की संयमरूप उक्ति वाला और व्यापनशील मनकी शिवसङ्कल्परूप उक्ति वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

१ २ ३ २३ ३ १२ २ ३ १ ३ २ ३ १
यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
३ १ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १०६)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शिक्षेयमस्मै दित्सेयꣳ शचीपते मनीषिणे ।
२ ३ १ २ २ ३ २
यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

(शचीपते) हे प्रज्ञा* प्रज्ञान—प्रकृष्टज्ञान के स्वामिन् परमात्मन् (यद्-अहं गोपतिः स्याम्) यदि मैं गो—स्तुति वाणियों का स्वामी बन जाऊँ—कुशल स्तुतिकर्ता बन जाऊँ, तो (अस्मै मनीषिणे) इस बुद्धिमान् तेरे स्तोता के लिये जो मेरे पास धन है उसे (दित्सेयम्) देने की इच्छा करूं, और (शिक्षेयम्) देदूं† भी तब परमात्मन् तू भी जितना ऐश्वर्य तेरे पास है मुझ अपने स्तुतिकर्ता को देदे—दे देता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
१२ २२ ३ १ २
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते) तेरी (सूनृताधेनुः) अध्यात्मयज्ञ‡रूप गौ (सुन्वते यजमानाय) देवपूजन करनेवाले* अध्यात्मयज्ञ करते हुए उपासक के लिये (पिप्युषीं गाम्-अश्वं दुहे)

* "शची प्रज्ञानाम" [निघ० ३।९]

† "शिक्षति दानकर्मा" [निघ० ३।२०]

‡ "यज्ञो वै सूनृता" [तै० सं० १।६।११।२]

* "यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" [भ्वादि०]

बढ़ती बढ़ाती हुई उत्तम वाणी को और आशुगामी मन को दूहता हूं ॥ ३ ॥

द्वितीय तृच

ऋषिः—त्रिशिरः सिन्धुद्वीपः (तीन ज्ञान श्री* वेदत्रयीवाला स्यन्दमान दो प्रवाहों—संसार और मोक्ष में वर्तमान उपासक)

देवता—आपः (आप्तव्य परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
३ १र २र ३ १ २
महे रणाय चक्षसे ॥१॥

(आपः) हे आप्तव्य—प्राप्त करने योग्य परमात्मन् !† तू (मयः-भुवः-हि स्थ) सुख‡ भावित करने वाला निश्चय है (ताः-नः) वह तू हमें (ऊर्जे) मोक्षानन्दरस के लिये* (महे रणाय चक्षसे) महान् रमणीय अपने दर्शन के लिये° (दधातन) धारण करा ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
३ १ २ ३ १ २
उशतीरिव मातरः ॥२॥

---

* "श्रीर्वै शिरः" [श० १।४।५।५]

† "आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी" [श० ८।२।३।१३]

‡ "मयः सुखनाम" [निघ० ३।६]

* "ऊर्वं रसः" [मै० ३।१०।४]

° "रणाय चक्षसे-रमणीयाय च दर्शनाय" [निरु० ६।२६]

(वः) हे प्राप्तव्य परमात्मन् ! तेरा (यः शिवतमः-रसः) जो अत्यन्त कल्याणकारी रस—आनन्दरस है (तस्य 'तम्' इह नः-भाजयत) उसका हमें भागी बना (उशतीः-इव मातरः) हित-कामना करती हुई माताओं के समान पुत्र की हित कामनाएं माताएं करती हैं ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
१ २ ३ १ २
आपो जनयथा च नः ॥३॥

(तस्मै वः 'त्वाम्' अरङ्गमाम) उस तेरे आनन्दरस के लिये तुझे हम भली भांति या सामर्थ्य से प्राप्त होते हैं (यस्य क्षयाय जिन्वथ) जिसके हमारे अन्दर निवास कराने—वसाने के लिये प्राप्त होता है* (च) और (आपः-नः-जनयथ) हे प्राप्त करने योग्य परमात्मम् ! तू हमारे लिये उस आनन्दरस को प्रादुर्भूत कर ॥ ३ ॥

तृतीय तृच

ऋषिः—वातयन उल्लः (अध्यात्म वात के अयन-वातावरण में उल्लास को प्राप्त उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
वात आवातु भेषजꣳ शम्भु मयोभु नो हृदे ।
२ ३ १ २
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पू० पृ० १४९)

* "जिन्वति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

१२१८ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२३ ३ २ ३ १ २
उत वात पितासि न उत भ्रातात नः सखा ।
१ २ ३ १ २
स नो जीवातवे कृधि ॥२॥ 10-186-2

(वात) हे वि-भुगतिमन् परमात्मन् ! तू (नः) हमारा (पिता-असि) पिता है (उत) अपि (भ्राता) भ्राता है (उत) और (नः) हमारा (सखा) समानख्यान मित्र है (सः) वह तू (नः) हमें (जीवातवे कृधि) जीवन के लिये योग्य कर—बना ॥ २ ॥

१२१९ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा ।
१ २ ३ १ २
तस्य नो धेहि जीवसे ॥३॥ 10-186-3

(वात) हे विभुगतिमन् परमात्मन् ! (ते गृहे) तेरे घर में—मोक्षधाम में (यत्-अदः) जो वह अमुक (अमृतम्) अमृतानन्द (गुहा निहितम्) सूक्ष्म स्थिति में छिपा हुआ रखा है (तस्य नः-जीवसे धेहि) उसे हमारे जीवन—दीर्घ जीवन अमर जीवन के लिये धारण करा ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋषिः—सुपर्णः (सुपर्णवान्-उपासना द्वारा सम्यक् पालनकर्ता परमात्मा को धारण करने वाला उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रꣳ हिरण्ययं बिभ्रदत्कꣳ सुपर्णः ।
१२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
सूर्यस्य भानुमृतुथावसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१॥

(सुपर्णः) शोभनपालन गुणवाला परमात्मा (वाजी) अमृत अन्नभोग का स्वामी* (विश्वरूपः) विश्व को रूप देनेवाला—विश्व रचयिता (हिरण्ययं जनित्रम्) सौवर्ण—सुनहरे जनन साधन—(अत्कम्-अभि बिभ्रत्) गमक—अण्ड—ब्रह्मांड को सर्व प्रकार धारण करने के हेतु, तथा (ऋतुथा सूर्यस्य भानुं वसानः) ऋतु के अनुसार सूर्य के प्रकाश को वसाने फैलाने के हेतु (ऋज्रः) तेजस्वी परमात्मा (मेधं स्वयं परि जजान) सङ्गमनीय संसारयज्ञ† को स्वयं परिपूर्ण करता है ॥ १ ॥

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत् सम्बभूव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः॥२

(अप्सु रेतः शिश्रिये) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा ब्रह्माण्ड या सृष्टि के रचनार्थ द्युलोक* में रेत—प्राण° को आश्रय देता है—(पृथिव्याम्-अधि विश्वरूपे तेजः-यत् सम्बभूव) पृथिवी में सब प्राणी वनस्पति को रूप देनेवाले तेज को जो कि जब प्रकट हुआ (अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः) अन्तरिक्ष में निज

* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]
† "मेधो यज्ञनाम" [निघ० ३।१७]
* "आपो वै द्यौः" [श० ६।४।१।६]
° "प्राणो रेतः" [ऐ० २।३८]

महिमा को महत्त्व को मापता हुआ—फैलाता हुआ (वृष्णः-अश्वस्य रेतः-कनिक्रन्ति) सुखवर्षक व्यापक परमात्मा बल प्रगति करता है ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
अयं॑ सहस्रा परियुक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३॥

(अयं यज्ञः) यह सङ्गमनीय परमात्मा (युक्ता सहस्रा परिवसानः) असंख्य उपयुक्त या अपने साथ संयुक्त गुण बलों को समाविष्ट करता हुआ (भानुं सूर्यस्य 'सूर्यं' दाधार) प्रकाशमान सूर्य को धारण करता है (दिवः-धर्ता) मोक्षधाम का धारणकर्ता (भुवनस्य विश्पतिः) जगत् का प्रजापालक परमात्मा (शतदाः-सहस्रदाः-भूरिदावा) सैंकड़ों सुखों का देनेवाला सहस्रों सुखों का देनेवाला बहुत ही सुखों का देनेवाला है ॥ ३ ॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—भार्गवो वेनः (तेजस्वी पिता या गुरु से सम्बद्ध परमात्म सत्सङ्ग कामना करने वाला उपासक)

देवता—वेनः (कमनीय परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ ३ १२ २२ ३१२ २२ ३ १ २
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१॥

(देखो अर्थव्याख्या पृ० पृ० २६३)

३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र १
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्या-
२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ १र २र
युधानि । वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत
३ १ २
प्रियाणि ॥२॥

(ऊर्ध्वः) चेतन आत्माओं में उत्कृष्ट या उन पर रक्षक (गन्धर्वः) गति करनेवाले लोकों* पिण्डों का धारणकर्ता परमात्मा (नाके-अधि प्रत्यङ्-अस्थात्) दुःखरहित नितान्त सुखपूर्ण मोक्षधाम में साक्षात् स्वरूप स्थित है (चित्रा-आयुधानि बिभ्रत्) भिन्न भिन्न—आयु धारण करनेवाले शरीरों को भरण—आत्माओं से पूरित करता हुआ विराजमान है (दृशे-अत्कं सुरभिं कं वसानः) आत्माओं को दिखाने भुगाने के लिये सर्वत्र प्राप्त शोभन सुख का आच्छादन करता हुआ (स्वर्ण नाम प्रियाणि जनत) सुनहरे आकर्षक नाम—नमाने वाले प्रिय भोग वस्तुओं को प्रकट करता है॥ २ ॥

३ १ २ ३२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥३॥

(द्रप्सः) सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मा (समुद्रम्-अभि) समुद्भूत संसार को† (यद्-जिगाति) जब प्राप्त होता है—गति देता है‡ (विधर्मन् गृध्रस्य 'गृध्र' चक्षसा पश्यन्) विविध रूप में वर्तमान

* "इमे वै लोका गौः" [श० ६।१।२।३४]
† "समुद्रमनु प्रजाः प्रजायन्त" [तै० सं० ५।२।६।१]
‡ "जिगाति गतिकर्मा" [निरु० २।१४]

भोग के चाहने वाले को ज्ञान दृष्टि—सर्वज्ञता से देखता हुआ—जानता हुआ (शुक्रेण शोचिषा) शुभ्रदीप्ति से (भानुः-चकानः) प्रकाशस्वरूप दीप्यमान परमात्मा (तृतीये रजसि प्रियाणि चक्रे) तृतीय रञ्जनात्मक धाम—मोक्ष में उपासक आत्मा के लिये प्रिय सुखों को सम्पादन करता है॥ ३ ॥

इति विंश (२०वां) अध्यायः।

—()-:०:-()—

अथ एकविंश अध्याय

प्रथम खण्ड

प्रथम तृच

ऋषिः—प्रजापतिः※ (इन्द्रियों का स्वामी शरीररथ से उपरत इन्द्र—परमात्मा का उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १२ २२ ३ २उ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३१२ २२ ३ १२ २२
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (आशुः शिशानः) व्यापक सुखदाता† (वृषभः-न भीमः) दुष्टों—नास्तिकों के प्रति साण्ड के समान भयङ्कर (चर्षणीनां घनाघनः) ज्ञानी उपासकों का अत्यन्त प्रेरक है (अनिमिषः सङ्क्रन्दनः) निरन्तर सम्यक् अपनी ओर आमन्त्रित करनेवाला (एकवीरः) स्वपराक्रम में अकेला (शतसेनाः साकम्-अजयत्) उपासक आत्मा के बान्धने वाली सैंकड़ों कामादि वासनाओं को जीतने—नष्ट करनेवाला है ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।

※ सायणः ।

† "शिशुः शिशीतेर्दानकर्मणः" [निरु० १०।३९]

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
तादिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

(अनिमिषेण संक्रन्दनेन) उपासक को निरन्तर आमन्त्रण करनेवाले (युत्कारेण जिष्णुना) काम आदि से युद्ध करनेवाले जयशील—(दुश्च्यवनेन धृष्णुना) अजेय धर्षणशील (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के साथ (इषुहस्तेन वृष्णा) वरण हाथोंवाले जैसे सुखवर्षक के साथ (तत्-जयत) उस काम को जीतो (तत्सहध्वम्) उसे अभिभूत करो—दबाओ—नष्ट करो ॥ २ ॥

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स२ँ सृष्टजित् सोमपा बाहु शर्ध्यूग्र धन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

(सः-इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा (निषङ्गिभिः-इषुहस्तैः-गणैः) निरन्तर सङ्ग करनेवाले प्राप्तव्य मोक्ष है हाथों में जैसे जिनके हैं ऐसे अभ्यास कर्मशील उपासकगणों के द्वारा (वशी) वश में आनेवाला उनका स्नेही (सः-संस्रष्टा) वह उनसे सङ्गति प्राप्तकर्ता (युधः) काम आदि दोषों से युद्ध करनेवाला—बुराइयों से समझौता न करने वाला (संसृष्टजित्) अपने साथ सङ्गत होने योग्य को जितानेवाला—सफल बनानेवाला (सोमपाः) उपासनारस का पानकर्ता—स्वीकारकर्ता (बाहुशर्धी) बांधने—दोष निवारण करनेवाला बल* जिसमें है ऐसा (उग्रधन्वा) पाप के लिये तीक्ष्ण ध्वंस शक्तिवाला (प्रतिहिताभिः-अस्ता) प्रेरणाओं द्वारा उपासक को ऊंचे मोक्ष में पहुंचाता है ॥ ३ ॥

---

* "शर्द्धः-बलनाम" [निघ० २।९]

द्वितीय तृच

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—बृहस्पतिः (स्तुतिवाणी का रक्षक परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ अप बाधमानः ।
३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥१॥

(बृहस्पते) हे स्तुतिवाणी के रक्षक—स्वीकारकर्ता परमात्मन् ! तू (रक्षोहा) जिसकी रक्षा करनी चाहिए ऐसे दोष का हननकर्ता (अमित्रान् बाधमानः) शत्रुओं को दूर करनेवाला (रथेन परिदीय) अपने रमणीय स्वरूप से परिप्राप्त हो* (सेनाः प्रभञ्जन्) बान्धनेवाली वासनाओं को नष्ट करता हुआ (युधा प्रमृणः) संघर्ष करनेवालों को हिंसित कर (जयन्) जीतता हुआ (अस्माकम्) हमारे (रथानाम्) रमणीय भोगों का (अविता एधि) रक्षक हो ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १र २र ३ २
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥२॥

---

* "दीयति गतिकर्मा" [निघ० २।१४]

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! तू (बलविज्ञायः) समस्त देवों को विशेष जाननेवाला* अतएव (स्थविरः) शाश्वतिक (प्रवीरः) प्रकृष्टरूप से प्रेरणाप्रद (सहस्वान्) ओजस्वी—ओजप्रद (वाजी) अमृतान्नवाला अमृतान्नप्रद† (सहमानः) सर्वसहनकर्ता—सर्वाधार (उग्रः) प्रतापी (अभिवीरः) सर्वोपरि राजमान (अभिसत्त्वा) सर्वव्यापक (सहोजाः) उपासकों में आत्मबल को प्रादुर्भूत करने वाला (गोवित्) स्तोता जनों को प्राप्त होनेवाला (जैत्रं रथम्-आतिष्ठ) जितेन्द्रिय रमण करनेवाले उपासक में आ विराज ॥ २ ॥

१२-२८

३ १२ ३२३ १२ ३१२३१ २ ३२३१२
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
३१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २३ १२
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥३॥

ऋ० - १० - १०३ . ६

(गोत्रभिदम्) स्तोता‡ उपासक के त्राण स्थान मोक्ष को खोलने वाले (गोविदम्) उपासकों को प्राप्त होने वाले—(वज्रबाहुम्) ओजरूप भुजावाले° (जयन्तम्) स्वामित्व करते हुए (ओजसा-अज्म प्रमृणन्तम्) ओज से शीघ्रकारी विरोधी को नष्ट करते हुए—(इमम्-इन्द्रम्) इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (अनु) आश्रय बना (सजाताः सखायः) समान प्रसिद्धिवाले समान ख्यान ज्ञानवाले—उपासको ! तुम (वीरयध्वम्) अपना प्रेरक बनाओ (अनुसंरभध्वम्) अनुरूप उपासित करो ॥ ३ ॥

प्रतिजमान

वृत्रम्

* "बलं विश्वेदेवाः" [मै० ४।७।८]

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

‡ "गौः-स्तोतृनाम" [निघ० ३।१६]

° "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२७]

तृतीय तृच

ऋष्यादयः—पूर्ववत् ।

३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥१॥

(इन्द्रः) परमात्मा (गोत्राणि) स्तोता के त्राण स्थानों को (सहसा) अपने ओज से (अभिगाहमानः) अभिव्याप्त हुआ (अदयः-वीरः शतमन्युः) अन्य की दया उपेक्षित न करता हुआ स्वयं समर्थ वीर बहुत दीप्तिमान* (दुश्च्यवनः) अबाध्यः (पृतनाषाट्) विरोधी भावनाओं को दबानेवाला (अयुध्यः) किसी से युद्ध करने—हराने योग्य नहीं पूर्ण शक्तिमान् (अस्माकं सेनाः) हमारी सद्गुण प्रवृत्तियों—हमारे साथ सम्बद्ध सद्भावनाओं को (युत्सु) संघर्षों में (अवतु) वह सुरक्षित रखे ॥ १ ॥

१ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥२॥

(आसां देवसेनानाम्†) इन हम मुमुक्षु की सद्गुण गरिमाओं (अभि भञ्जतीनां जयन्तीनाम्) कामादि शत्रुओं का अभिभञ्जन करने वाली जय पानेवाली हैं, उनका (नेता) नायक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (बृहस्पतिः) सर्वज्ञ (दक्षिणा यज्ञः) उत्साहक प्रवृत्ति के साथ सङ्गमनीय (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा

* "मन्युर्मन्यते दीप्तिकर्मणः" [निरु० १०।२९]

† बहुवचनमादरार्थम् ।

(पुरः-एतु) आगे हो—है, (मरुतः-अग्रे यन्तु) वासनाओं को मार देनेवाली परमात्मा की स्तुतियों से प्राप्त ओज आदि गुण आगे हो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥३॥

(इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्—(राज्ञः-वृष्णः) राजमान सुखवर्षक (आदित्यानाम्) अदिति—अखण्डसुखसम्पत्ति मुक्ति के स्वामी—(मरुताम्) वासनाओं को मार देनेवाले—परमात्मा का (उग्रः शर्द्धः) तीव्र प्रभावकारी बल† है (महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानाम्) महामना—महान् ज्ञानी—सर्वज्ञ लोकों को गति देने वाले अभिमत करने स्वाधीन रखनेवाले दीप्यमान परमात्मा का (घोषः-उदस्थात्) आशीर्वादवचन ऊपर है ॥ ३ ॥

चतुर्थ तृच

ऋष्यादयः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वानां मामकानां मनांसि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद् रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥१॥

(वृत्रहन् मघवन्) हे पापनाशक ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (आयुधानि-उद्-हर्षय) आयु धारण कराने वाले चरित्रों को हमारे अन्दर उच्चरूप से विकसित कर (मामकानां सत्वानां मनांसि-उद्) मेरे से सम्बद्धजनों के भी मनों को उच्चरूप से वि-

† "शर्द्धः-बलनाम" [निघ० २।९]

कसित कर कल्याण सङ्कल्प वाले बना (वाजिनां वाजिनानि-उद्०) हम अमृत अन्नभोगी उपासकों के* वाग्ज्ञेयों—ज्ञानों को उच्चरूप से विकसित कर—उन्नत कर (जयतां रथानां घोषाः-उद्यन्तु) कामादि पर जय पानेवाले परमात्मा में रमण करने वालों के मानसिक जय और सङ्कल्प उन्नत हों ॥ १ ॥

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥२॥

(इन्द्रः) परमात्मा (अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु) हमारे समुद्यत प्रज्ञान—‡ (याः-इषवः) जो सदिच्छाएं (जयन्तु) समर्थ हों (अस्माकं वीराः) हमारे वीर—प्राण° (उत्तरे भवन्तु) उत्कृष्ट हों (देवाः-हवेषु-अस्मान्-अवत) विद्वान् आमन्त्रणों में हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्द्धमाना ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥३॥

(मरुतः) हे पापमारक ओज वीर्य साहस गुणो* (परेषां या-असौ सेना) उपासकजनों से भिन्न नास्तिक दुष्टजनों की जो वह सेना—इन्हें बान्धनेवाली काम आदि प्रवृत्तियाँ (नः-अभि-

* "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

† "वाजिनेषु वाग्ज्ञेयेषु" [निरु० १।२०]

‡ प्रथमायां सप्तमी व्यत्ययेन ।

° "प्राणा वै दश वीराः" [श० ९।१।१०।२]

* "ओजो वै भीमं मरुतः" [जै० ३।२०१]

ओजसा स्पर्द्धमानएति) हमारे अन्दर भी स्पर्द्धा से वेग से आती हैं तो (ताम्) उसे (अपव्रतेन तमसा) निष्कर्म—निष्फल—निर्बल कर देनेवाले कांक्षाभाव* सङ्कल्प से (गूहत) लुप्त करदो (यथा) जिसे (एषाम्) इनमें से (अन्यः-अन्यं न जानात्) एक दूसरे को न जान सके परस्पर बल पाकर न उभर सके॥३॥

पञ्चम तृच

ऋषिः—पूर्ववत् ।
देवता—अप्वा (भीति† भयप्रद परमात्मशक्ति)
छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१॥

(अप्वे) हे भयप्रद परमात्मशक्ति‡ तू (अमीषाँ चित्तम्) उन काम आदि शत्रुओं के चित्त को‡—क्रियाशक्ति को (प्रति लोभयन्ती परेहि) घबराहट देती हुई जा (अङ्गानि गृहाण) उनके अवयवों—पूर्वरूपों को पकड़ (अभिप्रेहि) सामने जा (शोकैः-हृत्सु निर्दह) सन्तापों से हृदयों में—हृदयों को भस्म कर (अमित्राः) काम आदि शत्रु (अन्धेन तमसा) घने अन्धकार से (सचन्ताम्) युक्त होजावे ॥ १ ॥

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

* "तमु काङ्क्षायाम्" [दिवादि०]
† "अप्वा व्याधिर्वा भयं वा" [निरु० ६।१२]
‡ जडेषु चेतनवद् व्यवहार आलङ्कारिकः कूलं पिपातिषति इतिवत् ।

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २   ३ १ २ ३ १
प्रेत जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
३ १ २   ३ १ २   ३ १२   २२
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥२॥

(नरः) हे मुमुक्षुजनो !† (प्रेत) प्रगति करो (जयत) कामादि को जीतो (इन्द्रः) परमात्मा (वः) तुम्हारे लिये (शर्म यच्छतु) सुख को प्रदान करे (वः) तुम्हारे (बाहवः-उग्राः) पाप के बाधक बल प्रबल हों, तथा (अनाधृष्याः) अबाध्य (यथा-असथ) जिससे तुम योग्य जीवन्मुक्त होजाओ ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्, भारद्वाजः पायुर्वा (पूर्ववत्, या भरद्वाज से सम्बद्ध आत्मरक्षा कुशल उपासक)

देवता—इषुः (एषणा सङ्कल्पशक्तिः)

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २   ३ १ २ ३ १२ ३ १२
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
२ ३ २ ३   १ २   ३ २३   ३ २ ३ १   २
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥३॥

(ब्रह्मसंशिते शरव्ये) हे मन्त्र विचार से सिद्ध कामादि के हिंसन करने में समर्थ सङ्कल्पशक्ति ! तू (अवसृष्टा) छोड़ी हुई—प्रयुक्त की हुई (परापत) दूर दूर तक जा (अमित्रान् गच्छ) काम आदि शत्रुओं को प्राप्त हो (प्रपद्यस्व) उन्हें दबादे (अमीषां कञ्चन मा-उच्छिषः) उन काम आदि में से किसी को मत रहने दे ॥ ३ ॥

† "नरो ह वै देवविशः" [शत० ...]

षष्ठ तृच

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
कङ्काः सुपर्णा अनुयन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयाꣳस्येनाननु संयन्तु सर्वान् ॥१॥

(एनान्) इन काम आदि शत्रुओं को (सुपर्णाः कङ्काः) सुन्दर पालन करनेवाले परमात्मा के प्रति सङ्कल्प विकल्प* (अनुयन्तु) प्राप्त हो (असौ सेना-गृध्राणाम्-अन्नम्-अस्तु) वह कामादि सेनाक्रम—प्रवृत्ति, परमात्मा को कांक्षा रखनेवाले सङ्कल्पों का भोजन—खादरूप हो जावे (अघहारः-च) और पाप को खा जाने वाला शिवसङ्कल्प (इन्द्र न-एषां मा मोचि) हे परमात्मन् ! सम्प्रति इन में से किसी को मत छोड़ (एतान् सर्वान्) इन सब को (वयांसि-अनु संयन्तु) प्राण:: इन्हें सम्प्राप्त हो ॥ १ ॥

३ २ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ २
अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥२॥

(मघवन्-इन्द्र-अग्निः-च) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् (उभौ) दोनों रूपों वाले तू (अस्मान्-अभि) हमारे प्रति (तां शत्रुयतीम्-अमित्रसेनाम्) उस शत्रु-

* "ककि लौल्ये" [भ्वादि०]

:: "प्राणो वै वयः" [ऐ० १।२।८]

भाव को प्राप्त हुई काम आदि शत्रु सेना को (प्रति दहतम्) प्रति दग्ध कर—सर्वथा भस्म कर—नष्ट कर ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥३॥

(यत्र) जिस अवसर पर (बाणाः) कामबाण—काम आदि दोषों का बाण—प्रहारक प्रभाव (कुमाराः-विशिखाः-इव) कुत्सित मार करने वाले धूमरहित ज्वालाओं के समान (सम्पतन्ति) प्रहार कर रहे हैं (तत्र) उस अवसर पर (ब्रह्मणः-पतिः-अदितिः) ब्रह्माण्ड का स्वामी अविनाशी समस्त देवों की माता निर्माता परमात्मा (नः-शर्म यच्छतु) हमारे लिये सुख शरण दे॥३

सप्तम तृच

ऋषिः—भरद्वाजः शासः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करनेवाले से[1] सम्बद्ध अध्यात्म शिक्षक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२३ ३ १२ २२ ३ २ ३२ ३ १ २
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१॥

(वृत्रहन्-इन्द्र) हे पापनाशक परमात्मन् ! तू (रक्षः-वि-जहि) जिससे अपनी रक्षा करनी चाहिए उस काम आदि को

[1] "वाजयति अर्चतिकर्मा" [निघ० ३।१४]

विशेषरूप से नष्ट कर (मृधः-वि) दूसरे के प्रति होने वाले हमारे अन्दर संग्रामभावों हिंसाभावों को§ नष्ट कर (वृत्रस्य हनू विरुज) पाप:: के हनन साधनों लोभ और मोह को विनष्ट कर (अभिदासतः-अमित्रस्य मन्युं वि) हमें अभिक्षीण करते हुए शत्रुरूप द्वेष को विनष्ट कर ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! तू (नः) हमारे प्रति (किम्) कैसे भी (मृधः-वि जहि) हिंसक दुर्भावनाओं को विनष्ट कर (पृतन्यतः-नीचा यच्छ) हमारे प्रति संघर्ष करने वाले विचारों को नीचे पहुंचादे (यः-अस्मान्-अभिदासति) जो दोष हमें अभिक्षीण करता है, उसे (अधरं तमः-गमय) नीचे गहरे अन्धकार में पहुँचादे ॥ २ ॥

छन्दः—विराट् जगती ।

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
१ २ ३ १२ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो
३ २
महत् ॥३॥

(इन्द्रस्य) परमात्मा के (बाहू) काम आदि को बांधनेवाले

§ "मृधः संग्रामनाम" [निघ० २।१७]

:: "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।८।५।७]

ज्ञान और आनन्द गुण (स्थविरौ) स्थिर (युवानौ) जरारहित बलवान् (अनाधृष्यौ) न दबाए जाने वाले (सुप्रतीके) सुस्पष्ट (असह्यौ) न सह सकने योग्य (तौ प्रथमौ युञ्जीत) हे उपासको ! उन प्रमुखों को युक्त होओ (आगते योगे) प्राप्त अवसर या योग प्राप्त होने के निमित्त (याभ्याम्) जिनके द्वारा (असुराणां महत् सहः-जितम्) अनृतों—अनर्थों पापों के महान् बल को जीता है—जीता जाता है ॥ ३ ॥

अष्टम तृच

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—लिङ्गोक्ताः (मन्त्र में पढे नामपद—सोम शान्तस्वरूप वरणकर्ता परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

२६०

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १ ॥

यजु : १७/४९ ६-७५-१८.

(ते मर्माणि वर्मणा छादयामि) हे काम आदि के बाधक सत्यसङ्कल्पीजन ! तेरे निर्बल प्रसङ्गों को वरणीय परमात्मदर्शन से सुरक्षित रखता हूं (सोमः-राजा त्वा-अमृतेन-अनुवस्ताम्) राजमान शान्त परमात्मा तुझे अमृत ज्ञान प्रकाश से अनुरक्षित रखे (वरुणः) वरणकर्ता परमात्मा (ते) तेरे लिये (उरो वरीयः) हृदय के महान् अभीष्ट को करे (त्वा जयन्तं देवाः-अनु मदन्तु) तुझ जय करते हुए के साथ परमात्मदेव हर्षित करें ॥ १ ॥

१२६१

३ १ २ ३ १ २
अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम् ॥२॥

(अमित्राः) हे काम आदि शत्रुओ! तुम (अशीर्षाणः-अन्धाः-अहयः-इव भवत) छिन्न शिरवाले या फण रहित अन्धे सर्पों के समान हो जाओ (तेषां वः-अग्निनुन्नानाम्) उन तुम्हारे ज्ञानाग्नि से पछाड़े—दबाए हुओं से (इन्द्रः-वरं वरं हन्तु) परमात्मा बड़े बड़े दोष को नष्ट करे—करता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ २३ १२ २२
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥३॥

(यः) जो दोष (स्वः) अपने अन्दर रहनेवाला (अरणः) परसम्बन्धी (च) और (यः) जो (निष्ट्यः) गुप्त—अज्ञात—होनेवाला (नः-जिघांसति) हमें मारना चाहता है (सर्वे देवाः) सारे देव—देवों का देव (धूर्षन्तु) नष्ट करें (ममान्तरम् ब्रह्मवर्म) मेरे अन्दर विराजमान ब्रह्म—महान् परमात्मा तथा रक्षक परमात्मा नष्ट करे (शर्म वर्म मम-अन्तरम्) सुखस्वरूप रक्षक परमात्मा नष्ट करदे ॥ ३ ॥

नवम तृच

ऋषिः—ऐन्द्रो जयः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा का उपासक इन्द्रियजयशील)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

३ २३ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं विशत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥१॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! तू (गिरिष्ठाः-मृगः-न कुचरः) पर्वतीय सिंह के समान भयङ्कर दुष्प्रवृत्तियों के लिये है, कहां तू विचरता विभुगतिमान् है (परावतः परस्याः-आजगन्थ) दूर देश दूर दिशा होने पर भी प्राप्त होता है (सृकं तिग्मं पविं संशाय) मरणशील तीक्ष्ण वाग्वज्र† ज्ञान प्रवृत्ति को प्रखर करके (शत्रून् विताढि) काम शत्रुओं को ताड़न कर—नष्ट कर (मृधः-विनुदस्व) हिंसक प्रवृत्तियों को विच्छिन्न कर ॥ १ ॥

ऋषिः—राहुगणः-गोतमः (दोषरहित स्तुतिवाले से सम्बद्ध परमात्मा में अत्यन्त गति करनेवाला उपासक)

देवता—विश्वेदेवाः (समस्त देवों के गुणों से युक्त परमात्मा)

३ १ २ २२ ३ १ २ ३ १ २
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३क २२ ३ १ २ ३ १२ २२
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२॥

(यजत्राः-देवाः) हे सङ्गमनीय सर्वदेव धर्मवाले परमात्मदेव (कर्णेभिः-भद्रं शृणुयाम) हम कानों से शुभ श्रवण करें (अक्षभिः-भद्रं पश्येम) आंखों से शुभ दर्शन करें (स्थिरैः-अङ्गैः-तुष्टुवांसः) दृढ़—शक्त मन वाणी आदि साधनों से तेरी स्तुति करते हुए (देवहितं यत्-आयुः) तुझ देव द्वारा निर्दिष्ट जो आयु है सौ वर्ष या इससे भी आगे—अधिक से अधिक है‡ उसे (तनूभिः व्यशेमहि) शरीराङ्गों से विशेष सेवन करें—प्राप्त करें ॥ २ ॥

---

† "पविः-वाङ्नाम" [निघ० १।११]

‡ "जीवेम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्" [ ]

छन्दः—विराट्।

३ २ ३१ २ ३१२ ३ १२ ३२ ३ १२
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
३ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३२३१२
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु,
(स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु) ॥३॥

(वृद्धश्रवाः-इन्द्रः-नः स्वस्ति) प्रवृद्ध—महान् यश जिसका है※ ऐसा परमात्मा हमारे लिये कल्याणरूप हो (विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति) सबको जाननेवाला सर्वज्ञ पोषणकर्ता प्रजास्वामी† हमारे लिये कल्याणरूप हो (अरिष्टनेमिः-तार्क्ष्यः-नः स्वस्ति) दुष्ट प्रवृत्तियों को ताडने में अहिंसित—अकुण्ठित वज्र दण्डरूप शक्ति‡ जिसकी है ऐसा तुरन्त कल्याण कार्य सम्पादक व्यापनशील° परमात्मा हमारे लिये कल्याणरूप हो (बृहस्पतिः-नः स्वस्ति दधातु) महान् ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा हमारे लिये कल्याण को धारण करे—प्रदान करे॥ ३ ॥

सामवेद—आध्यात्मिक मुनिभाष्य एकविंश अध्याय समाप्त।

※ पूर्ण सामवेद भाष्य समाप्त ※

※ कोष्ठान्तर्गत पाठः साम सम्प्रदायिनां स्यात् काल्पनिकः। क्वचिद्व- ततोऽपि न
† "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११।९]
"यस्यनाम महद्यशः" [यजु० ३२।३]
‡ "पूपा विशांविट्पतिः" [तै० २।९।४।७]
° "नेमिः-वज्रनाम" [निघ० २।२०]
"तार्क्ष्यः-तूर्णमर्थं रक्षति अश्नोतेर्वा" [निरु० १०।२६]

वक्तव्य

उस "सामवेद—आध्यात्मिक मुनिभाष्य" उत्तरार्चिक ...ार्चिक" के दिन चौदह चौदह घण्टे लिखने से मूत्र वन्द होगया ... शन के लिये बहुत महंगे पन्त हस्पताल के नरसिंग होम ... हस्पताल से डाक्टर लेगए, धन तो बहुत व्यय हुआ ... १०००) परन्तु सर्जन डाक्टर ने आपरेशन में भय बताकर आध... धन, आपरेशन स्थगित कर दिया, जयपुर के बने तीन इंजेक्श... ५००) सूए जैसे गुदा के मार्ग से लगाए गए। सवा मास तक इं... की पीड़ा रही डेढ़ मास पश्चात् मूत्र चालू होजाने पर हस्प... मुक्त हुआ। आर्य समाज में ऐसे सन्यासीका रोगी होजाना ... दायक है जिसने कि विवाह न किया हो, कोई अपना ग... ५००) या आश्रम न बनाया हो, ऐसी स्थिति में अपने पुत्र ... या अपने गुरुकुल या आश्रम के शिष्य और सेवक काम आते हैं। लगभग डेढ मास तक हस्पताल में पड़ा रहा परन्तु दिल्ली, नई दिल्ली जैसे स्थान में दो सौ आर्य समाजें होने पर भी आर्यसमाज के नाते कोई भी सज्जन सेवा के लिये तो क्या पूछने मिलने तक न आया। साथ में पुस्तक की प्रेस कापी लेखन कर बनवाना, छपवाना भी अपने ही व्यय से करना पड़ा, बिना अपना पारिश्रमिक धन या फल लिये भी पुस्तक प्रकाशक छापने को तैयार नहीं। उत्तर आता है कि हम वेद की पुस्तक नहीं छपा सकते, सभा संस्थाओं में उदासीनता है, स्वयं छपवाना पड़ता है मूल्य भी प्रेस लागत या पुस्तक विक्रेता कमीशन लगाकर रखने पर भी वेद स्वाध्याय के प्रति लोगों की रुचि न होने से पुस्तकें अधिकांश में पड़ी रहती हैं। अनेक महानुभावों ने प्रेरणा की थी कि ऋषि दयानन्द से बचे सामवेद और अथर्ववेद पर भाष्य करदो, सो

भाष्य किया, अब अथर्ववेद का भाष्य मेरे द्वारा
व सा ही है, एक तो मैं अभी पूर्ण रोगमुक्त नहीं
में असमर्थ और आंखों में सफेद मोतिया आगया
पास से धन व्यय लेखन और पुस्तक प्रकाशन
गा ॥

स्वामी ब्रह्ममुनि

परिव्राजक विद्या मार्तण्ड ।

धन्यवाद

इस "सामवेद आध्यात्मिक मुनिभाष्य उत्तरार्चिक" के लेखन कार्यार्थ सहायता—

श्री० मिट्ठनलालजी मिश्रा, जयपुर १०००)

श्री० चौधरी प्रतापसिंहजी, ५७, एल. माडल टाउन, करनाल ५००)

सामवेद के छात्रों को आधे मूल्य में परिमित पुस्तकें देने को—

श्री० अजीतसिंहजी (मेटलकि गैस) जयपुर ५००)

किन्ही विशिष्ट सन्यासी विद्वानों को सीमित पुस्तकें भेंट देने को—

श्री० गुलाबसिंहजी आर्य, भरतपुर २५०)

इन सब को हार्दिक धन्यवाद।

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक

